प्राकृतिक जीवनकी ओर

एडोल्फ जस्टकी

Return to Nature

का

भावानुवाद

•

अनुवादक
विट्ठलदास मोदी

•

आरोग्य-मंदिर-प्रकाशन

प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर

पहली बार जनवरी १९५१
दूसरी बार नवंबर १९५४

मूल्य
अढ़ाई रुपये

मुद्रक
ज० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्र
इलाहाबाद

इस अनुवादके बारेमें

'प्राकृतिक जीवनकी ओर' एडोल्फ जस्टकी प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी साहित्यमें बेजोड़ पुस्तक 'रिटर्न टू नेचर' (Return to Nature) का अनुवाद है।

इस अनुवादके साथ एक छोटी-सी कहानी जुड़ी हुई है।

गांधीजीकी आत्मकथाका हिंदी अनुवाद पहले पहल सन् १९२९ में निकला था। पुस्तक इतनी मनोहारी है कि मैं पढ़ना आरंभ करते ही उसमें तल्लीन हो गया। उसी वक्त मन जाना कि लोग पढ़नेके पीछे सोना कैसे भूल जाते हैं। उसमें गांधीजीने अपने प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमका भी उल्लेख किया है और बताया है कि 'रिटर्न टू नेचर' ने ही उनको प्राकृतिक चिकित्साकी ओर आकृष्ट किया और लगाया तथा इसके प्रयोगोंसे विशेषकर मिट्टीके प्रयोगसे उन्होंने स्वयं लाभ उठाया ही औरोंको भी लाभान्वित किया। उसी समय यह इच्छा हुई कि अगर इस पुस्तकका अनुवाद मिलता तो मैं भी पढ़ता पर अनुवाद प्राप्त नहीं था। बात आई और चली गई।

सन् १९३६में जब मैं अपने रोगोंकी चिकित्साके सिलसिलेमें प्राकृतिक चिकित्सासे परिचित हुआ तो 'रिटर्न टू नेचर' का भी परिचय मिला और ज्ञात हुआ कि प्राकृतिक चिकित्साके मूल सिद्धांतोंको समझनेके लिए यह पुस्तक अत्यावश्यक है—यह तो नींवका वह पत्थर है जिसपर प्राकृतिक चिकित्साकी सारी इमारत खड़ी की गई है। अब मूलकी खोज हुई पर मूल भी मेरे खोजे हिंदुस्तानमें नहीं मिला। संयोगसे मिला जाकर सन् १९४१में एक मित्रके पास। पढ़ा लगता था, कविता पढ़ रहा हूं, लेखक सादगीसे सत्यका अन्वेषण करता जा रहा है और उसके प्रकाशमें हमारा मोह, हमारी मूढ़ता, हमारी गलत धारणाएं विलीन होती जा रही हैं।

आत्मकथाके बाद यह दूसरी पुस्तक थी जिसने मुझे इस कदर सोचनेका सामान दिया।

इच्छा हुई कि इसका मैं अनुवाद करूं। उस समय इच्छाने और जोर पकड़ा—जब यह ज्ञात हुआ कि हिंदीको छोड़कर हिंदुस्तानकी प्रायः सभी मुख्य भाषाओंमें इसके अनुवाद मौजूद हैं और गुजरातीमें तो इसके एक नहीं पांच-पांच अनुवाद हुए हैं। किसी तरह इसका पहला अध्याय पूरा किया। लगा कि अनुवाद कर सकता हूं, पर कुछ तो अनुवादमें लगनेवाली मिहनतके आलस्य और विशेषकर अन्य कार्योंमें लगे रहनेके कारण अनुवादका काम आगे नहीं बढ़ सका।

इस तीन वर्ष बीत चुके थे कि मैं जुलाई सन् १९४१में तत्कालीन सरकारद्वारा गिरफ्तार किया गया और गोरखपुर-जेलमें नजरबंद कर दिया गया। पकड़ आनेके समय ही मैंने अनुवाद पूरा करनेके विचारसे प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी पुस्तकोंके अपने ट्रंकमें यह पुस्तक और कागज-कलम भी रख लिया था। जेलमें समय काफी था। काफी ही नहीं था बल्कि वक्त काटनेका सवाल था अतः मुझे अनुवादका मुहावरा न होनेकी वजहसे अधिक समय लगनेका कोई डर नहीं था। एक विचार यह भी आया कि क्यों न समग्र प्राकृतिक चिकित्सापर ही एक पुस्तक लिखूं पर 'रिटर्न टू नेचर' के मोहने जोर पकड़ा और मैंने इसका अनुवाद आरंभ कर दिया। जून १९४४में, जब मैं नजरबंदीसे रिहा किया गया, तब यह अनुवाद पूरा हो चुका था। तबसे अबतक यह अनुवाद पड़ा रहा। बहुत चाहा पर कोई विश्वसनीय प्रकाशक न मिलने, प्रकाशनका अधिकार न मिलने अच्छा प्रेस न मिलने और कागजकी दिक्कतकी वजहसे इसका प्रकाशन रुका रहा।

आज यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है इसकी पाण्डुलिपिको सुरक्षित रखनेकी मेरी जिम्मेदारी खतम हो गई है। प्राकृतिक चिकित्साने मुझे स्वास्थ्य-दान दिया है इस लिहाजसे इसके प्रति मेरा जो फर्ज है उसे मैंने इस रूपमें किसी अंशमें चुकानेका प्रयत्न किया है।

आशा है मेरे इस अनुवादसे औरोंको प्रेरणा मिलेगी और वे इससे अच्छा अनुवाद हिंदी जगत्‌को भेंट करनेका प्रयत्न करेंगे।

पाठकोंको एक बात और बता दूं वह यह कि गांधीजी सन् १९४६में प्राकृतिक चिकित्साकी ओर विशेषरूपसे रुजू हुए थे और अपना शेष जीवन इसीमें लगाना चाहते थे। वे प्राकृतिक चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सकोंके भी सबधमें लिखते रहे थे। २ जून १९४६के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा था 'कूने जस्ट और फादर कनाइपने जो लिखा है वह सबके लिए है और सब जगहोंके लिए है यह सीधा है, उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जाननेवालोंके पास उसकी थोड़ी बहुत जानकारी होती है और होनी चाहिए।

यहां जस्टसे मतलब उनकी उक्त पुस्तक 'रिटन टू नेचर' (प्राकृतिक जीवनकी ओर) से ही है।

आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर
१० जनवरी ५१

विठ्ठलदास मोदी

विषय-सूची

प्राकृतिक जीवनकी ओर

प्रकृतिके बोल

सृष्टिकर्ताने मनुष्यको सर्वथा नीरोग और सदाचारी बनाया, न शरीरमें कोई मलिनता थी न आत्मामें। भला सर्वशक्तिमान, सर्वमंगलमय सर्वज्ञ ईश्वरकी रचना अपूर्ण, सदोष, रोगी, पापी, कंगाल और दुखी कैसे हो सकती थी? मनुष्य पाप-तापसे विमुक्त आनंदपूर्ण स्वर्गमें रहता था। इसी स्वर्गीय आनंदकी बात सुननेपर लोग स्वर्गको पृथ्वीकी नहीं आकाशकी वस्तु मानने लगते हैं। यह सकारण है।

आज कहींपर एक भी तो मनुष्य स्वस्थ नहीं दिखाई देता। पृथ्वीपर सर्वत्र रोग और शोकका साम्राज्य है। जन्मसे मृत्युपर्यंत मनुष्यको रोग और दुःख घेरे रहते हैं। संसारमेंसे आत्मीयता भ्रातृभाव उठ गये हैं। घृणा ईर्ष्या, द्वेष, पाप और अपराधोंने चारों ओर अपने पांव फैला रखे हैं। आज एक भी ऐसा व्यक्ति न मिलेगा जो चिंता, कष्ट, शोक, संताप, उदासी और निराशासे घिरा हुआ न हो।

मनुष्य इस दशाको क्यों पहुंचा? प्रकृतिकी अवहेलना करके और विज्ञानके भ्रम-जालमें पड़नेके कारण।

प्रकृति माता तो आज भी हमें स्वास्थ्यका सीधा और सरल मार्ग बतानेको कुंठित नहीं है।

प्रकृतिकी सीखपर ध्यान न देनेके कारण ही मनुष्य

हजारों किस्मके रोगोंका शिकार बना हुआ है। वनके पशुओं और गगनचारी पक्षियोंने कभी अपने सिरपरसे प्रकृति माताका वरद हस्त हटने नहीं दिया। अतः वे रोगोंसे मुक्त तो है ही उनमें पाप और अपराध-सरीखी वस्तु भी नहीं पाई जाती।

आज प्रकृतिके प्रांगणमें कदाचित ही कोई स्थान हो जो मनुष्यके हाथकी सफाईकी करामातसे अछूता हो, जहां अपना कुचाल कर लगाकर उसने कुछ-न-कुछ बिगाड़ न दिया हो। इस कारण पशु या पेड़ोंमें रोगोंके कुछ चिह्न मिल जायेंगे, पर मनुष्यके अनंत दुःख और घोर कष्टोंकी तुलनामें उनकी कोई गिनती नहीं है।

प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले पशु-पक्षी सर्वदा व सर्वथा नीरोग रहते हैं। पर उन्मुक्त प्रकृतिसे उनका संबंध विच्छेद कर देनेपर, प्रकाश, वायु, पृथ्वी और जलसे उनका तालमेल तोड़ देनेपर उन्हें वह आहार नहीं मिलता जो प्रकृतिने उनके लिए उपजाया है और तब वे सहजमें रोगोंके पंजेमें फंसने लगते हैं।

विज्ञानका चश्मा अपनी आंखोंसे उतारकर खुले दिल और दिमागसे प्रकृतिकी ओर देखनेपर हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारे रोगी बने रहनेका एकमात्र कारण हमारा प्रकृति के बोलपर ध्यान न देना। हम उसके प्रत्येक नियमको कुचलते चलते हैं। हम उसके बताये रास्तेसे भटक हुए हैं।

प्रकृतिकी न्याय-परायणताके औचित्यके संबंधमें दो मत नहीं हो सकते। जहां वह अपना बाल भी नियम भंग करने वाले अपराधीको दंड देती है वहां उसके नियमानुसार चलनेपर वह पुरस्कार देना भी नहीं भूलती।

कैसा भी कोई रोग क्यों न हो मनुष्य उससे मुक्त होनेका अधिकारी है अपनी नियत प्रसन्नता प्राप्त करनेका हकदार है। एकमात्र मार्ग उसका यही है कि वह ईमानदारीसे प्रकृतिकी शरण जाय। उसे प्रकृतिके बोलोंपर चलनेकी हर तरहसे कोशिश करनी चाहिए। भोजन उसे वही ग्रहण करना चाहिए जो प्रकृति माताने उसके लिए अपने हाथों पकाया है। उसे जल वायु, आकाश, पृथ्वी और प्रकाशसे प्राकृतिक संबंध जोड़ना चाहिए। प्रकृतिकी भाषा अत्यंत सुबोध है वह अपने आदेश सब प्राणियोंको—पशु और मनुष्य दोनोंको बहुत स्पष्ट रूपसे देती है।

प्रकृतिकी कभी यह इच्छा नहीं रही है कि मनुष्य जीवनके सच्चे रास्ते और स्वास्थ्य प्राप्तिकी सरल पद्धतिके संबंधमें इतना अनभिज्ञ और इतना परेशान रहे कि उसे अपने साथियों-से इन नियमोंपर वाद-विवाद करना पड़े और अपनी अन-भिज्ञताके कारण उसे चिंता और शंकाका शिकार बनना पड़े। अब हम मनुष्यसे शिक्षा न लेकर प्रकृतिकी सीख सुनेंगे।

प्रकृतिके सिखावनके ढंग कुछ निराले हैं। उसकी शिक्षा न पुस्तकोंमें लिखी मिलती है न वह बंद कोठरियोंमें बिठाकर शिक्षा देती है। वह अपनी इच्छाको साफ और सही-सही मनुष्यकी नैसर्गिक वृत्ति और ज्ञानेंद्रियोंद्वारा प्रकट करती है। संयत मनुष्यका विवेक भी जाग्रत रखती है।

संसारके हर हिस्सेके जंगली कहानेवाले लोग आज भी स्वास्थ्य नियमोंका पालन करते हैं। यह सर्वविदित है कि प्रकृतिके इन बच्चोंकी ज्ञानेंद्रियां इतनी सतेज और नैसर्गिक वृत्ति इतनी सतर्क होती हैं कि स्वास्थ्यके लिए हानिकर या उसे

बहुत आसान है। पर उसे चाहिए कि सब ओरसे ध्यान हटाकर प्रकृतिकी आवाज, नैसर्गिक वृत्ति, विवेक, ज्ञानेंद्रियपर चलनेका प्रयत्न करे।

प्रश्न यह उठता है कि क्या आजका मनुष्य प्रकृतिसे वही पथ प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है जो पशु अपनी नैसर्गिक वृत्तिके द्वारा पाता है?

इसमें संदेह नहीं कि मनुष्यको प्रकृतिकी आवाजपर चलना बंद किये एक युग हो गया। इस कारण उसकी नैसर्गिक वृत्ति और विवेक शिथिल हो गये हैं और ज्ञानेंद्रियां निस्तेज हो गई हैं तथापि हमारे पथ-प्रदर्शन करनेभरको वे पर्याप्त हैं। कविवर गेटेने लिखा है

> "हमारे हृदयमें बैठा हुआ देवता बहुत
> मंद-मंद बोलता है, आवाज धीमी है उसकी,
> पर है स्पष्ट। वह देवता हमें बताता रहता
> है कि हम क्या ग्रहण करें और क्या नहीं।"

प्रकृतिकी वाणीपर ध्यान देना आरंभ करनेपर एक बार फिर प्रत्येक वस्तु मेरे सामने स्पष्ट हो गई। विभिन्न विषयोंके संबंधका ज्ञान, जिसकी प्राप्तिकी मुझे आवश्यकता थी, प्राप्त हो गया। इसके लिए मुझे किसी प्रकारके अन्वेषण या शोधमें अपना समय गंवाना नहीं पड़ा।

जो कुछ मैंने सीखा है, कुदरतसे ही सीखा है। उसीने मुझे रास्ता दिखाया है।

मनुष्य जितना ही अधिक प्रकृतिकी ओर ध्यान देगा उतना ही उसका विवेक और नैसर्गिक वृत्ति जाग्रत होगी और ज्ञानें

द्रिया सतेज होगी। आज भी वह बच्चो और पशुओंसे प्रकृतिके निर्देशोंके सबधमें बहुत कुछ सीख सकता है। इन सौभाग्य शाली जीवोने अपने पथ-प्रदर्शकके भावोंकी रक्षा की है। हर गाढे समयपर हमें इनसे सहायता लेनी चाहिए।

विज्ञानके मोहक रूपसे बचनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनेपर प्रकृति मनुष्यका आसानीसे पथ प्रदशन कर सकेगी। फिर स्वास्थ्य और सुखके मिलनेमें क्या देर लग सकती है? तब मनुष्यकी दशा समुद्रमें पडी उस बेपतवारकी नावकी भाति नहीं रह जायगी कि जिसके भाग्यमें चट्टानोंसे टकराकर टट जाना ही बदा है।

प्राकृतिक स्नान

पिछली शताब्दीमे अनेक प्रतिभाशाली एव महान व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके उन्नयनमें लगे रहे। उनकी प्रतिभाने उन्हें प्रकृतिके नियमोंसे परिचित कराया। प्रिसनीज स्ग्राथ, ग्रेहम, रूसो, रिकली कनाइप, कूने, डेसमूर, ट्राल आदिने इस दिशामें महान काम किये और अक्षय कीर्ति कमाई। उन्होने अघेरेमेंसे प्रकाशकी किरणें खोज निकालीं।

पर इन सभी सज्जनोंने नैसर्गिक वृत्तिको पथ प्रदशनका मौका नहीं दिया और न कभी प्रकृतिकी अन्य सब आवाजोका जिनका मैंने अक्सर जिक्र किया है, पूरी इमानदारीसे अनुसरण किया। उन्होंने बच्चो और पशुओंके जीवनका भी पूरा अध्ययन नहीं किया। ये छाटे प्राणी आज भी इस सभ्यताके युगमें पले प्रौढ मनुष्योकी अपेक्षा प्रकृतिकी राहका अधिक

अनुसरण करते हैं। इन सज्जनोंने प्रकृतिके उपादानों एवं इच्छाओंपर भी ध्यानपूर्वक और समझदारीसे विचार नहीं किया इसलिए उनकी शिक्षा और उनका बताया मार्ग पूर्ण नहीं है। उसमें अनेक भूलें और गलतियां मिलती हैं। उनकी उपचार-पद्धतियोंको लोग अधिकतर भूल गये हैं और वह दिन दूर नहीं है जब वे विस्मृतिके गर्तमें सर्वथा विलीन हो जायगे।

मनुष्यको प्रकृतिसे अपना संबंध-विच्छेद किए हजारों वर्ष हो गए। अब धीरे-ही-धीरे वह प्रकृति और उसके नियमों के संबंधमें अपना कर्तव्य समझ सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालीके निर्माणमें हाथ बटानेवाले सभी सज्जन हमारी अधिक-से-अधिक प्रशंसाके पात्र हैं। ये सर्वांगीण सत्य प्राकृतिक नियमोंके निकट पूरी तरहसे नहीं पहुंच सके एवं उनकी पद्धति सदोष है। इसके लिए न तो हमें उनकी निंदा करनी चाहिए, न उन्हें दोषी ठहराना चाहिए।

दुनियाके सभ्य समाजमें हुए अबतकके सभी आंदोलनोंमें प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी आंदोलन सबसे अधिक गंभीर और शक्तिशाली है। उसका संबंध मनुष्यकी सबसे बड़ी निधि—स्वास्थ्यसे है। स्वास्थ्यपर ही उसके जीवनके सारे आनंद एवं सुविधाएं निर्भर हैं और स्वास्थ्य ही उसे प्रत्येक प्रकारके दुःख, कष्ट और त्राससे बचा सकता है। अतः इस विषयपर अपने विचार प्रकट करते समय हमें न किसीके संबंध में चुप रहने और न किसीके दोषोंपर पर्दा डालनेकी जरूरत है। हमें चाहिए कि इस महान काममें लगे हुए लोगोंपर अपनी सतर्क दृष्टि रखें और प्रत्येक वस्तु, हित और व्यक्तियों को उसके सामने गौण समझें।

इस दृष्टिसे म अपने पहलेकी प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति और पुराने चालके शाकाहारकी गलतिया प्रकाशमें लानेसे नहीं झिझकूगा। पर ऐसा करनेमें किसीको कष्ट पहुचानेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं ह।

अब म एक ऐसी जीवन-पद्धति और चिकित्सा-पद्धतिका जिक्र करुगा जिसका विज्ञानसे कोइ सबध नहीं ह। इसमें हमें, जसा कि मैंने पहले कइ बार कहा ह, प्रकृति-गुरुसे पथ प्रदशन प्राप्त करना होगा और निश्चय ही एक दिन एक उज्ज्वल सुदर प्रभात-की वेलामें तमसावृत गगनको भेदकर प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित होगी, जिसका मानव-जाति प्रसन्नतापूवक स्वागत करेगी।

यह चिकित्सा-पद्धति प्रकृति-गुरुकी भांति ही अत्यत सीधी-सादी एव सरल है। इस पद्धतिमें प्रत्येक रोग और रोगोंकी एक ही प्रणालीसे चिकित्सा होती ह और इसकी मान्यता है कि सभी रोगोका कारण अप्राकृतिक जीवन है तथा प्रकृतिके नियमों एव कार्योंमें कही वषम्य नहीं ह। मेरी धारणा है कि सभी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिया धीरे धीरे इस एक सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिमें विलीन हो जायगी।

इस पद्धतिमें, जिसे सीखना कहा जाता ह उस अर्थमें, सीखनेको कुछ नहीं ह। कोइ भी, जिसने अपनेको आधुनिक विज्ञानकी चकाचौंधसे मुक्त कर लिया ह एव बुद्धिमत्ताको आधुनिक अर्थोंमें ग्रहण करनेसे अपनेको बचा लिया है इसका व्यवहार कर सकता है। इस पद्धतिका अनुसरण करनेवाला सारा चिकित्सक समुदाय, भेषज-पट्टियों आदिकी गुलामी करनेसे और परवशतासे बच जाता है।

प्रकृति कभी गलती नहीं करती। अत प्रकृतिमें वह

विरोधाभास और चूक नहीं है जिसके कारण लोग प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीको अपनाते झिझकते हैं।

जो रोगी हर तरहका पथ प्रदर्शन प्रकृतिसे ही प्राप्त करता है उसे प्रकृति बिना किसी प्रकारकी कठोरता दिखाए बड़ी आसानीसे, बिना कष्टकर अभावोंमें डाले, बड़े आराम, मौज, शीघ्रता और निश्चयात्मक भावसे स्वास्थ्य, शक्ति और जीवनके तेजवान कुसुमोंसे भरे, हरे भरे प्रकाशपूर्ण उद्यानका अधिकारी बनाती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सस्त-से सख्त प्राणलेवा रोग, जिन्हें देखकर चिकित्सक अपनेको असहाय पाता है, प्रकृतिके हाथों पड़कर अपनी भयंकरता खो देते और नष्ट हो जाते हैं।

सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिकी राग भजन दाक्ति मस्तिष्क और आत्मातक पहुंचती है। दिमागमें काले गम फट जाते हैं और आत्मा स्वास्थ्यदायक शक्ति जलमें अवगाहन करती है। मनुष्य पाप, दोष, घृणा, ईर्ष्या एवं अशुभ चिंतनसे मुक्ति पा जाता है और पीड़ित मनुष्यके हृदयमें फिर शांति, आनंद, मातृभाव एवं प्रसन्नताको स्थान मिलता है।

अंतमें नूतन वसंत अपनी उषा सुंदरी लिए अवतरित होता है और मनुष्यको इस पृथ्वीपर स्वर्गका आनंद मिलने लगता है।

मैं अपनी चिकित्सा करते वक्त एक बार प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालीकी गलतियां उलझनों एवं इसके द्वारा मनुष्य और प्रकृतिके बीच खड़े किए गए झगड़ेको देखकर इससे भाग खड़ा हुआ था। जिस प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिका मैं वर्णन करने जा रहा हूं, अंतमें आकर उसीमें मुझे सच्ची शांति और आनंद मिला।

जब इस शताब्दीमें लोगोंने नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर एक बार फिर प्रकृतिकी राह पकड़ी तो उन्हें ज्ञात हुआ कि सभी रोग शरीर एवं रक्तके दूषित होने—उनमें रोगोंके कीटाणु एवं विजातीय द्रव्यके प्रवेश पानेसे होते हैं। इस सत्यकी जानकारीके बाद औषधोपचारकी सीखके अनुसार रोगियोंके शरीरमें विष एवं कोई भी असजातीय वस्तु—दवा आदि डालकर रोगका भूत भगानेकी कोशिश बंद कर दी गई। फिर लोगोंने रोगी शरीरमेंसे विजातीय द्रव्य निकालनेकी कोशिश प्राकृतोपचारके केवल एक साधन—जलद्वारा की।

इस दिशामें विंसेंट प्रिसनीज नामक एक किसान सज्जन अग्रणी थे। इसलिए उन्हें आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीको सही नींवपर खड़ा करनेवाला पहला आदमी कहना चाहिए।

आरंभमें जल-चिकित्सा-प्रणाली ही प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली थी। पहले पहल केवल जल-चिकित्सालय स्थापित हुए।

इसलिए मेरी पहली कोशिश यही हुई कि मैं स्वयं पहले प्रकृतिसे जलके सही प्रयोग सीखूं।

इस कोशिशमें मैंने महसूस किया कि मेरी अंतर्ध्वनि, जिसे नैसर्गिक वृत्ति कहनी चाहिए, जलके किसी खास प्रयोगके लिए प्रेरित नहीं कर रही है।

पर मुझे कुछ वनवासियोंसे ज्ञात हुआ कि प्रकृतिके प्रांगण-में विचरनेवाले पशु, जो अपने सारे कार्य नैसर्गिक वृत्त्यनुसार करते हैं, स्नानके विषयमें कुछ खास नियम बरतते हैं।

मैंने उनकी आदतोंका अध्ययन करना आरंभ किया और इन तथ्योंपर पहुंचा।

वे क्यों स्नान नहीं करते यह भी स्पष्ट[१] है। स्नानसे शांति मिलती है, यदि शिकारपर जीनेवाला जानवर शांत हो जाय तो उसका काम ही बिगड़ जाय। उनके लिए यह स्वभावतः आवश्यक है कि वे खूंख्वार और गरम बने रहें, तभी वे अपना शिकार कर सकते हैं। उसकी खूनकी यह चाह[२] उनके मांसाहारी होनेका कारण है।

फिर कोई कारण नहीं कि जीवोंका सिरमौर मनुष्य क्यों न स्नान करे। यही मानना ठीक होगा कि प्रकृति चाहती है कि मनुष्य स्नान करे ताकि उसकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बनी रहे और उनका पूर्ण विकास हो सके।

मनुष्यकी नैसर्गिक वृत्ति हमेशासे उसे स्नानके लिए प्रेरित करती रही है। यद्यपि उसके अंदरकी आवाज उसे साफ-साफ बता नहीं रही है कि वह किस तरह स्नान करे,

---

[१]घरेलू कुत्ता जब तेज गर्मी पड़ती है तो कभी-कभी पानीकी जगहमें घसा जाता है इस स्नानका नाम नहीं दिया जा सकता।

[२]मांसाहारके कारण शिकारी जानवरके मुंहमें खून किस प्रकार लग जाता है यह आसानीसे समझा जा सकता है।

शिकारी कुत्ता जबतक उसे निरामिष भोजन दिया जाता है शिकारपर हमला न कर केवल शिकारको हांफनेका काम करता है पर ज्यों ही उसे गोश्त खिलाने लगते हैं वह शिकारको पकड़ने और मारनेका काम करने लगता है।

एक अजायबघरके एक बंदरका स्वभाव बड़ा स्नेही और शांत था। पर जब उसे गोश्त खिलाने लगे तो वह बदमिजाज हो गया और अपने रखवालेको भी, जिससे पहिले उसकी दोस्ती थी काट खानेको दौड़ने लगा।

यदि शिकारी जानवर क्रूर और खूंख्वार न हो तो शिकार कर ही न सके।

फिर भी प्रत्येकको अपना पेड, मलद्वार, जननेंद्रियको जलद्वारा ठंडा रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती ही है।

अतः पशु अपने शरीरकी बनावटके अनुसार अलग-अलग रीतिसे स्नान करते हैं। स्तनपायी पशु और पक्षी भिन्न भिन्न रीतिसे स्नान करते हैं।

जिस किसीने पशुओंको ध्यानपूर्वक स्नान करते हुए देखा होगा उसे इस बातकी प्रतीति हुई होगी कि पशु कीचड़ (या पानी) में स्नान करते वक्त अपनी जननेंद्रियको ठंडा करने या रगड़नेका बहुत ध्यान रखते हैं। इससे यह भलीभांति समझा जा सकता है कि मनुष्यको, जब कि वह खास तौरसे खुलेमें बिना किसी बाहरी वस्तु या किसी व्यक्तिकी सहायतासे स्नान करता है, किस प्रकार स्नान करना चाहिए।

अब मैं प्राकृतिक स्नानका वर्णन करूंगा। इन दिनों सब
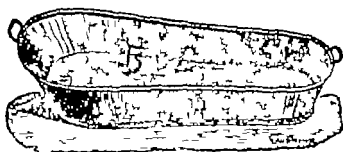
प्राकृतिक स्नानके लिए टीनका बना हुआ टब

लोग घरमें कमरोंमें ही स्नान करते हैं और सबको सब समय बाहर खुली जगहमें स्नानकी सुविधा भी नहीं है। अतः लोगोंको पानी रखनेके लिए टबकी या किसी पात्रकी आवश्यकता पड़ती

है। इस स्नानके लिए कोई भी पात्र या टब[1] हो सकता है पर वह इतना बड़ा जरूर होना चाहिए कि उसमें पैर सिकोड़कर घुटने ऊंचे किए हुए आसानीसे बैठा जा सके।

स्नानार्थीको अपने टबमें साढ़े तीन इंच गहरा पानी, जो स्वाभाविक ठंढा हो, भरकर इस प्रकार बैठना चाहिए कि जल उसके पैर, नितंब और जननेंद्रियके अधिकतर भागपर आ जाय। नितंब और पैरके तलवे टबके पेंदेसे लगे रहें और घुटने हमेशा ऊपर उठे रहें।
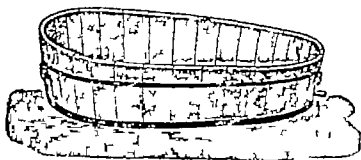
लकड़ीका बना हुआ एक टब

इस प्रकार टबमें बैठनेके बाद सटे हुए घुटने फैला दिए जाते हैं और पानीको हथेली (चुल्लू) से पेड़ूपर जोरसे मारा जाता है।

इस प्रकार पेड़ूपर पानी मार लेनेके बाद तुरंत पेड़के बीच-के भागको, दोनों किनारोंको और सारे पेड़को ही एक या दोनों हाथोंसे तेजीसे मला जाता है। पानी मारना और पेड़ू रगड़ना

[1] टब जस्ते और लकड़ी दोनों ही प्रकारके हो सकते हैं, पर लकड़ीके बने टबको अधिक कामकर समझना चाहिए।

थोड़ी ही देर चलता है और फिर यदि स्त्री यह स्नान ले रही है तो उसे ऊरुसंधि (दोनों जांघोंके बीचका भाग) और जननेंद्रियके ऊपरी भागको खुले हाथसे जलके अंदर (टबके पेंदेमें नितंब लगे रहेंगे तो यह भाग जलके अंदर ही रहेगा) रगड़ना चाहिए। पुरुष भी ऊरुसंधिके चारों ओर, अंडकोषको और मलद्वार और जननेंद्रियके बीचके सीवनके चारों ओर पानीके अंदर ही खुले हाथसे रगड़ें। इसके बाद हाथोंसे पानी ले-लेकर सारे शरीरको धो डालना चाहिए। शरीर धोनेमें देर न लगे इसके लिए इस काममें किसी दूसरे आदमीसे भी सहायता ली जा सकती है। फिर सारे शरीरको खुले हाथोंसे (तौलिए या अंगोछेसे नहीं) रगड़-रगड़कर अच्छी तरह सुखा लेते हैं। शरीरको सुखानेके लिए तौलिए या अंगोछेका व्यवहार बिल्कुल न करना चाहिए।

अच्छा हो कि स्नानके बाद रगड़नेकी सारी क्रिया खुद ही करें। इससे कसरतका भी लाभ मिलेगा। जरूरत समझी जाय तो शरीरको दूसरेसे भी रगड़वाकर सुखाया जा सकता है। इससे भी लाभ होगा, हानिकी कोई संभावना नहीं है। शरीर रगड़नेके संबंधमें अपने विचार मैं विस्तारसे फिर कहूंगा।[1]

स्नानके बाद कमरेमें और सुविधा हो तो खुली जगहमें थोड़ी देर नंगे बदन टहलना अच्छा है। पर स्नानके बाद शरीरमें गर्मी आ जाय इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

---

[1]स्नानके साथ जननेंद्रिय धोने और रगड़नेकी जो क्रिया बताई गई है वह खास तौरसे स्त्रियोंके लिए है पर पुरुषोंके लिए भी बहुत लाभदायक है। इससे जननेंद्रियकी उत्तेजना और जलन खास तौरसे दूर होती है

तेजीसे टहलनेसे कसरत या किसी भी श्रमसाध्य कार्यसे गरमी जल्द आ जाती है। यदि टहलने या कसरत आदिद्वारा गरमी न लाई जा सके तो कंबल वगैरह कुछ गरम चीज ओढ़कर लेट रहना चाहिए।

उष्णता और शक्तिके स्रोत धूपमें रहकर शरीरमें गरमी लाना अति उत्तम है।

प्राकृतिक स्नान कितनी देरतक किया जाय ? इसका उत्तर शरीरकी स्थिति और गरमीपर निर्भर है। इस विषयमें प्रत्येकको अपनी रुचि समझने और अंदरकी आवाज सुननेकी कोशिश करनी चाहिए। ठंडकके दिनोंमें दो से पाँच मिनटतक यह स्नान करना काफी होता है। गरमीके दिनोंमें और खूब गरमी हो तो यह स्नान दस मिनटतक या इससे अधिक समयतक भी किया जा सकता है। जितना समय स्नानमें लगाया जाय उस समयका आधा पेडू और जननेंद्रिय भागके मलनेमें लगाया जाय।

स्नानके लिए जो समय यहाँ निश्चित किया जा रहा है उसमें स्नानके बाद सारे शरीरको धोने और उसे रगड़कर सुखानेमें लगनेवाला समय सम्मिलित नहीं है। कितनी बार यह स्नान किया जाय ? इस प्रश्नका उत्तर भी प्रत्येक व्यक्तिको स्वयं देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतुमें यह स्नान नित्य किया जा सकता है और यदि खुली जगहमें[1] सूर्यके प्रकाशमें या प्रकाशभरे कमरेमें किया

[1]खुलेमें स्नान करनेके लिए पत्थर या सीमेंटके टब बनवाए जा सकते हैं। सभी टब कुशादा होने चाहिए। छोटे टबमें अच्छी तरह स्नान करते नहीं बनता।

जाय तो दिनमें दो बार भी स्नान कर सकते हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह स्नान दो-तीन दिनमें एक बार करना काफी होगा। कभी-कभी कुछ समयके लिए इस स्नानको बिलकुल भी बंद कर दे सकते हैं।

ज्वरसे जलते हुए रोगी और पुष्ट शरीरवाले, ठंडी देहवाले, कमजोर, रक्ताभावके रोगीकी बनिस्बत अधिक बार स्नान करेंगे।

कई लोग यह स्नान थोड़ी देरतक करते हैं और कई बार करते हैं, कई इसे देरतक करना और देरमें करना पसंद करते हैं। ये दोनों बातें प्रकृतिके संपकमें रहनेवाले वनके पशुमें भी देखी जाती हैं।

प्राकृतिक स्नानके लिए गरम पानी कभी न लिया जाय। यदि यह स्नान कमरेमें किया जाय तो उसकी खिड़कियां खुली रहनी चाहिए ताकि कमरा ठंडा रहे।

स्नानके बाद पैरों और मलद्वारको अच्छी तरह साफ पानीसे धो डालना चाहिए। इससे ये स्थान साफ रहेंगे। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह बहुत आवश्यक है।

यह स्पष्ट है कि खुली जगहमें स्नान करना अत्युत्तम और अधिक प्राकृतिक है।

खुलेमें प्राकृतिक स्नानकी सुविधा हर कहीं भी मिल सकती है क्योंकि जहां आदमी रहते हैं वहां थोड़ा बहुत पानी तो आसानीसे मिल ही जाता है।

सारा शरीर डुबोकर स्नान करनेकी सुविधा प्रकृतिके प्रांगणमें हर जगह नहीं है। ऐसा स्नान बहुत थोड़ी-सी जगहोंमें किया जा सकता है—केवल उन्हीं जगहोंमें जहां बड़ा नाला,

नदी, झील या तालाब होता है। इसलिए खुलेमें प्राकृतिक स्नानकी सुविधा साधारण स्नानकी सुविधाकी बनिस्बत अधिक जगहोंमें और आसानीसे पाई जा सकती है।

प्राकृतिक स्नान जिस प्रकार बैठकर लेते हैं उसमें बड़ा आराम मिलता है। यह आसन कष्टकर तो किसी प्रकार है ही नहीं।

प्राकृतिक स्नान जलके अन्य सभी प्रयोगोंसे भिन्न है, खास तौरसे इस मानेमें कि यह स्नान करते समय नहानेवाला चुपचाप बैठा या लेटा नहीं रहता बल्कि शरीरके कुछ विशेष अंगोंको हरदम रगड़ता रहता है और अंतमें अपने सारे शरीरको तौलिए या इसी तरहकी किसी अन्य चीजसे नहीं बल्कि खुले हाथसे रगड़ता है।

आजतकके प्रचारित जलके सभी प्रयोग इस प्राकृतिक स्नानसे भिन्न हैं, अतः वे प्राकृतिक नहीं हैं। उनसे लोगोंको कभी समुचित लाभ नहीं हुआ और अनेक बार वे नुकसान करते देखे गये हैं। प्रकृति यह चाहती है कि लोग उसकी इच्छानुसार ही चलें। अबतकके प्रचलित सभी स्नानोंसे प्राकृतिक स्नान प्रत्येक दृष्टिसे अधिक सरल और लाभकर है। इसमें थोड़ेसे पानी (गरम पानीकी तो बिलकुल नहीं) की जरूरत होती है और यह अपने आप लिया जा सकता है। इसमें किसी सहायककी आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए जिस टबकी जरूरत होती है वह बहुत साधारण प्रकारका होता है और अन्य टबोंकी बनिस्बत आसानीसे हटाया-उठाया जा सकता है। बड़े मजेमें आप इसे खाटके नीचे सरका दे सकते हैं और सबेरे उठते ही उसमें स्नान कर सकते हैं।

इसलिए यह आशा की जाती है कि इस स्नानका अन्य जटिल स्नानोंकी बनिस्बत कुटुंबोंमें और साधारण जनतामें अधिक शीघ्रतासे प्रचार होगा।

यात्रा करते समय या अन्य किसी मौकेपर इस स्नानके लिए आवश्यक टब या कोई बड़ा पात्र न मिले तो यह स्नान एक अन्य सरल रीतिसे किया जा सकता है। इस रीतिमें केवल हाथ धोनेवाली चिलमची (टीनिया) की जरूरत होती है।

स्नान करनेवाला पानीसे भरी चिलमचीपर बैठ जाता है और मलद्वारको धोता तथा जननेंद्रियपर हाथसे कुछ मिनटतक पानी डाल-डालकर ठंडा करता रहता है। इसके बाद क्रमसे पेडू और सारे शरीरको धोकर बदनको रगड़-रगड़कर सुखाते हैं।

इस तरहका स्नान कहीं भी किसी समय भी किया जा सकता है और इससे सरल और सादा दूसरा स्नान संभवतः है भी नहीं।

यह स्नान इस प्रकारसे लेनेके बाद भी थोड़ी देरतक नंगे बदन टहलना अच्छा है। इससे स्नानके लाभमें वृद्धि होती है।

प्राकृतिक स्नान चाहे किसी रीतिसे भी क्यों न लिया जाय, सभी प्रचलित जलप्रयोगोंसे अधिक लाभकारी है।

मैंने इस स्नानकी रीतिपर जितना ही अधिक विचार किया मुझे अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि स्नानकी यह रीति नहानेकी अन्य सभी रीतियोंसे निश्चय ही श्रेष्ठ है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वीके आदिम निवासीको हफ्तों और संभवतः कभी-कभी महीनातक गीली जगहमें चलना पड़ता था और कभी-

कभी उसे बरफपर भी चलना पडता था। और बहुत सभव है कि उसे घटो ऐसी जगहमें खडा रहना पडा होगा और जमीनपर चूतड रखकर बैठना भी पडा होगा। इसलिए प्रकृतिने मनुष्यके पैरो और नितबोंकी अवश्य ही ऐसी रचना की है कि वे पानी और ठडक बर्दाश्त कर सकें पर प्रकृतिने जो रचना आवश्यकतावश की है उसमें मनुष्यका सबसे बडा लाभ भी छिपा है। आजका सुसभ्य मनुष्य अपने पांवोंको और मलद्वारको अप्राकृतिक रीतिसे गरम रखता है जिसकी वजहसे भीतर सूजन आ जानेके कारण कहीं-कहीं खूनकी हरकत रुक जाती है (बवासीरका मस्सा वगरह हो जाता है) और फलत एक बडे लाभसे वह वचित ही नहीं रहता वरन् नुकसान उठाता है। इसलिए अनेक प्राकृतिक चिकित्सक अपने रोगियोंको गीली जगहमें घटों टहलनेकी और कुछ देर खडे रहनेकी राय देते हैं और उन्हें ऐसी चीजपर बैठनेसे मना करते हैं जिससे गुदाद्वार में गरमी पहुचनेका डर हो और गुदा-द्वारसे थोडा पानी चढाकर रोकनेकी भी सलाह देते हैं। यह सभी जानते हैं कि गुदाद्वारके अतिम छोरपर मलके रुके रहने और बवासीर वगैरह हो जानेसे वहां गरमी पैदा होती है जिसका असर मस्तिष्कपर बहुत बुरा पड़ता है। अत इस स्नानसे सिरकी शिकायतें दूर हो जाती हैं। पैर और नितबोंके पानीमें रहनेसे रक्तसचालन सम होता ह। पेडूकी गरमीके कारण रोग होता है और रोगमें पेडूकी गरमी बढ जाती है, ऐसी हालतमें पेडूको ठडा करना कितने अधिक लाभका होगा।

प्राकृतिक स्नानमें प्राकृतिक चिकित्साशास्त्रके विशिष्ट प्रतिनिधियोंद्वारा रोगनिवारणाथ लाइ जानेवाली सभी विधि-

योंका जसे—नगे पांव टहलना, पानीमें खडे रहना, मलद्वार-को गरम होनेसे बचाना, एनिमाका प्रयोग, वायु और प्रकाश-स्नान, पेडूकी ठडी पट्टी, पेडूनहान, जलस्नान, जननेंद्रियकी ठडक पहुचाना, तरेरा, पेडू और शरीरकी मालिशका समावेश हो गया है। इतनी विधियोंके एक साथ प्रयोगकी विधि प्रकृतिका आविष्कार है, अत प्राकृतिक नहान सब विधियोंसे अधिक प्रभावशाली और मनुष्यजातिके लिए लाभदायक है।

इन प्राकृतिक उपादानोंका व्यवहार करनेपर शरीरमें उनकी एक जोरदार प्रतिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप शरीरका विजातीय द्रव्य स्थान च्युत होकर निकलने लगता है और निश्चयात्मक रूपसे रोगनिवारक उभार होता है जो कष्ट-कर पीडाके रूपमें प्रगट होता है।

उपचार जितना ही अधिक प्राकृतिक होता है, उभार अक्सर उतना ही जोरदार होता है।

पर इन उभारोंसे डरनेकी जरूरत नही है, ये सवदा स्वागत करने योग्य हैं। ये उभार अक्सर चिकित्साके आरभमें ही होते हैं, इनसे डरकर या इनके होनेपर नहान बद करनेकी जरूरत नहीं है।

मनुष्य प्रकृति-पथसे दूर जा पडा है। वह धरती माता-द्वारा खुले हाथो दिये गये फलोंपर जीवन-यापन नहीं करता, वह नगा नहीं रहता और प्रकृतिके उसके लिए बनाए वायु, पृथ्वी, जल आदिसबधी नियमोंको कृपलता चलता है। फलस्व वह रोगी हो गया। वह अब पुन प्रकृतिसे सामजस्य स्थापित-कर स्वास्थ्य लौटा सकता है। उसे प्रकृतिसे फिर पथ प्रदशन

प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए किसी तरहकी चालाकीकी जरूरत नहीं है, न इसके लिए कुछ जानने या सीखनेकी आवश्यकता है वरन् स्वास्थ्यका सही रास्ता पानेके लिए उसे उन सभी झूठी और अनावश्यक बातोंको भुला देना चाहिए जो जबरदस्ती सीखनी पड़ी हैं। उसे अपने सिरपरसे अक्लके सारे बोझका उतार फेंकना चाहिए। इस बोझके नीचे आत्मा और मन दबे रहते हैं और इसने मनुष्य-जातिको मूर्ख और अंधा बना रखा है। जब मनुष्य प्रकृतिके बोल सुनने लगता है तब उसे और किसी चीजके जाननेकी इच्छा नहीं रह जाती। वह यह नहीं जानना चाहता कि प्रकृतिके नियमोंपर चलनेपर रोगोंका क्यों नाश हो जाता है और क्यों शरीरका स्वास्थ्य एवं शक्ति बढ़ जाती है और न उसे शरीर, मन एवं आत्माके व्यापारके समझनेकी ही जरूरत रह जाती है। मनुष्यका आजका ज्ञान अविश्वसनीय है, मनुष्य इसके चक्करमें पड़कर भटक जाता है।

बच्चेकी तरह प्रकृति माताकी गोदमें अपनेको डाल देनेमें ही मनुष्य-जातिका कल्याण है।

प्रकृतिविरोधी सभी आदतें एक साथ छोड़ सकना सम्भव नहीं है। यदि कुछ आदतें अच्छी हों तो मैं उन्हें भी बुरी आदतोंके साथ धो बहाना नहीं चाहता और आजके मनुष्यकी हर एक चीजको सकारण समझनेकी आदतको भी तरजीह देना चाहता हूं।

इसलिए मैं रोगकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अपने विचार समय-समयपर उपस्थित करता रहूंगा और प्राकृतिक स्नान एवं अन्य प्राकृतिक चिकित्साके उपादानोंके उग्र प्रभावशाली होनेका कारण बताऊंगा।

रोग अप्राकृतिक भोजन करने अर्थात ऐसा भोजन करनेसे, जिसे प्रकृतिने मनुष्यके लिए नहीं बनाया है और न उसकी पाचन प्रणाली ही उसके पचाने योग्य बनी है, पैदा होते हैं। ऐसी दशामें अप्राकृतिक खाद्योंके पेटमें जानेपर या तो उनका पाचन बिल्कुल होता ही नहीं और यदि होता भी है तो आधा-पर्धा। जिस अंशका पाचन नहीं होता वह अंश विजातीय द्रव्य बनकर शरीरमें पड़ा रहता है, अंग प्रत्यंगमें घुस जाता है, सड़ने[1] लगता है और मनुष्यके लिए रोग, दुःख तथा कष्टका कारण बनता है।

जल, प्रकाश आदिके अभावके समान मनोभावोंका कठिन आवेग भी स्नायुसंबंधी क्रिया और पाचनक्रियाको बिगाड़कर और पंगु बनाकर तथा विजातीय द्रव्यके सड़नेमें सहायक होकर या प्रोत्साहन देकर रोगोंका पोषण करता है और रोगोंकी उत्पत्तिका कारण होता है।

सड़न गरमी पैदा करती है जिसमें रोगोंके घातक और हानिप्रद तत्त्व निवास करते हैं।

रोगनाशके लिए सबसे पहले हमें शरीरकी भीतरी गर्मीको शांत करना चाहिए किंतु जीवन-शक्तिको भी उद्दीप्त

---

[1]आजकल अधिक जीर्ण रोगके ही रोगी देखनेमें आते हैं। जब विजातीय द्रव्य तेजीसे सड़ने लगते हैं तो शरीरमें एक क्रांति-सी मच जाती है। ऐसी दशामें शरीर विजातीय द्रव्यको एकाएक और शक्तिशाली ढंगसे निकालने लगता है। शरीरकी इस क्रियासे तीव्र रोग (सर्दी मियादी बुखार, निमोनिया आदि) होते हैं। शरीरमें जब इतना बल नहीं होता कि तीव्र रोग पैदा कर सके तो वह जीर्ण रोगोंका घर बन जाता है।

करना आवश्यक है। इस शक्तिके सहारे ही शरीर भोजनसे पोषण (शरीरकी मरम्मतके लिए सामान) ग्रहण करता है और विजातीय द्रव्य (रोगके विष)को पसीने, पेशाब, पाखाने द्वारा निकालता है। जीवन शक्तिपर ही मनुष्यका जीवन निर्भर है।

यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक स्नान इन दोनों लक्ष्योंकी पूर्ति करता है।

रोगोंके उत्पत्ति-केंद्र पेड़पर और स्नायुओंके मुख्य केंद्र जननेंद्रियपर ठंडे जलका प्रयोगकर हम शरीरकी भीतरी गर्मीको शीघ्र-से-शीघ्र कम करनेमें सफल होते हैं। स्नानके समयकी रगड़नेकी क्रिया भी स्नायुओंको जगाती है और शरीरके भीतरकी गर्मी कम करनेमें सहायक होती है।

इस स्नानमें गुदाद्वारका धुल जाना और उसका ठंडा हो जाना इसका विशेष अंग है।

सभी औषधियां जो प्रकृतिसे नहीं ली गई हैं एवं जो प्रकृतिके नियमानुकूल नहीं हैं चाहे उन्होंने ऊपरी लाभ बार-बार दिखाया हो पर अंतमें वे निरर्थक ही साबित होती हैं। अप्राकृतिक ओषधियोंके बहुतसे धोखे हैं। सभी अप्राकृतिक ओषधियोंसे निश्चयपूर्वक नुकसान होता है और यह नुकसान चिकित्साके आगे-पीछे ज़रूर दिखाई देता है। कभी-कभी ये ओषधियां जब भीतर बहुत अधिक नुकसान पहुंचा देती हैं तभी उसका असर बाहर प्रगट होता है। ऐसे सब अप्राकृतिक उपचार अथवा ऐसे उपचार, जो पूरी तरह प्रकृति नियमानुकूल नहीं हैं, आते-जाते रहते हैं। उन्हें कभी समाजमें स्थायी स्थान नहीं मिलता।

ओषधि-संसारमें रोज ही नई दवाएं इजाद होती हैं, उनका प्रचार होता है और जितनी शीघ्रतासे उनका प्रचार होता है उतनी ही शीघ्रतासे वे मिट भी जाती हैं। आज कहा जाता है कि कार्बोलिक एसिडसे दुनियाका उद्धार हो जायगा, कल सैलीसाइलिक एसिडका नाम लिया जाता है, परसों किसी नये ददनाशकके गुण गाये जाते हैं, फिर किसी और ओषधिपर संसारके भाग्य टिके बताये जाते हैं, और अंतमें ये सभी ओषधियां हानिप्रद एवं अनर्थकारी सिद्ध होती हैं। आज तो लोग चुपचाप अपनेको उन भयानक ओषधियोंकी भेंट कर देते हैं जिनका भयानक फल भविष्यके गर्भमें छिपा रहता है।

डाक्टर फास्टने अपने स्वर्गवासी पिताके साथ अनेक बार लोगोंको ओषधियां और जादूभरे नुस्खे बांटे थे। ईस्टरके दिन लोग इसके लिए उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने आए तो वे दवाके रूपमें विष बांटनेके अपने पश्चात्तापको छिपा न सके। कविवर गेटेने उनके हृदयगत पश्चात्तापका उनके मुंहसे इस प्रकार प्रकट कराया है

"यदि आप लोग मेरे अंतर्तमके भावों को जान सकते तो जानते कि मैं अपने पिता और अपनेको आपके समाजके कितना अयोग्य समझता हूं। हम लोगोंकी दवा करती क्या थी? रोगकी नहीं रोगीको ही समाप्त कर देती थी। किसीने इसके लिए हमसे कभी जवाब तलब नहीं किया। आज

मैं ही पूछता हूं यदि किसीने हमारी ओषधियोंसे लाभ प्राप्त किया है तो वह सामने आए। आपकी इन सुंदर एवं पवित्र घाटियों और पहाड़ियोंमें हमारी नारकीय गोलियां महामारीकी तरह आईं। मेरे दिये उस ज़हरने हजारोंको मौतके घाट उतारा और आज हमारे-ऐसे बेशर्म खूनियोंकी दुनिया प्रशंसा कर रही है और उसे सुननेके लिए मैं जीवित हूं।'"

प्रकृतिकी शरणमें जानेके बादसे जब कभी मैंने अपने स्वास्थ्य और उसकी कुशलताके लिए सच्चा उपाय जाननेकी कोशिश की है तब हर बार मैंने देखा है कि ये उपाय सर्वथा प्राकृतिक होते हैं, अर्थात् जो कुछ जब कभी मैंने प्रकृतिसे जाना है उसकी परीक्षा करनेपर वह पूर्णतया सत्य साबित हुआ है। जब प्रकृतिके नियमानुकूल सभी कार्य किए जाते हैं तब उन कार्योंकी सत्यताकी जांच व्यर्थ है। जो कार्य प्रकृतिकी इच्छा

'गत शताब्दीके अंतमें मनुष्यजातिके रोगी-वृक्षमें एक सजीव शाखा प्राकृतिक चिकित्सा प्रस्फुटित हुई। महाकवि गेटेने इसका प्रभाव पहलेसे पा लिया था। इस महान व्यक्तिके सामने सभी चीजें पूर्ण स्पष्ट नहीं हुई थीं—यह उनके अंतिम वाक्य हैं— 'ईश्वर! हमारा हृदय प्रकाशसे भर दो।' इसीसे प्रकट होता है कि प्रकृतिमें जो सत्य है उसके निकट न पहुंच गये थे। प्राकृतिक चिकित्साके जन्मकी सूचना उन्हें मिल गई थी। गेटेने अपनी महान कृति 'फास्ट" में जगह-जगह अपनी ओजपूर्ण कवितामें आजकी सभ्यताकी बेहूदगियोंकी कटु आलोचना की है।

नुसार होते ह उन्हें हमेशा सत्य समझना चाहिए। पशु और पृथ्वीके आदिम निवासी जब वे प्रकृतिके सपकमें रहते थे तो क्या वे स्नान और भोजनपर प्रयोग करके जानते थे कि उन्हें कसे नहाना चाहिए और क्या खाना चाहिए ? अत प्राकृतिक स्नानको भी किसी ऐसे प्रयोगमें पडनेकी जरूरत नहीं हुइ।

इस प्रकार जब मने पहली बार स्नान किया तो मुझे वह लाभ और वह ताजगी मालूम हुइ जो मुझे अपने जीवनमें जलके अन्य किसी स्नानसे नहीं प्रतीत हुइ थी।[1]

मेरे सिवा और दूसरे जिन लोगोने इसकी परीक्षा की उन सबको भी इसकी अनुकूलता और इससे प्राप्त हुए लाभपर आश्चय हुआ। सबको स्नानके समय एक बडी ही सुखद ठढककी प्रतीति होती थी और स्नानके बाद उनका बदन पहलेसे ज्यादा अच्छी तरह और समान रूपसे गरम हो जाता था। प्राय सभी लोग कहते थे कि नहान आरम करनेके बादसे भूख बढ गइ है पैर ठीक तौरसे गरम रहते हैं, त्वचा ठीक

---

[1] थोडे ही एसे थ जो इस स्नानके कारण हुए रोगके उभारसे डर गये थे। उदाहरणार्थ एक सज्जनको जिन्हें पुरानी फफडेकी बीमारी थी जब उन्होंने स्नान शुरू किया तो उनका जीर्ण रोग नवीन रोगमें परिणत हो गया—रोग जानका यह शुभ लक्षण ह। इन्हीं महाशयने यह भी कहा कि धूपस्नान उनके अनुकूल नहीं पडता। जब धूपस्नान लेते हैं तो बदनके अग-अगमें दर्द हो जाता है। जब कि इस ददका यह मतलब है कि उनके शरीरके विजातीय द्रव्य (रोगके कीटाणुओंको) सूयकी किरणें अपनी जगहसे निकाल फेंकनेके लिए हटा रही हैं। जिन रोगियोंको प्रकृति और उसकी चिकित्सा-शक्तिका इतना-सा ज्ञान नहीं है वे शायद ही कभी स्वास्थ्यलाभ कर सकें।

तौरसे काम करती है, पसीना थोड़ा-थोड़ा निकलने लगा है, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित रहता है, काम करनेमें जी लगता है, और भी सब तरहसे लाभ प्रतीत होता है।

इस स्नानकी तारीफमें मुझे मिले सैकड़ों पत्र और खुशी खुशी आकर लोगोंकी गाइ गइ प्रशंसा मैं यहां उद्धृत कर सकता हूं। पर मैं किसी तरहके ढोल व नगाड़े बजाकर इसकी तरफ लोगोंका ध्यान आकर्षित करना नहीं चाहता मैं चाहता हूं कि लोग स्वयं इसे कर देखें और इसके लाभको समझें।

प्रत्येक व्यक्ति जो प्रकृतिको समझता है वह जानता है कि प्राकृतिक भावोंके अनुकूल और उसकी इच्छाके अनुसार किए गए काय मनुष्यमात्रके लिए कल्याणके साधन हैं। ऐसा व्यक्ति इस स्नानका स्वागत अवश्य करेगा और उसे यह स्नान अकूत सुख और स्वास्थ्य प्रदान करेगा। यदि ऐसे आदमी जिनका प्रकृतिकी अवहेलना करना ही धम है और जिन्होंने विज्ञान और डाक्टरमें अपनी सारी श्रद्धा डुबो दी है, यदि इस स्नानका उपहास करें और इसकी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखें तो हमें उसकी परवाह नहीं करनी है।

इस स्नानका प्रयोग आरंभ करनेवालोंको मैं इसके संबंधमें कुछ और बातें बता देना चाहता हूं। इस स्नानके गरम पानीसे किए जानेका म विरोधी हूं। ऐसा करना प्रकृति-विरुद्ध है। ठंडे-से-ठंडे पानीमें भी पैर और नितंब रखकर बैठना बहुत कठिन नहीं है। जहां एक बार पैर और जननेंद्रिय धोइ और रगड़ी गइ, पेड़ूके अंदर ठंडक पहुंची कि गून वहां (जो ठंडे पानीसे बहुत डरते हों वे आरंभमें यह स्नान बहुत हल्के गरम पानीमें या गरम कमरेके अंदर कर सकते हैं) दौड़ आता

है और सारे बदनमें गरमी आ जाती है। पर इसपर भी जाडेके दिनोंमें यदि कोइ यह स्नान न कर सके, गोकि ऐसा होता बहुत कम है, तो या तो यह स्नान बहुत थोडी देरके लिए करे या फिर बिल्कुल ही बद कर दे। ऐसी अवस्थामें नगे रहना, पेडपर मिट्टीकी पट्टी रखना जिसके बारेमें आगे चलकर मैं विस्तारसे बताऊगा, आदि उपचारोसे लाभ उठाया जा सकता है।

स्नानके लिए टबमें जो पानी भरा जाय वह बहुत गहरा न हो, रोगीके हाथके पजे जितना गहरा काफी होगा। साधारणत एक व्यक्तिके लिए तीन इच गहरे पानीसे अधिककी जरूरत नहीं होती। स्नानके बाद शरीरको रगड़ने और कसरत करनेकी जो राय दी गइ है वह कसरतके किन्हीं खास नियमो अथवा मालिशकी किसी खास पद्धतिके अनुसार नहीं होनी चाहिए बरन् इनके करते वक्त अपनी इच्छा और रुझानका ख्याल रखना चाहिए।

जिसे सुविधा हो (जो खोजता है उसे सुविधा मिल ही जाती है) वह यह स्नान खुली जगहमें ले। आरभमें मनुष्य खुली जगहमें ही स्नान करता था। यदि वह इस स्नानसे पूरा लाभ लेना चाहता है तो फिर खुलेमें वह इसे करना आरभ कर दे। गदी हवा और कमरेमें बैठकर भोजन करनेके बजाय खुली जगहमें बैठकर भोजन करनेपर भोजन भी अधिक स्वादिष्ट लगता है और उससे शरीरको लाभ भी अधिक पहुचता है।

स्त्रियोंको मासिक धर्मके समय यह स्नान बद कर देना चाहिए पर नगे पाँव टहलना, वायु और प्रकाशस्नान करना,

मिट्टीकी पट्टी लेना आदि बंद करनेकी जरूरत नहीं है। इस समय इन्हें करते रहना विशेष लाभकारी है।

यह स्नान नदीमें, (यदि गहरी हो तो तटके निकट) झरनों एवं छोटे तालाबमें किया जा सकता है। यदि कमरेमें किया जाय तो खिड़कियां थोड़ी-बहुत जरूर खुली रहें। सबेरे कुछ भी खानेके पहले अथवा तीसरे पहर दोपहरका भोजन पच जानेके बादका समय यह स्नान करनेके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

सभी मछलियां (जलके जीव) हवासे दूर रहना चाहती हैं और हवामें रहनेवाले सभी प्राणी अपने शरीरको पानीसे बचाते हैं और जब स्नान भी करते हैं तो अपने शरीरकी बनावटके अनुसार शरीरके कम-से-कम भागमें पानी लगने देते हैं। मनुष्य प्रकाश और वायुमें रहनेवाले सब जीवोंमें श्रेष्ठ है। यदि उसे हवा मिलनी एकाएक बंद हो जाय तो वह बहुत थोड़ी देरमें मर जायगा। यदि उसके लिए आवश्यक वायुका बहुत थोड़ा भाग भी रुक जाय तो जिस प्रकार पानीसे निकलते ही पानी बिना मछली मरने लगती है उसी प्रकार आदमीकी भी जीवन-शक्ति कम होने लगती है और वह कमजोर हो जाता है। जब आदमी प्रचलित स्नान करता है तो वह अपने शरीरको पानीमें डुबो देता है उस वक्त वह अपने रोमकूपों जिनसे वह काफी वायु शरीरमें ले जाता है न शुद्ध वायु ही खींच सकता है और न उपयोगमें लाई हुई गंदी वायु ही निकाल सकता है। अतः इस प्रकारके स्नानसे शरीरको हानि पहुंचती है और वह कमजोर हो जाता है। यदि ऐसा स्नान बहुत थोड़ी देर, कुछ क्षणोंके लिए ही किया जाय तो शरीरमें ठंडक पहुंचनेसे उसे जो लाभ मिलता है और यह ठंडक कुछ क्षणोंमें ही शरीरमें

पहुंच जाती है—वह शरीरके उतनी देर वायुसे वंचित रहनेकी हानिसे कुछ अधिक हो सकता है। पर यदि वह स्नान प्रचलित प्रथाके अनुसार पांच, दस या पंद्रह मिनट या इससे भी अधिक देरतक किया जाता है तो इससे बहुत अधिक हानि होती है। पर यदि हमारे किसी विशेष अंगको या भागको वायु न लगे जैसा कि चमड़ेके दस्ताने पहन लेनेपर हाथोंका हाल होता है, तो उस अंगको क्षति पहुंचती है। उससे वह एक तरहसे पंगु हो जाता है। बैठक-नहान'[1] लेते वक्त कमर और पेट चारों ओरसे पानीसे ढक जाता है इसलिए शरीरका यह अंग वायुसे वंचित हो जानेके कारण अकमण्य-सा हो जाता है और स्नान लेते वक्त समुचित रूपसे क्रियाशील नहीं रहता। अतः इस स्नानसे बहुत कम लाभ मिलता है। बैठक-नहानमें न पेड़ूपर पानी मारते हैं और न उसे रगड़ते हैं। प्राकृतिक स्नानमें पिछले जल-प्रयोगोंकी सभी गलतियां जिनके कारण स्नानका पूरा लाभ नहीं मिलता था दूर कर दी गई हैं। जल्के इस प्राकृतिक प्रयोगसे जो लोगोंको बड़े-बड़े लाभ मिल रहे हैं उसका यही रहस्य है।

अब यह आशा की जानी चाहिए कि प्राकृतिक स्नानका अमीर और गरीब, छोटे और बड़े समान रूपसे आदर करेंगे और जनतामें इसका प्रचार हो जायगा। इसके द्वारा बूढ़े और जवान, बच्चे और बड़े सबको वह आनंद प्राप्त होगा जिसे सहृदया प्रकृतिमाता खुले हाथों लुटानेको उत्सुक रहती

---

[1] बैठक-नहान कूनेके कटिनहानकी तरह किया जाता है। अंतर इतना ही है कि आदमी चुपचाप टबमें बैठा रहता है, पेड़ूको मलता नहीं।

—अनुवादक

है। यदि कोई कहे कि मैं स्वस्थ हूँ अतः मुझे इस स्नानकी जरूरत नहीं है तो यह उसकी गलती है, क्योंकि प्रकृतिकी प्रधान इच्छा यह नहीं है कि रोगी ही स्नानकर खोया स्वास्थ्य प्राप्त करे बल्कि वह तो यह चाहती है कि सभी स्नान करें स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें और सबका चेहरा प्रकाशसे दीप्त रहे। प्रकृतिके जिन अलध्य नियमोंके अनुसार गरमीके बाद जाड़ा और रातके बाद दिनका होना अवश्यम्भावी है, उन्हीं नियमोंके अनुसार अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाले गंदी हवामें रहनेवाले, शराब, चाय, काफी, तबाकूका व्यवहार करनेवालेका रोगका शिकार होना अवश्यम्भावी है। इसका यह मतलब नहीं है कि इस विनाशमें पड़े हुएको वही रोग हों जिनसे लोग आमतौरसे परिचित हैं या जो दिखाई देते हैं वरन् कोई-न कोई रोग शरीरमें अवश्य घर कर लेता है और आगे-पीछे वह स्पष्ट रूपसे प्रगट भी होता है।

कई बच्चे जब स्कूलमें जाते हैं तो उनका पढ़नेमें ध्यान नहीं लगता, वे सुस्त रहते हैं और उन्हें सबक बड़ी मुश्किलसे याद होता है। बहुधा वह लाड-प्यारमें खराब हुए होते हैं और पाप एवं दुराचारमें फँस जाते हैं। उन्हें इसके लिए दंड दिया जाता है और अक्सर वे बुरी तरहसे पीटे जाते हैं। सही बात यह है कि वह बच्चा भयंकर रूपसे रोगसे पीड़ित है, उस निर्दोषको व्यर्थ दंड दिया जाता है। पिताको अपने प्रिय पुत्र, और पतिको अपनी प्रिय पत्नीके साथ कठोरताका और कभी-कभी राक्षसका-सा व्यवहार करते और फिर उसके लिए पश्चात्ताप भी करते आपने देखा होगा। बेचारे नहीं जानते कि शराब तथा अन्य विषका उपयोग करनेके कारण

उनके स्नायु आवश्यकतासे अधिक गरम हो गए हैं और वे बीमार हैं।

कई अन्य प्रकारके लोग भी अनेक तरहके दुराचार और अपराधमें फस जाते है। ऐसे लोगोंको रोगमुक्त करने एव स्वस्थ बनानेके बजाय जेलो और पागलखानोंमें भेज दिया जाता है।

नववधू घरमें पैर रखती है और शीघ्र ही उसके स्वभावमें परिवतन होने लगता है। वह वहमी, चिडचिडी और मूर्छा रोगसे आक्रांत हो जाती है। "विवाहके कपडे मैले होनेके पहले ही हृदयकी चिर सचित कामनाए छिन्न भिन्न हो जाती हैं।" वैवाहिक जीवनमें चिर अभिलषित सुख नहीं मिलता, स्वर्ग नरकमें परिणत हुआ प्रतीत होता है। विवाहके समय जिस युवतीको लोग सवगुणसपन्न एव सहृदया कहते थे उसे लोग धीरे-धीरे डायन कहने लगते हैं। पर उस बेचारीकी भत्सना करना व्यथ है। जिस प्रकारका अप्राकृतिक जीवन विवाहित दपति साधारणतया व्यतीत करते हैं उसका कुछ फल तो मिलना ही है और पहला फल अक्सर पत्नीको ही चखना पडता है।

प्रकृतिके सपकमें रहनेवाले वनके पशु और पौधों (खेतके पौधे नहीं) का स्वास्थ्य, सौंदय और यौवन प्रत्येक जातिके लिए एक निश्चित समयतक कायम रहता है—केवल उनको छोडकर जिनमें प्राकृतिक जीवनमें मनुष्यने बाधा डाल दी है—और फिर उन सबकी मृत्यु हो जाती है।

आजके जमानेमें मनुष्योंकी हालत यह है कि बचपनमें ही किसीकी आखें खराब हो जाती है, किसीको सुनाई ही कम देने लगता है किसीके दांत गिर जाते हैं, किसीके बाल झड़

जाते हैं, कितनों ही को स्नायुदौर्बल्यका रोग हो जाता है और कितनों ही का दिमागतक कमजोर हो जाता है। आजकी अनिदितांगी सुंदरीपर कल ही कुरूपताकी छाया पड़ जाती है वह पीली और दुबली हो जाती है अथवा मोटी और भद्दी और अभी-अभी जो युवक उसके सौंदयसे अभिभूत था उसे वह घृणास्पद प्रतीत होने लगती है।

कितने ही आदमी, जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक रहती है, चिंतित और घबराए रहते हैं, कितने ही लखपतियोंपर तो भोजनतककी चिंता सवार रहती है।

> "चिंता हृदयके अंतस्तलमें निवास करने लगती है। एकांत पाते ही यह चिंता उसका कलेजा काटने लगती है, वह लुटी-सी दशामें छटपटाती रहती है।"

× × ×

> "हम उस आघातसे डरते रहते हैं जो हमें कभी नहीं लगा, हम उस वस्तुके लिए रोते रहते हैं जो हमने कभी नहीं खाई।"
>
> (गेटेके 'फाउस्ट' से)

इन सभी काली घटाओंको, जिनसे राजाके महल और गरीबकी झोंपड़ीकी शांति और सुख समानरूपसे विनष्ट होता रहता है, प्राकृतिक स्नान उड़ा और भगा देगा।

यह नवीन प्राकृतिक स्नान जिसे प्राचीन विशेषणसे विभूषित करना ही ज्यादा उपयुक्त होगा, मनुष्यका अपनेको जीवित रखनेकी आजकी लड़ाईके लिए जवानीको शक्ति और

स्फूर्ति प्रदान करेगा और उसके दौड़-धूप हड़बड़ीभरे जीवनमें शांति और मधुरता भरेगा। कुत्तोंद्वारा पीछा किए जानेपर थकान और बदहवासीकी हालतमें मैंने पशुओंको अपने स्नायुओं को शांत करने और पुन: शक्ति प्राप्त करनेको स्नानके लिए जलकी तलाश करते देखा है। आजके हतभागे मनुष्योंको जो आपसमें ही एक दूसरेका इस तरह पीछा करते हैं कि वे हमेशा थकानसे हांफते रहते हैं और उनके स्नायु हमेशा उत्तेजित-से रहते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाता कि प्राकृतिक स्नान उन्हें शांति और शक्ति दोनों प्रदान करेगा।

इस स्नानसे तत्काल लाभ यह मिलता है कि पेड़की गरमी शांत हो जाती है, ठंडक आ जाती है और जीवन-शक्ति (पाचन-शक्ति) इस हदतक बढ़ती है कि यह विजातीय द्रव्यको और अप्राकृतिक भोजनके कम पचे या अनपचे भागको निकालने लगती है जिससे वे लोग भी, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी किसी प्रकारके सुधारको स्थान नहीं दिया, रोगोंके आक्रमणसे बच जाते हैं।

जो इस रीतिसे बराबर स्नान करेंगे वे कभी पक्षाघात, विषाद रोग, मियादी बुखार, हैजा, नासूर, क्षय आदि रोगोंके चंगुलमें नहीं फँसेंगे।

प्राकृतिक स्नानके जो लाभ यहां बताए जा रहे हैं, इस स्नानके बाद होनेवाली अनुभूतिके आधारपर उनकी कोई भी आशा कर सकता है।

इस स्नानसे शरीरकी प्रतिक्रिया शक्ति भी बहुत अधिक बढ़ जाती है। उसकी दशा पहलेकी-सी हो जाती है जब कोई भी अनावश्यक वस्तु शरीरमें प्रवेश करते ही यह शक्ति उसे

निकाल बाहर करनेकी कोशिश करती थी। (उदाहरणके लिए जब कोई पहले-पहल सिगरेट पीनेकी कोशिश करता है तो उसे क और मिचली आती है।)

प्राकृतिक स्नान करने लगनेके बाद सिगरेट पीनेवालोंको सिगरेट पीना अच्छा नहीं लगता। शराब और मांसके आदियोंको कोई भी शराब अच्छी नहीं लगती और न मांस खानेकी इच्छा होती है। अधिकतर लोगोंका प्रकृतिके प्रति आकर्षण बढ़ जाता है और इस आकर्षणका लाभ उठाकर वे प्राकृतिक जीवनको अधिक-से-अधिक अपनानेकी कोशिश करते हैं। इस प्रकार आज जो अपनेको स्वस्थ कहते हैं वे भी इस स्नानसे आरोग्य लाभ करते हैं।

मैं चाहता हूं कि यह स्नान रोगियोंके निवासस्थानमें भी प्रवेश करे और अशक्त और ज्वराक्रांत, गठियासे पीड़ित और लूज, अंधे, बहरे, स्नायुदौर्बल्य एवं क्षयसे पीड़ितोंको भी, जो कष्टसे कराहते रहते हैं एवं की गई गलतियोंके लिए पश्चात्ताप करते रहते हैं, खुशीका संदेश सुनावे।

रोगी निराशाके अंधकारमें आशाकी किरणें ढूंढ़ते रहते हैं। सान्त्वनाका प्रत्येक शब्द उनपर असर करता है। प्राकृतिक स्नानकी बात बताई जानेपर उनमेंसे अनेक ठंडे दिलसे कहते हैं, आपकी बातें तो समझमें आ रही हैं पर विश्वास नहीं होता। ठीक है, अनेक बार अनेक प्रकारकी औषधियोंपर उन्होंने विश्वास किया और फल ऐसा निराशाजनक निकला कि उनकी सारी आशा ही मर गई।

पर पूछना यह है कि अबतक किसकी सहायताकी याचना और प्रार्थना की गई? जिन देवताओंकी अबतक पूजा की

गई उनकी परीक्षा होनी चाहिए थी, यदि उनकी बड़ी-बड़ी उपाधियों और बाहरी तड़क-भड़कको हटाकर उन्हें देखा जाता तो मालूम होता कि ये बहुत साधारण किस्मकी मिट्टी और पत्थरके बने हैं।

उनका विश्वास दवा देनेवाले चिकित्सकपर था और यदि कोई रोगी चिकित्सक महाशयके सामने प्राकृतिक चिकित्साकी तारीफ करता तो चिकित्सक महाशय कह देते कि उनकी दवा भी प्रकृतिसे ही ली गई है अतः हानिरहित है। इसमें क्या संदेह है कि सभी चीजें प्रकृतिसे मिलती हैं। तंबाकू और शराब भी तो प्रकृतिसे ही मिलती हैं जिनके कारण लोगोंको अपार कष्ट होता है। ऐसे जहर भी तो प्रकृतिसे ही मिलते हैं जिन्हें थोड़ी मात्रामें भी आदमी खा ले तो तुरत मर जाय। ये चिकित्सक अपनी दवा अधिकतर जहरीले पौधों और खनिजोंसे बनाते हैं। जंगली लोग और पशु, जिन्हें वृक्ष विज्ञानका कोई ज्ञान नहीं होता, जहरीले पौधोंको बिना चखे ही पहचान जाते हैं और उन्हें शत्रु समझकर उनसे बचते हैं। ये जहरीले पौधे और 'शोधक' रसायन हमारी विकृत रसनाको भी अपनी प्राकृतिक अवस्थामें बहुत बुरे लगते हैं! इससे यह साबित होता है कि जब इन्हें अप्राकृतिक तरीकोंसे और भी खराब कर दिया जाता है, तब वह हमारे लिए और भी हानिकर होते हैं। स्वास्थ्यावस्थाकी बनिस्बत रोगावस्थामें इनका उपयोग अधिक हानिकर होगा।

ईश्वर अपनी आज्ञाएं स्पष्ट शब्दोंमें और विविध रीतियासे बराबर देता है जैसे, "तू वृक्षोंको न खा" हम उस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वरकी आज्ञाओंका उल्लंघन बराबर

करते हैं और दवस्वरूप स्वगसे बार-बार निकाले जाते है।

कुछ लोग प्राकृतिक चिकित्साकी बड़ाई सुनकर इतन अधे हो जाते हैं कि वे अपनेको "प्राकृतिक चिकित्सक" के हाथों सौंप देते हैं और समझते हैं कि उनकी अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा हो रही ह। ऐसी दशामें भी अनेकोंकी आशा निराशामें ही परिणत होती है।

यदि हम प्रकृतिकी शरण जाय तो आज भी हमें निश्चय पूवक और आसानीसे ज्ञात हो सकता है कि स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारणके लिए हमें किन साधनोंका अवलम्बन करना चाहिए। चिकित्सक कहता है कि ताजे फल न खाओ। खाना ह तो उन्हें उबालकर खाओ। पर प्रकृति हमारे लिए हमेशा उबाले हुए नहीं, ताजे फल ही उपजाती है इसलिए ताजे फल ही प्रत्येकके लिए और प्रत्येक दशामें अच्छे रहेंगे, क्योंकि प्रकृतिकी पाकशाला सर्वोत्कृष्ट पाकशाला है। दूसरे प्राकृतिक चिकित्सक महाशय गेहूके आटेकी रोटी भर भर पेट खानेकी राय देते हैं। हमने देखा ह कि स्परो (एक पक्षी) और घोड़ा राइ और गेहूकी बालियाँ खाना पसद करता है पर मालूम होता है मनुष्य इन बालियोंको प्राकृतिक दशामें नहीं पचा पाता। पशु इन्हें कच्ची या अधपकी दशामें और इनको डठलसमेत खाना ज्यादा पसद करता ह पर साधारण राटी या खमीर उठाइ हुइ रोटी भूसी और डठल निकालकर केवल पके अन्नक गूदे (बिना चोकरका आटा) की बनती ह। और भी देखा जाता है कि जब घोड़ों और अन्य पशुओंसे खास तौरसे कठिन श्रमका काम नहीं लिया जाता उस वक्त यदि उन्हें गेहू या जइ ज्यादा खानेको दी जाती ह तो उनके पैरोंमें सख्ती आ जाती ह

और वे बदमिजाज हो जाते हैं। घोड़ेकी संवेदनशीलता तो देखिए कि जहां उसे खास तौरसे सवारीके काममें आनेवाले घोड़ेको ज्यादा आटा खिलाया गया कि वह बीमार पड़ा। जंगली घोड़े और जेवरा जो केवल घास खाकर रहते हैं पालतू घोड़ोंसे कितने अधिक सुंदर, तेज, मजबूत और कठिनाई बर्दाश्त करनेवाले होते हैं। डबल रोटीका अन्न पिस-पककर अपनी प्राकृतिक अवस्थासे बहुत भिन्न हो जाता है इसलिए अच्छा यही है कि डबल रोटी खानेकी राय देनेवालोंकी बात अनसुनी कर दी जाय और जब कोई उपाय न चले तभी खमीर उठाई रोटी खाई जाय और उसे थोड़ी-से-थोड़ी खाकर काम चलाया जाय। जिस आटेमें बाहरी चीजें डालकर खमीर उठाते हैं उसकी रोटी तो कभी न खाई जाय।

अक्सर लोग वाष्पस्नानकी राय देते हैं पर प्रकृतिने किसीके साथ वाष्पस्नानका कटघरा पैदा नहीं किया, न प्रकृतिमें कहीं कोई ऐसी चीज मिलती है जिसकी तुलना वाष्पस्नानके कटघरेसे की जा सके। इसलिए चाहे सभी प्राकृतिक चिकित्सक एक स्वरसे क्यों न वाष्पस्नानकी तारीफ करें पर है यह नुकसानदेह ही। मेरे कथनकी सत्यता तो भविष्य प्रमाणित करेगा गोकि इक्के-दुक्के लोग तो आज भी वाष्पस्नानका खुल्लमखुल्ला विरोध करते सुनाई देते हैं।

तो यह साफ है कि प्रकृति बड़ी सरल और सुबोध भाषामें बोलती है। प्रकृतिकी यह भाषा किसी स्कूलमें नहीं पढ़ाई जाती पर यदि हम इसके समझनेकी कोशिश करें तो यह भाषा हमें अधिकाधिक समझमें आने लग जायगी।

कुछ लोगोंको समयके प्रभावसे प्रकृतिकी आवाज सुनाई नहीं

देती और जिन्होंने विश्वविद्यालयोंमें और ऐसे स्थानोंमें, जहां स्वास्थ्य-सबधी ज्ञान प्रकृतिका विरोध करना समझा जाता है शिक्षा पाई है उन्हें विशेषत यह आवाज नहीं सुनाई पड़ती। इन विश्वविद्यालयोंमें खाद्योंपर प्रयोग किए जाते हैं, उनके विभाज्य अगोका पता लगाया जाता है और एकपर दूसरेकी प्रतिक्रिया जानी जाती है और यहां यह उम्मीद की जाती है कि मुर्दे बतायेंगे कि जिंदोंमें भोजन किस प्रकार सजीव पदार्थमें परिणत हो जाता है।

समुचित भोजन क्या है ? स्वास्थ्य रक्षाके लिए भोजनके सबधमें क्या जानना चाहिए ? इन प्रश्नोंके उत्तरके लिए आदि निवासियोंने न कभी रसायनसबधी तालिकाको देखा, और न जगलमें रहनेवाले घोड़े और हिरन अपने भाई-बहनोंके दांतकी जांच करते है और न पेटकी बनावट जानते हैं और न आंतोंकी लबाई ही नापते हैं। इसलिए प्रकृतिकी यह इच्छा नहीं है कि उपरोक्त रीतिसे हमलोग स्वास्थ्यसबधी ज्ञान प्राप्त करें, इस प्रकारका ज्ञान प्रकृतिके विरुद्ध है। अत यह हमेशा गलतीके रास्तेपर ले जानेवाला है। प्रयोगशालामें निर्जीव वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं पर मनुष्यकी पाचनशालामें उसके सजीव शरीरके अग और विभाग तैयार होते हैं। रासायनिक द्रव्योंकी बाहर होनेवाली क्रिया प्रतिक्रियाकी तुलना मनुष्य-शरीरके स्नायुजालपर होनेवाले असरसे नहीं की जा सकती। शरीरके परिचालन, पाचन एव जीवनके पीछे कुछ गुप्त शक्तियां काम कर रही हैं जिन्हें हम न कभी समझ सके, न कभी उन्हें समझ सकनेकी उम्मीद है। निःसदेह आजका मनुष्य निरतर और बिना दम लिए अन्वेषणके कार्यमें लगा

हुआ है पर यह भी यह एक देवीके इस श्राप—"पृथ्वीपर तू आवारगी और भगोड़ेका जीवन व्यतीत करेगा"—का भरना भर रहा है, लेकिन—

> **"दिनके प्रकाशमें भी वह हमें दिखाई नहीं देता, हमारे शोर करनेपर वह हट नहीं सकता, प्रकृति जो हमें बताना नहीं चाहती, वह हम सड़सी, हथौड़े और चाकूके जोरसे नहीं जान सकते।"**

(गेटेके 'फाउस्ट' से)

जिन तत्त्वों, द्रव्यों और क्रियाओंका महत्त्व प्रयोगशालामें होता है उनका मनुष्यके आमाशय और स्नायुजालके लिए लाभकर होना आवश्यक नहीं है। यही नहीं, ये उनके लिए अनर्थकारी भी सिद्ध हो सकते हैं। फलतः इस प्रकारका विज्ञान हमेशासे मूर्खतापूर्ण विचारोंसे भरा रहा है।[1] ऐसे युवकोंपर जो बाहरी प्रभावके प्रति सवेदनशील रहते हैं और जो आजकी गलत शिक्षाके कारण आंख मूदकर सर्वज्ञ और प्रमाणके पंडित कहे जानेवाले लोगोंकी बात सोलहों आने सही मान लेते हैं, गल्तीका

---

[1]लोग कहते हैं कि औषध-विज्ञानको इस प्रकार सीधे-सीधे गलत नहीं कहा जा सकता। औषध-विज्ञानका जन्म मनुष्यके प्राकृतिक जीवनके पतनके साथ हुआ और ज्यों-ज्यों मनुष्यने अप्राकृतिक जीवनको अपनाया इसकी उन्नति हुई और अप्राकृतिक जीवनके अन्तके साथ-साथ इस विज्ञानका अंत होना भी निश्चित है। इतिहास बताता है कि अनेक प्रकारके दूषण सदियोंतक प्रचलित रहे हैं और फिर मिटे हैं। जादूगरीको मिटते तो विज्ञानने स्वयं देखा है।

असर खास तौरपर होता ह । यह असर इनपरसे मिट नहीं पाता उनपर इसकी छाप लग जाती ह । जो चिकित्सक विद्यालय द्वारा अपने सिरपर लादे बोझको उतार फेंकना चाहता है और वहां सीखी गइ गलतियोसे छुटकारा पाना चाहता ह उसे इसके लिए विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होगी और अपने अदरसे उस झूठे घमडको, जो हलकी चीजोंको मूल्यवान बतानेकी कोशिश करता है, निकाल डालनेकी जरूरत होगी।

सबको ऐसी शिक्षा देनी कि सब अपनी चिकित्सा आप कर सकें, यह पवित्र आदश प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सकके सामने होना चाहिए।

दूसरे हमारे लिए सार्वे या सोचनेका बहाना करें यह दस सकना बडा आसान और साथ-साथ मजेदार भी ह । पर यदि लोग स्वास्थ्यका सत्य माग पाना चाहते हैं जीवन-पथमें विहार करना चाहते हैं तो प्रत्येकको अपना डाक्टर आप बनना चाहिए।

पर मैं किसी रोगीको प्राकृतिक स्नान करनेकी राय दू तो क्या उसे मेरी बात माननी चाहिए? जरूर? और बिना झिझकके! मेरा स्नानसे कोइ सबध नहीं ह । यदि सबध ह तो इतना ही कि इस स्नानको इस रूपमें प्रकृतिसे प्राप्त करनेका मेरा सौभाग्य रहा है। और भी जो कुछ म इसके बारेमें कह रहा हू यह केवल यह दिखानेके लिए कि खेत, चरागाह, जगल और घाटीमें रहनेवाले प्राणी जो अब भी प्रकृतिके भावको समझ पाते हैं इस स्नानको जानते हैं और लाभके साथ इसका उपयोग करते हैं। गो कि हमारी भावना नसर्गिक वृत्ति और विवेक बहुत कुछ दब गए हैं फिर भी ये इतने सजग तो हैं ही कि हम उनक

द्वारा यह जान सकें कि हमारे लिए सही रास्ता क्या है। आज भी हमें हमारी रसना बता सकती है कि बिना बिगाड़ी स्वाभाविक दशामें हम जिन खाद्योंका उपयोग कर सकते हैं वे करमकल्ला, आलू या मांस नहीं हैं। प्रकृतिने हमारे लिए फल, छोटे रसीले फल, (शहतूत, मकोय, जामुन इत्यादि) और गिरीवाले फल (बादाम, अखरोट नारियल) ही उपजाये हैं। इसी तरह जिन्होंने और अनेक प्रकारके स्नान किए हैं प्राकृतिक स्नानसे उन्हें जो आराम और ताजगी मिलती है उससे इस स्नानकी सर्वश्रेष्ठताके विषयमें उनके मनमें कोई संदेह नहीं रह जाता।

इसलिए स्वास्थ्यमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी आनेपर जिसे लोग आज रोगके नामसे पुकारते हैं या स्वास्थ्य बिलकुल खराब होनेकी दशामें भी जिसे नाना ओषधियां, जो कुछ-न-कुछ प्रकृति-विरोधी अवश्य रही होंगी, न सुधार पाई हों, हमें प्राकृतिक स्नानका पूरे विश्वासके साथ उपयोग करना चाहिए। पर एक रोगी जब खतरनाक और नुकसानदेह दवाओंसे अपना पिंड छुड़ा लेता है और प्राकृतिक निरापद ओषधियोंकी शरण जाता है तो खाई गई दवाओं और गलत चिकित्साके कारण उसका रोग इतना बढ़ गया होता है कि उसे प्रकृतिकी प्रकाश, वायु भोजन, मिट्टी आदि अधिक आवश्यक ओषधियोंकी भी जरूरत होती है। यदि आज आप किसीको यह बताइए कि तुम्हें नंगे रहना पड़ेगा, खास तौरसे ठहलनेके वक्त, चाहे बहुत थोड़े समयके लिए ही नंगे रहनेको कहिए और यह भी कह दीजिए कि यह क्रिया कमरेमें अकेले खिड़कियां खोलकर करना होगा तो भी वे घबरा जाते हैं और यदि उनसे कह दीजिए कि तुम्हें मांसका भी त्याग करना होगा तो उनकी व्याकुलता और

भी वढ़ जाती है ! क्योंकि वे समझते हैं कि उन्हें सारी शक्ति मांससे ही मिलती है। पर यदि इनसे स्नान करनेको कहिए तो ये किसी तरह मान जायगे, खास तौरसे प्राकृतिक स्नान। क्योंकि इसमें ठंडे पानीमें सारे शरीरको क्या आधे शरीरको भी डुबोनेकी जरूरत नहीं पडती। तो फिर पहले प्राकृतिक स्नान ही करना आरंभ किया जाय।

निश्चय ही जल प्रकृतिकी विशेष ओषधि है जिसके द्वारा वह अपने बच्चोंको बडे-बडे लाभ देना चाहती है। और जो जलका यह प्रयोग प्रकृतिकी इच्छित रीतिसे करेगा उसे बाइबिलका यह वाक्य "पृथ्वीको कोइ रूप नहीं मिला था, वह बिल्कुल शून्य थी और ईश्वरकी सत्ता समुद्रपर राज्य करती थी" समझमें आ जायगा। बपतिस्मा लेते वक्त पाक फिरिश्ते क्यों ईसाके पास आये ? और क्यों बपतिस्मा लेना ईसाई-सम्प्रदायमें धार्मिक संस्कार एवं शारीरिक आध्यात्मिक स्वास्थ्यका चिह्न माना जाने लगा—इसका कारण भी यह समझ आयगा।

पर आज देखिए तो कोइ बहरा मिलेगा तो किसीको दूरकी चीज दिखाइ नहीं देती, किसीके पैर सूजे हैं किसीके कूबड़ निकल आया है किसीका यकृत काम नहीं करता, किसीके मूत्राशयमें गडबडी ह कोइ मिरगीके दौरेसे परेशान ह कोइ पागलपनका शिकार ह तो काइ दिमागकी कमजोरीसे पीड़ित ह। कितने ही बदमाशे पीडित हो कब्रकी तरफ बढ़ते दिखाइ देते हैं तो कितने ऐसे मिलेंगे जो समाजसे बहिष्कृत ह क्योंकि ये उपदंशसे ग्रसित हैं। अब आप मुझसे पूछ सकते हैं 'क्या यह स्नान इन सभी रोगोंका नाशक ह, और जलका

यह एक प्रयोग क्या सभी रोगियोंका तारक है ? इस साधारणसे स्नानमें इतने करामात छिपे तो दिखाइ नहीं देते" ? इस प्रश्नका मेरा उत्तर यह है "हां, प्रत्येक रोगमें प्रत्येक रोगीके लिए और रोगकी प्रत्येक अवस्थामें यह स्नान यथेष्ट है ।" इस रीतिसे रोग-निवारण बड़ा सरल-सा काय दिखाइ देता है पर जो विधि प्राकृतिक है उसका सवथा सरल होना भी आवश्यक है । हमारे शरीर, मन और आत्मामें पदा होनेवाले सारे विघ्नों और रोगके सारे लक्षणोंका कारण हमारा प्रकृतिके नियमोंका उल्लघन करना एव उनका रौंदना ह । इसलिए स्वास्थ्य प्राप्तिका एक ही माग है और वह है प्रकृतिकी ओर लौटना, प्रकृति-पथपर चलना और प्रकृतिका बताया उपचार करना । जिस प्राकृतिक जल-प्रयोगकी यहा चर्चा की जा रही है उसके अलावा कोई अन्य प्रयोग प्रकृति हमें नहीं बताती ।

प्रकृतिमें वह प्रत्येक चीज, जिसे मनुष्यके हाथोंने अपवित्र और दूषित नहीं किया है, शिव और सुदर है अर्थात् विश्वसनीय है । मनुष्य जितना ही प्रकृतिकी ओर बढ़ेगा और उसकी ओषधियोंको अपनायेगा वह अपने शरीर, मन और आत्मामें आइ खराबीके और बची जीवन-शक्तिके मुताबिक जल्दी या देरी-से पुन स्वास्थ्य प्राप्त करनेमें सफल होगा । अत यदि हम प्रकृतिके आदेशोंको पुन समझनेकी कोशिश करें और उनका पालन करना अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति और दशाके अनुरूप सच्चे हृदयसे आरभ कर दें तो समझ लीजिए कि हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, जिसका परिणाम स्वत हमारे लिए अधिक-से-अधिक शुभ और मगलकारी होगा।

सर्वांगसुदर और सुशील मनुष्य अर्थात् पूण स्वस्थ मनुष्यके

सबसे अच्छे उदाहरण हैं बल्वेडियरका अपोलो और वीनस (कामकी देवी)। ये यूनानी मूर्ति कलाकी उत्कृष्ट कृतियां हैं। उदाहरणके अभावमें हम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि मनुष्यकी बौद्धिक और आत्मिक शक्तिका मापदंड क्या होना चाहिए, उसे कितना सजीव होना चाहिए, उसकी बुद्धि कितनी ग्रहणशील और तीक्ष्ण, उसका स्वभाव कितना मृदु एवं उसके हृदयमें कितनी दया और प्यार होना चाहिए अर्थात् उसे देवत्वके कितने निकट पहुंचना चाहिए। इसकी कल्पना तो तब हो सकती जब पूर्ण विकसित काकेशश जाति (कोहेकाफके रहनेवाले) प्रकृतिसे विछुड़ न गई होती।

मनुष्य जब पूरी तरह प्राकृतिक जीवन अपना लेगा वह अपने शारीरिक,[1] मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्यके आदर्शके निकट पहुंच जायगा। इस आदर्शके कितने निकट वह पहुंचेगा यह उसके वंशानुगत प्रभाव, उम्र, जीवन-शक्ति और प्राकृतिक जीवनकी पूर्णता अथवा अपूर्णतापर निर्भर करता है।

बच्चोंके लिए यह अच्छा सुअवसर है। अतः जिस तरह हो उस तरह उन्हें पुनः स्वर्गीय सुखद रास्तेपर चलाना चाहिए और प्राकृतिक स्नान अवश्य कराना चाहिए। तब हमें यह देखकर आश्चर्य होगा कि स्वभावसे वे सुशील हो गए हैं और स्कूलमें उन्हें पाठ भी बहुत जल्द याद होने लगा है। सादापन और

---

[1]जलस्नान-जैसे पूर्णतः प्राकृतिक उपादानोंकी सहायतासे ही शरीरको सच्चे अर्थमें सुंदर बनाया जा सकता है। केवल यही एक ऐसा साधन है जिससे मुंहकी झुर्रियां गायब हो जायंगी और त्वचा सुचिक्कन। दूसरे सभी उपाय व्यर्थ हैं, उलटे इनसे अधिक वे हानि पहुंचाते हैं। यदि हमारी माता और बहनें इसे समझ सकतीं!

मूकता भी पागलपनकी तरहके ही रोग हैं। ये भी प्राकृतिक स्नानसे अच्छे हो जाते ह।

बांझपन और बच्चा होते वक्तके कष्ट बड़े भयावह हैं। प्राकृतिक स्नानके प्रयोगसे, इस प्रकार प्राकृतिक जीवनकी ओर आंशिक रूपसे लौटनेसे सभ्यताकी दीवानी स्त्रीपरसे यह श्राप बहुत कुछ छूट जायगा। प्रकृतिके सपकर्मे रहनेवाली सभी मादाओंकी तरह उन्हें भी बच्चा जनते वक्त न कोइ कष्ट होगा और न इससे उन्हें कोइ खास कमजोरी आयेगी। बच्चा भी अधिक स्वस्थ और सुदर होगा और उसे पिलानेका मधुर कतव्य पालन करनेके लिए प्रकृति उसे यथेष्ट दूध देगी। इस दिशामें मुझे अनेक अनुभव हुए हैं और सभी सफल रहे हैं। हम यह देख चुके हैं कि सभी रोग और विशेषतया जीण रोग प्रकृतिके नियमोंके उल्लघनके फल हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा है अप्राकृतिक भोजन पचता ही नहीं और यदि पचता भी है तो बड़ी कठिनाइसे। ऐसे भोजनके कारण और हमारे अनेक दूषणोंके कारण हमारा स्नायविक बल अथवा जीवन-शक्ति घट जाती है। यहींसे जीण रोगका आरम होता है। विजातीय द्रव्य पेटसे वायव्य, तरल और घन-रूपमें उठकर सारे शरीरमें फैल जाता ह।[1] यह शरीरकी आकृतिको बदल देता है। मस्तिष्क और आत्मामें विकृति पदा कर देता है। प्रत्येक विचारवान् आदमी जानता ह कि शरीर, मस्तिष्क और आत्माका बड़े निकटका

---

[1] एक सैनिकके एक बार कंधेमें गोली लगी और वह उस वक्त निकल न सकी। वह धीरे-धीरे सरककर एक साल बाद पैरमें स्वयापर आ गई। उस उदाहरणसे शरीरमें विजातीय वस्तुके चलनेका अनुमान किया जा सकता है।

और गहरा संबंध है। भोजनका अनपचा भाग और विजातीय द्रव्य ज्यों ही शरीरमें इकट्ठा होना शुरू होता है शरीर उसे अपने निष्कासन मार्गोंसे मल, मूत्र, प्रश्वास, स्वेद आदिके रूपमें निकालनेकी कोशिश करता है। पर यदि विजातीय द्रव्य बराबर इकट्ठा होता रहता है तो फिर वह इस स्वाभाविक रूपमें नहीं निकल पाता। तब फिर शरीर ताजी हवा, हवाके झोंक, ठडक आदिसे उद्दीपन पाकर इसे जबरदस्ती निकालनेकी कोशिश करता है। शरीरकी इस क्रांतिको तीव्र रोग कहते हैं। इस क्रांतिके साधारण रूप जुकाम वगैरहको सर्दी लगना कहते हैं। उसके उग्र रूप जैसे चेचक, लालबुखार, हाफाडाफा, मियादी बुखार, हैजा आदिमें शरीरमें उठती सडानके फलस्वरूप हमेशा ज्वर भी साथ होता है।

अतः तीव्र रोगोंको, जिनसे लोग व्यग्र डरते हैं, शरीरका शोधक एवं लाभकर उभार समझना चाहिए और उनके आने पर सहर्ष उनका स्वागत करना चाहिए। ये खतरनाक तभी साबित होते हैं जब उनका गलत उपचार होता है, मसलन् दवासे और जब रोगीको ताजी हवासे वंचित कर दिया जाता है। इससे शरीर कमजोर हो जाता है, उसके सारे काम बद हो जाते हैं। और विजातीय द्रव्योंको, जो आंदोलित हुए रहते हैं, शरीर निकाल नहीं पाता, जिसके फलस्वरूप रोगीको बडा कष्ट होता है और उसकी मृत्युतक हो जाती है।

उदाहरणतः यदि कफ (विजातीय द्रव्य) काफी मात्रामें निकल जाय तो सर्दी लगना हमेशा लाभकर सिद्ध होता है। चेचकमें बालककी मृत्यु तभी होती है जब दाने पूरे वेगसे नहीं

निकलते अर्थात् दानोके रूपमें शरीरका विजातीय द्रव्य अच्छी तरह बाहर नहीं आ जाता।

रोग, विजातीय द्रव्यमें गति आ जानेके कारण और उसके सड़नेकी अवस्थामें उसके कणोंके आपसमें रगड़नेके कारण जब शरीरमें गरमी उत्पन्न हो जाती है, बढ़ता है। यह गरमी खास तौरसे पेटमें, जो रोगका प्रधान स्थान है, पैदा होती ह। तीव्र रोग अर्थात् तीव्र ज्वरमें जब विजातीय द्रव्य आंदोलित हो उठता है शरीरकी गरमी इतनी अधिक बढ़ जाती है कि शरीरके लिए खतरा पैदा हो जाता है। प्राकृतिक स्नानसे यह गरमी काफी कम की जा सकती है। पानी और खास तौरपर यदि वह ज्यादा ठंडा हो तो ज्यों ही वह पेटपर लगता है रोगीको बड़ी शाति मिलती है और वह ताजगीका अनुभव करने लगता ह। स्नानसे शरीरकी जीवन-शक्ति भी बढ़ती है जो उसे रोगके कीटाणुओंको निकाल फेंकने और शरीरको निमल बनानेमें सदा सहायक होती है। फलत मल शरीरसे शीघ्र ही (कभी कभी इसमें दो-तीन दिनतकका समय भी लग जाता ह) पसीने, पाखाने और पेशाबके रूपमें तेजीसे निकलने लगता है।

इसलिए तीव्र रोग होनेपर चाहे वह साधारण जुकाम हो या हाफाडाफा, मियादी बुखार, हैजा आदि-सा असाधारण रोग, प्राकृतिक स्नान करना चाहिए और फिर धूप लेकर या ऊनी कपड़े ओढ़कर पसीना लानेकी कोशिश करनी चाहिए। इन रोगोंमें वायु और प्रकाशस्नान खास तौरसे लाभकारी हैं। इसका खास खयाल रखना चाहिए कि रोगीको रात दिन शुद्ध एव स्वच्छ वायु मिले। जाड़ेके दिन हों और ठंढक काफी पड़ती हो तो भी कमरेकी खिड़कियां खुली रखनी चाहिए। भोजनका

चुनाव बडी समझदारीसे किया जाय। जहाँतक हो सके इसे हमेशा प्राकृतिक रखा जाय। यदि इन नियमोंका पालन किया गया तो परिणाम हमेशा ठीक होगा और रोग जानेके बाद स्वास्थ्य इतना अच्छा हो जायगा कि आप यह कह उठेंगे कि दयालु प्रकृति हमारे शरीरमें रोग हमारे लाभके लिए उत्पन्न करती है। सभवत यहाँ यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि तीव्र रोग होनेपर जितना शीघ्र इस विधिसे उपचार आरम कर दिया जायगा लाभ भी उतना ही निश्चयात्मक रूपसे और स्थायी मिलेगा। यदि इन उपायोंका अवलबन रोगीकी अतिम अवस्थामें करेंगे जब कि रोगीको गया हुआ समझ लिया जाता है तब वसी अवस्थामें रोगीके अच्छे होनेकी उम्मीद बहुत थोडी रह जाती है।

ओषधियां शरीरको पगु बना देती है और उसके सात्त्विक कार्योंको रोक देती हैं। शरीरकी इसी दशाको आजकल तीव्र रोगोंका शमन कहा जाता है। इन शमनात्मक उपायोंके फलस्वरूप शरीरकी बडी क्षति होती है। वह स्नायुदौर्बल्य, दूषित घाव, मृगी यक्ष्मासे जीर्ण रोगोंका शिकार हो जाता है। आजकल जो नये-नये रोग इतनी जोरसे फले हुए दिखाइ देते हैं उसका कारण टीका और ओषधियां ही हैं।

जीर्ण रोगकी बढी हुइ अवस्थामें जीवन-शक्ति (पाचन क्रिया) बहुत घट जाती है, मलनिष्कासनके द्वार (गुर्दे, पेट, आँतें) बिल्कुल निष्क्रिय हो जाते हैं और त्वचा अपना काय बिल्कुल नहीं करती। शरीरमें विजातीय द्रव्यको तेजीसे निकालनेकी शक्ति नहीं रह जाती—तीव्र रोग नहीं होते तब विजातीय द्रव्य शरीरके अदर ही सडता रहता है फिर वह किसीके

फेफड़ोंमें, किसीके परोंमें, किसीकी आंखोंमें तो किसीके मस्तिष्कमें अदरूनी ज्वर पैदा कर देता है। अतमें सारा नाड़ीमडल ही विक्षिप्त हो जाता है उसमें पूण अवसाद आ जाता है। अब यक्ष्मा, नासर, उपदश, मधुमेह, मिरगी, गठिया खुले घाव, पागलपन आदि रोग होते ह जिन्हें आमतौरसे जीण रोग कहते हैं। इन रोगोंमें विजातीय द्रव्य शरीरको ध्वस कर देते हैं और शरीर अधिकाधिक कमजोर होता जाता ह। शरीरमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि यह विजातीय द्रव्यको बलपूवक तेजीसे या धीरे-धीरे भी निकाल सके। अत स्नायुदौबल्य, पागलपन और यक्ष्मा आदिके रोगियोंको शायद ही कभी जुकाम होता है और शायद ही कभी उन्हें मियादी बुखार आदिसे तीव्र रोग होते ह। इसे शुभ लक्षण न समझकर रोगीके लिए बुरी सूचना समझनी चाहिए। इनमें भी किसी-किसी रोगीकी जीवनशक्ति प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपचारोंसे इतनी तेजीसे और इतनी अधिक बढ़ती ह कि कभी-कभी उन्हें जुकाम-खांसी ज्वर आदिसे अन्य तीव्र रोग हो जाते हैं पर ये होते हैं बहुत कम और होते भी ह तो बहुत हलके रूपमें। फिर भी इनकी निरापदता और शोधन-शक्ति स्पष्ट प्रकट होती है। जीण रोगके रोगियोंको कभी-कभी फोड़े और नासूर भी हो जाते ह जिसका अथ यही ह कि प्रकृति उनके द्वारा विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेका प्रयास कर रही ह।

इन रोगोंको हर दशामें शुभ लक्षण समझना चाहिए।

यही समय ह जब प्राकृतिक उपादानों (स्नान, शुद्ध वायु और प्रकाश, प्राकृतिक भोजन) द्वारा विजातीय द्रव्य निकालनेमें शरीरकी सहायता करनी चाहिए ताकि शरीरको अधिक-

से-अधिक तीव्र रोगोंका लाभ मिल सके। सबसे बड़ी बात है ऐसे मौकोंपर हम जरा भी न डरें।

प्राकृतिक जीवन शुरू करनेपर अर्थात् प्राकृतिक स्नान, प्राकृतिक भोजन, नंगा रहना शुरू करनेपर लोग कुछ समयके लिए दुबले हो जाते हैं, कमजोरी और थकानका अनुभव करते हैं चेहरा काला दुबला-सा दिखाई देता है और अंग-अंगमें दर्द होने लगता है। ये लक्षण उभारकी शुभ-सूचना हैं, इनकी वजहसे परेशान न होना चाहिए। हमें यह हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए कि जो उपचार वस्तुतः प्राकृतिक हैं उससे कभी भी किसी प्रकारकी हानि होनेकी संभावना नहीं है। और उपचारकी अवस्थामें जो भी लक्षण उत्पन्न होते हैं, चाहे वे आधुनिक दृष्टिकोणके कारण[1] कितने ही खतरनाक क्यों न प्रतीत हों स्वास्थ्यके लाभके ही लिए उत्पन्न होते हैं।

---

[1]प्राकृतिक चिकित्साके साथ एक बड़ी कठिनाई यह है कि शुरूसे ही और खास तौरसे रोगके तीव्र रूप धारण करनेपर कुछ नासमझ लोग अपनी राय और हिदायत मारिसे रोगीको डरा और घबरा देते हैं।

स्वस्थ और समझदार आदमी कभी ऐसा नहीं करते एक तो उनके पास फालतू समय नहीं रहता दूसरे वे जानते हैं कि जिस विषयका उन्हें ज्ञान नहीं है उस विषयपर उन्हें राय देनेका अधिकार नहीं है। पर जिन लोगोंकी मानसिक और शारीरिक शक्तियोंको रोगने क्षीण कर दिया है, जिन्हें चीज समझमें नहीं आती जो अपनी कमजोरियोंके कारण अपने जीवनसे असंतुष्ट हैं और जिन्हें कोई काम नहीं है प्राकृतिक जीवन शुरू करनेवालोंके लिए वास्तविक कष्टके कारण होते हैं। इन अभागोंसे बचनेका उपाय प्रत्येक आदमीको स्वयं सोचना चाहिए पर कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए कि इनको कष्ट हो। जो हमारे प्राकृतिक जीवन

बहुत पुराने रोगोंमें यह नवीन स्नान आश्चर्यजनक रीतिसे लाभ करता है। दीर्घकालसे आते रोगोंमें रोगीके सारे शरीरमें और खास तौरसे पेटमें बेहिसाब गरमी पैदा हो जाती है और वह उसमें भुन-सा जाता है। आंतोंकी श्लैष्मिक झिल्लियां सूख जाती हैं और मल सरक नहीं पाता, फलतः घातक कब्ज रहने लगता है। इस समय यदि पेटको ऊपरसे यथष्ट शीतल जलद्वारा ठंढा किया जाता है और ऐसा करते वक्त उसे रगड़ा जाता है तो पाचन-शक्ति तुरत उद्दीप्त होती है। उसे उस सुखका अनुभव होता है जिसे वह भूल-सा गया था। उसमें प्रसन्नता प्रदायिनी आशाका सचार होता है और उसे विश्वास होने लगता है कि वह अवश्य स्वस्थ हो जायगा।

पैरकी सूजन, आंख और कानके रोग, नाकका नासूर या पैर-के खुले घाव-से जीर्ण रोगोंमें यदि जलका प्रयोग किया जाय तो किसीको किसी प्रकारका आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं है।

अपनानपर हमारा मजाक उड़ाते हैं और हमसे घृणा करते हैं उनके प्रति भी हमें अशिष्ट न होना चाहिए वरन् उनसे प्रमपूर्ण बर्ताव करना चाहिए। ऐसे आदमियोंमें अधिकतर एसे ही होते हैं जो अप्राकृतिक जीवनकी खामियों और उनसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोंको जानते हैं। पर उनमें या तो साहस नहीं होता या उन्हें ऐसा सुयोग नहीं मिला कि वे अपनी गलत जीवन-पद्धतिको त्याग सकें। वे हमारी दया और सहानुभूतिके खास तौरसे अधिकारी हैं। यदि वे अपने रोगी स्वभावके वशीभूत होकर हमें कभी कुछ कह दें तो हमें उन्हें क्षमा करना चाहिए। य लोग जो कुछ कहते हैं उसे सुनकर चिकित्सारंभमें ही कष्ट होता है। शीघ्र ही वह शांति और गंभीरता प्राप्त होती है जिसे किसीके कटाक्ष या बोल-चाल भंग नहीं कर सकते।

वक्षस्थलके पाससे पार हो गई, दूसरी तरफ जहाँ गोली निकली उसके पासकी जमीन खूनसे तर हो गई। दो चार दिन बाद ही शिकारियोंने उसका पीछा फिर किया और उसे एक बाड़ेमें ला घेरा। उतना बड़ा घाव हो जानेपर भी हिरन बल्लियोंको बड़ी आसानीसे पार कर गया। इस हिरनको जो गोली लगी थी निस्सदेह उससे उसके फेफड़े, हृदय अथवा किसी विशेष अंगको कोई क्षति नहीं हुई थी।

आदमियोंको फोड़े होनेपर उनसे जो मवाद वगैरह बहती है वह शरीरका अपनी गदगी निकालनेका प्रयास है। तीव्र रोगकी भांति उसे भी लाभकर चिह्न समझना चाहिए। उनसे खतरा और बिगाड़ तभी होता है जब उनकी झूठी चिकित्सा की जाती है। फोड़ोंकी चिकित्सा भापद्वारा कभी न करो, न उनपर कभी भाप लगाओ।

सबसे आवश्यक बात यह है कि अब मनुष्यके शरीरपर डाक्टरकी छुरी और छुरे लगने बंद हो जाने चाहिए। चीर-फाड़ मनुष्यकी मूढ़ताका चिह्न है। इससे प्रकृतिके कार्यमें हस्तक्षेप होता है जिसका परिणाम हमेशा भयकर होता है। यदि परिणाम तुरत दिखाई न दे तो भी देर-सबेर जरूर प्रगट होता है।

जिसकी यह धारणा हो कि छुरी चाकूके बगर हर जगह काम नहीं चल सकता उसे पहले खराब-से-खराब रोगियोंपर प्रकृतिके उपादानोंका व्यवहार समुचित रूपसे और समुचित रीतिसे कर देखना चाहिए।

प्रकृतिको पट्टी-फट्टी[1] पसद नहीं है। वह नहीं चाहती

---

[1]प्राकृतिक चिकित्सामें चीर-फाड़की जरूरत नहीं है—यह कहते

कि हड्डी टूटनेपर (पसली या पैरकी हड्डी वगरह) भी पट्टी बांधी जाय। यदि टूटी हड्डी यों ही छोड दी जाय तो यह कभी गलत जगह या जगहसे इधर-उधर नहीं जुटती।

इस तरह हमने देखा कि प्राकृतिक स्नान ठीक तरह लिया जाय तो बडे कामका और बडा लाभकर सिद्ध होता ह।

समय हमें उसकी परिधिको समझ लेना चाहिए। सभी जानते हैं कि दांतोंके खराब होनेका कारण हमारा अप्राकृतिक जीवन है। चीर-फाड़को बिल्कुल तर्क करनेका अर्थ होगा खराब दांत उखड़वाए न जायं और जोड़रे दांत भराए न जाय। इसमें संदेह नहीं कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर और मिट्टीकी पुल्टिसकी सहायतासे इन व्याधियों एव इनसे होने वाले दांतके दर्दसे भी बचा जा सकता है।

इसी तरह बाल और नाखून कटानेसे भी बचना कठिन है। प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले पशु इन्हें नहीं कटाते फिर भी इसकी वजहसे उनका चेहरा कुरूप नहीं हो जाता। मुक्त प्रकृतिमें रहनेवालोंकी प्रत्येक चीजका नियमन प्रकृति स्वयं करती है।

और भी कई हालतोंमें (जन्मजात विकृतिमें भी) शस्त्रोपचार द्वारा कष्टसे बचा जा सकता है। बेकार अंगोंका उपयोग संभव हो सकता है और भी कई प्रकारसे लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। पर जिन अवस्थाओंमें शस्त्रोपचारकी बात मैं कर रहा हूं वे आज जिन अवस्थाओंमें शस्त्रोपचार किया जाता है उनसे बहुत भिन्न हैं। आजके शस्त्रोपचारके प्रभावकी जांच की जाय तो ज्ञात होगा कि इसकी वजहसे स्वास्थ्य बहुत खराब हो जाता है और दिन प्रतिदिन खराब होता ही जाता है। यहांतक कि प्रकृतिके कार्यमें शस्त्रोपचारद्वारा व्याघात पड़नेके फलस्वरूप मृत्युतक हो जाती है।

तीव्र एवं जीर्ण रोग तथा फोड़े होनेकी अवस्थामें भी शरीर और मस्तिष्कको आराम देनकी बड़ी आवश्यकता है। इन अवस्थाओंमें शरीरका रोगनिवारणके लिए अपनी सारी शक्ति लगानेकी जरूरत होती है।

मेरे चिकित्सालयमें लोग यह स्नान अधिकतर खुली जगहमें करते हैं और आरंभसे ही उन्हें इसमें आनंद आता है, प्रसन्नता प्राप्त होती है और इच्छित लाभ प्राप्त होता है। इस स्नानके प्रभावसे डरपोक, गमगीन और निराश, प्रसन्न, सतेज, हिम्मतवर और बहादुर हो गए हैं।

प्रकृति-पथपर फिर चलनेकी कोशिश करनेवालोंको इस स्नानसे बड़ी सहायता मिलती है।

इसकी सहायतासे प्रकृतिके और अधिक उपचारोंकी जानकारी होती है, स्वास्थ्य अधिकाधिक सुंदर होता जाता है और अधिकाधिक आनंदकी प्राप्ति होती है।

शरीरको थपथपाना और रगड़ना

प्राकृतिक स्नानकी विधि निर्धारित करते वक्त मैंने शरीरके रगड़नेकी चर्चा करते हुए इसकी ओर ध्यान आकर्षित किया है। गिरकर चोट खा जानेपर बच्चा जब रोता हुआ मांके पास आता है तब मां डाक्टरी किताब निकालकर नहीं देखती कि उसमें क्या करनेको कहा गया है वह तुरंत बच्चेके प्रति प्रेम और सहानुभूतिसे प्रेरित होकर चोट लगे स्थानपर हल्के-हल्के हाथ फेरती है थपथपाती है।

क्या आपने गांवके ऐसे गुणियोंकी बातें नहीं सुनी हैं जो लोगोंका दर्द और मोच मल और थपथपाकर जल्दी-से-जल्दी निकाल देते थे?

गांवोंके ये सरल और पवित्र प्राणी यह काम अर्थ और लाभकी दृष्टिसे नहीं करते थे। उनका यह खयाल था कि सेवाके

बदले यदि व द्रव्य लेंगे तो उनकी चिकित्सा कारगर न होगी। उनकी भावना मेथ्यूके इस उपदेशसे मिलती-जुलती है

"तुझे यह चीज मुफ्त मिली है और
मुफ्त ही तू उसे बांट।"

अपने सगी-साथियों और गावके निवासियोंकी इस प्रकारकी सेवा करते थे व केवल प्रेमभावसे। पिछले कुछ दशकोंमें विज्ञान और सभ्यता, शिक्षा और ज्ञानका बडा प्रचार हुआ है और इसका हमें बडा घमड भी ह। तथापि हमें दुखपूर्वक यह कहना पडता ह कि "पृथ्वी और स्वर्गमें अभी ऐसी अनगिनत चीजें हैं जो अबतक हमारे स्वप्नमें भी नही आई हैं।"

जब कभी हम उन सेवाव्रती नर-नारियोंकी बात करते हैं तो उनके प्रति हम अपनी घृणा और अवहेलना दिखाते देखे जाते हैं। आज उनकी जगह व्यापारी अगमदक स्त्री-पुरुषोंने ले ली ह। जो अपने कामकी खास शिक्षा पाये हुए होते हैं, उन्हें शरीर-शास्त्रका ज्ञान होता ह, वे जानते हैं कि शरीरमें नस-नाड़ियां और मांसपेशियोंका स्थान क्या और कहां है। पर आजके ये अगमदक वह काम सप्ताहों और महीनोंमें नहीं कर पाते जो गांवके वे अपढ़ अशिक्षित नर-नारी एक बारमें या दो चार दिनमें कर देते थे। उनके हाथमें कुछ ऐसा जादू होता था कि उसके प्रभावसे रोग छू-मतर हो जाते थे।

आजके अगमदक अनेक दिनोंतक रोगीकी चिकित्सा चलाते रहते हैं। चिकित्साके बीचमें वे स्वय पीले पड़ जाते

हं और रोगी हो जाते हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी हो जाता ह कि इनमेंसे कोइ-कोइ अगमदक जो पहले बीमार थे स्वस्थ भी हो जाते हं।

शरीरकी मालिश करते और थपथपाते वक्त एकका स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति दूसरेमें प्रवेश कर जाती ह। इस विधिसे शरीरका रोगी अग सप्राण हो उठता है। मालिश करन और थपथपानेका विशेष प्रभाव और लाभ यही है। इसक लिए अगमदनकी शिक्षा प्राप्त करनेकी जरूरत नहीं है, खिलाफ हानिकी ही अधिक समावना है।

वाष्प और तरल वस्तुका जब सपक होता है तो दानों आपसमें मिल जाते हैं।

मनुष्यकी आत्मा भी एक तत्त्व ह, यह तत्त्व आकाश-तत्त्वसे भी अति सूक्ष्म ह। पर मनुष्यकी आत्मा जिस तत्त्वकी बनी है वह तत्त्व एक केंद्रके चारों ओर इकट्ठा रहता है। यह केंद्र है इच्छाशक्ति। अत मनुष्योंकी आत्माओंका पारस्परिक परिवतन या समिलन दो जगह रखी हुइ धाप्योंकी भांति नहीं होता। उनकी इन क्रियाओंमें पारस्परिक पसदगी, नापसदगी, प्यार उदासीनता, घृणाका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

दो आत्माओका पारस्परिक परिवतन, एकके प्रति दूसरेका आकर्षण अथवा विराग हम अपनी आंखोंसे देख सकते हैं। इन क्रियाओंके फोटो लिए गये हैं जिनसे ये बातें स्पष्ट प्रतीत होती हैं।

यही नहीं दो प्राणियोंकी आत्माओंका यह पारस्परिक परिवतन इतनी पूर्णताके साथ हो सकता है कि उनके लिए कविका यह कथन सवथा लागू होता है

"आत्माए दो हैं; पर वे बहती हैं एक विचारमें; हृदय दो हैं, पर धड़कन एक ही है।"

जिन ग्रामनिवासियोके बारेमें मैंने कहा है उनका शरीर तो स्वास्थ्य और जीवनशक्तिसे भरा-पूरा रहता ही था, सर्वसाधारणके प्रति उनका अगाध प्रेम होता था और ईश्वरके प्रति अटल विश्वास। यही कारण है कि उनके शरीरसे जादूका सा प्रभाव रखनेवाली आरोग्यकारी शक्ति निस्सरित होती रहती थी।

जबतक मर्दक कुछ दिनोतक लगातार रोगियोंकी मालिश करता रहता है तो उसकी बहुत-सी जीवनशक्ति और स्वास्थ्य खर्च हो जाता है और वह स्वय बीमार पड जाता है। अब अगर वह ऐसे आदमियोंकी मालिश करता है जो उससे अधिक स्वस्थ हैं तो वह पुन स्वस्थ हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि मालिश कराके लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता वरन् इससे जितना स्वास्थ्य है उसे खोनेका भारी खतरा रहता ह। आजके मर्दकके लिए मालिश करना व्यापार है और यह बहुत आनददायक व्यापार नहीं ह। उसे किसी तरह अपनी रोटी कमानी है और इससे मिलनेवाले पैसेके लिए ही वह यह काम करता है। उसे यह नहीं देखना है कि जिसकी मालिश करने वह जा रहा है उसकी मालिश करनेकी उसकी इच्छा होती है या नहीं।

यहाँ भी यही कहना पडता ह

'प्रकृतिकी ओर लौटो!'

माता यदि कमजोर और रोगी न हो तो वह अपने प्यार-

भरे हाथोंसे अपने बच्चेकी मालिश करके और थपथपाकर उसे शीघ्र और पूरा लाभ दे सकती है। यदि वह कमजोर हो तब भी तो वह अपने बच्चेमें अपने प्राणोंकी अंतिम बूंद भी खुशी-खुशी डाल ही देगी।

मैंने यह कहा है कि मालिश करते और थपथपाते वक्त मालिश करनेवालेकी जीवनशक्ति और स्वास्थ्य रोगीके शरीरमें चला जाता है। इस क्रियामें मर्दकके शरीरकी उष्णता भी रोगीके शरीरमें प्रवेश करती है।

जिसमें जितनी ही उष्णता रहती है उसे उतना ही स्वस्थ समझा जाता है। इस गर्मी, स्वास्थ्य तथा जीवनशक्तिको एक ही समझना चाहिए। इसलिए ऐसे ही आदमी, जिनके हाथ गरम रहते हैं मालिश करनेके उपयुक्त हैं। रोगियोंके हाथ-पाँव हमेशा ठंडे रहते हैं।

माता, पिता, मित्र और ऐसे लोग जो हमें हृदयसे चाहते हैं यदि वे स्वयं स्वस्थ हैं तो उनकी मालिश और थपथपानेसे हमें लाभ मिल सकता है।

यहां स्वास्थ्यसे मेरा मतलब साधारण अर्थमें ही है। सच्चे अर्थोंमें तो सभ्य समाजमें पूर्ण स्वस्थ एक आदमी भी मिलना कठिन है।

मजदूरवर्गके स्वस्थ और सुपुष्ट जन, जिन्हें मानसिक कार्य और सुधरे हुए जीवनने रक्तविहीन, कमजोर और दुर्बल नहीं बना दिया है और जिन्हें खुलेमें श्रमसाध्य काम करना पड़ता है, यदि मालिश करें और थपथपावें तो वे बहुत अधिक लाभ पहुंचा सकते हैं। पर जीवनशक्तिका प्रेषण सबमें समान रूपसे नहीं होता। यह मालिश करने और करानेवालेके

पारस्परिक प्रेम (सहानुभूति) पर निर्भर है। उनमें किसी एककी भी दूसरेके प्रति घृणा तो होनी ही नहीं चाहिए अन्यथा मालिशका कोई फल न निकलेगा।

इसलिए मालिश करानेके लिए सशक्त, स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण आदमी चुनना चाहिए। वह देखनेमें ही सुंदर न हो, उसका स्वभाव मृदु और विचार भी अच्छे होने चाहिए। खुदगर्ज, कामचोर और झूठे आदमीसे कोई सहायता नहीं मिल सकती। ऐसा आदमी अपनी उष्णता और जीवनशक्ति अपने लिए बचा रखता है। वह इसका थोड़ा भाग भी, किसी भी तरह दूसरेको देना नहीं चाहता।

हमें अपनी शिक्षा, सामाजिक और आर्थिक स्थिति आदिके भुलावेमें पड़कर अपनेको दूसरोंसे ऊंचा मानकर मनुष्य-मनुष्यके पारस्परिक प्रेम और सहयोगमें व्याघात न डालना चाहिए। हमेशा याद रखो जो प्रेम बोता है उसीके खेतमें प्रेम उपजता है।

जितना ही आदमी आजके विज्ञानसे मुक्त होगा, जितना ही वह बालकके समान सरल बनेगा उतना ही वह खुश रहेगा और उतनी ही सेवा वह अपने साथियोंकी कर सकेगा।

यह आवश्यक है कि मालिशद्वारा रोगीमें जीवनशक्ति और उष्णता डालनेकी बात ही न सोची जाय। कम-से-कम मालिश करते वक्त तो इसका खयाल बिल्कुल ही न किया जाय। मालिशका एकमात्र उद्देश्य अपने भाइयोंकी सहायता करना एवं उन्हें रोगमुक्त करना होना चाहिए और इसके लिए उसमें आवश्यक सदिच्छा, लगन और तत्परता होनी चाहिए।

यदि बात इतनी ही है तो मालिश करने और थपथपानेके लिए किसी विशेष शिक्षाकी क्या जरूरत है?

शरीरका कोइ भी रोग-ग्रसित अग जिसमें दद, सूजन या गठिया रोग हो मला और थपथपाया जा सकता ह। उदाहरणके लिए सिरमें दद होनेपर गदनपर थपथपाना और मलना बहुत लाभ करता ह। पेट और पिंडलीपर थपथपाना साधारणतया बहुत लाभकर है, इससे स्वास्थ्य उन्नत होता है।

शरीरके जिस अगकी मालिश करनी हो या थपथपाना हो उसे पहले पानीसे जरूर गीला कर लेना चाहिए। (उसमें किसी तरहका तेल लगानेकी जरूरत नहीं है।)

मालिश और थपथपानेका काम शांतिपूवक स्थिरभावसे और कडे हाथसे करना चाहिए। कभी-कभी हाथोंको मुलायम भी कर देना चाहिए। मालिशकी सही तरकीब धीरे-धीरे अपने आप मालूम हो जाती है।

शरीरमें उष्णता और जीवनशक्ति पहुचाने तथा उसे सतेज एव सशक्त बनानेके लिए सबसे उपयुक्त समय स्नानके तुरत बाद ह।

जब शरीर गीला रहता ह तब जो आदमी उसे सूखे हाथसे रगड़कर सुखानेकी क्रिया करता है उसकी जीवनशक्ति और उष्णताको वह बड़ी चाहसे पीता ह।

प्राकृतिक स्नानके बाद शरीरको रगडकर सुखानेके लिए जो समुचित व्यक्तिकी सेवा पा सकता है वह कुछ हालतोंमें बहुत लाभान्वित हो सकता है और रोगसे निवारणकी राह सरल बना ले सकता ह।

प्रकृतिके प्रत्येक काय, अपनी क्रिया और प्रतिक्रियापर निभर हैं। ससारके सारे सबध आकर्षण और अपकषण एवं तज्जनित विनिमयके आश्रित हैं।

अन्य पौधोंके साथ लगा हुआ पौधा अकेले खड़े पौधेसे ज्यादा तेजीसे बढ़ता और पनपता है। पालतू पशुओंमें भी देखा गया ह कि अकेले रहनेवाले पशुको जब अन्य पशुओंके साथ रखा और खिलाया जाता है तो वह ज्यादा खुश और स्वस्थ रहता है।

परतु पौधे और पशु अपने जातिवालोंपर जितने निभर हैं मनुष्य अपने भाइयोंपर उनसे अधिक निभर है। मनुष्यकी सारी खुशी उसके सामाजिक जीवन, पारस्परिक प्रेम और सहायतापर निभर है और इनसे उसका स्वास्थ्य बहुत अधिक अवभित है। रोगी अपने बधु-बांधवोंके प्यारपर खास तौरसे आश्रित रहते ह।

आपने कइ लोगोंको केवल दूसरेकी प्रभावशक्तिसे यौवन प्राप्त करते एव आश्चयजनक रीतिसे स्वस्थ होते देखा होगा। कइ रोगी जिनकी जवानोंसे प्रेमपूण मैत्री हो गइ है यकायक स्वस्थ हो गये ह और उन्हें अपने स्वस्थ होनेका कारणतक ज्ञात नहीं हुआ ह। आपसमें पवित्र और उत्कृष्ट प्रकारका प्रेम होनेके फलस्वरूप हुई आत्मिक एकताके बाद जिन लोगोंने शादी या सगाइ की है उनका स्वास्थ्य असाधारण रूपसे अच्छा होते देखा गया ह। जो दो आदमी एक साथ सोते हैं वे सोनेमें एक दूसरेको अपनी जीवनशक्तिका एक बहुत बड़ा अश दे सकते हैं। इस रीतिसे जवानोंकी सहायतासे' कितने ही बूढ़ोंने

'सी० वटेन्स्टेडने अपनी पुस्तक 'स्नायुशक्तिका स्थानांतरीकरण" में सभी उसके एसे अनक रोगियोंका वणन किया है जो स्थानांतरीकरणकी रीतिसे जीवनशक्ति प्रदान किये जानेपर स्वस्थ हुए हैं अथवा बल प्राप्त

पुनर्यौवन प्राप्त किया है। लेकिन स्वास्थ्य-लाभ और पुनर्यौवनकी घटनाएं आकस्मिक सुयोगका फल हैं और इनके साथ अनेक प्रकारकी परिस्थितियां जुडी हुई हैं।

पर जीवनशक्तिके इस प्रकारके प्रयोगकी कोई प्रामाणिक रीति अभीतक ज्ञात नहीं हो सकी है। इस सबधमें भी हमें प्रकृतिके इशारेपर चलना चाहिए। स्वास्थ्य और सुखके निर्झर तटपर वह स्वय हमें ले जायगी।

प्रत्येक आदमीको कोई-न-कोई साथी, सगी, मित्र, सवक या कोई आदमी ऐसा मिल जायगा जिसमें ऊपर बताये हुए गुण होंगे और वह स्नानके बाद आपके शरीरको रगडकर सुखा देगा या इस क्रियामें आपकी सहायता करेगा। ऐसी सेवाके लिए हमें सदा कृतज्ञ होना चाहिए। इस सेवाका मूल्य पैसोंमें नहीं चुकाया जा सकता, हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश ही इसका समुचित पुरस्कार है। इसके विपरीत यदि आप किसी दूसरे रूपमें इसका बदला देंगे तो लाभ सदा कम होता जायगा।

हुक्मके बलपर किसी नौकरसे शरीरको रगडवाकर न सुखवाए। उसीसे यह काम लिया जाय जो मन लगाकर खुशी-खुशी यह काम करे। हमें अपनेपर निर्भर व्यक्तियोंके साथ इस प्रकारका व्यवहार करना चाहिए कि हमेशा हमारे प्रेमके कारण हमारी सहायता प्रेमपूर्वक करनेको तैयार रहें।

किया है और उनका कायाकल्पतक हो गया है। इस लेखककी धारणा है कि इस रीतिसे किसीकी भी उम्र इच्छानुसार बढ़ायी जा सकती है, स्वास्थ्य हर समय सुधारा जा सकता है और नवजीवन प्रदान किया जा सकता है। बटेस्टडकी ये बातें यद्यपि कल्पना-सी प्रतीत होती हैं फिर भी उसकी बातोंसे मालिशके विषयपर काफी प्रकाश पड़ता है।

स्नानके बाद रगड़नेकी क्रियाके सबंधमें विशेष नियम बनानेकी कोई आवश्यकता मैं नहीं समझता। सूखे हाथों और जहांतक बन सके शांतिपूर्वक शरीर रगड़ा जाना चाहिए।

जीवनशक्तिका स्थानांतरीकरण स्त्रीसे पुरुषमें और पुरुषसे स्त्रीमें आसानीसे हो सकता है।

पर इस काममें कामुकताको किसी प्रकारका भी कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। रगड़नेके काममें सलग्न लोगोंको सर्वथा पवित्र रहना चाहिए अन्यथा लाभके बदले हानि ही अधिक होगी।

विवाहित स्त्री-पुरुष जो एक दूसरेको रगड़कर सुखानेमें सहायता करना चाहते हैं उन्हें भी इस नियमका अवश्य पालन करना चाहिए। इस रीतिके अलावा किसी दूसरी रीतिसे भी भिन्न लिंगके लोग जीवनशक्तिके स्थानांतरीकरणमें एक दूसरेकी सहायता करना चाहें तो भी उन्हें इस नियमको सदा याद रखना चाहिए।

बिजली गिरने या किसी ऐसी ही दुर्घटनामें जिनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई है वे अक्सर स्वस्थ एवं सुपुष्ट व्यक्तियों द्वारा देरतक लगातार रगड़े जानेपर जी उठे हैं। यदि इस प्रकार शरीर रगड़नेसे मरा आदमी जी उठ सकता है तो यह आसानीसे समझा जा सकता है कि हमें सशक्त बनाने और हमारे रोगके निवारणमें रगड़ना और थपथपाना कितने लाभकर हो सकते हैं। निश्चय ही अनेक रोगोंमें इससे आश्चर्यजनक लाभ मिल सकता है। अतः चलिए हम प्रकृतिकी ओर लौटें। इस द्वारसे हम स्वास्थ्यप्रदेशमें प्रवेश करेंगे, आनंद और प्रसन्नता के राज्यके हम अधिकारी होंगे। हमारी अशक्त धमनियोंमें

रक्तका शक्तिपूर्ण संचार होगा, हमारा हृदय आशाकी किरणों-से स्पंदित हो उठेगा।

वायु और प्रकाश-स्नान

प्रकृति तो मनुष्यको नंगा ही पैदा करती है और सृष्टिके आरंभकालमें बहुत समयतक वह नंगा रहता भी था। बाइबिल कहती है—"वे दोनों ही नंगे रहते थे—पति भी और पत्नी भी।" प्रकृति चाहती है कि अन्य प्राणियोंकी भांति मनुष्य भी सदा नंगा रहे। प्रकृतिकी इस इच्छाको कौन बदल सकता है?

नंगा-निर्वस्त्र रहना प्रकृतिके अनुकूल है, अतः सही है।

यह सभी जानते हैं कि वायु और प्रकाशके आदी पशु और पौधे, दोनों ही अंधेरी जगहमें रख दिये जानेपर मुरझाये-से, जीवन-विहीन-से हो जाते हैं। पर प्रकाशमें लानेपर उनमें फिर जीवन-ज्योति जगमगा जाती है वे प्राण पूर्ण प्रतीत होने लगते हैं। प्रकाशका प्रभाव छोटे-से-छोटे पौधेपर भी स्पष्ट दिखाई देता है। प्रकाश पाते ही उसका रंग खिल उठता है। प्रकाशकी बदौलत पशुओंमें प्राण दौड़ता-सा प्रतीत होता है। प्रकाशके आते ही वे कुलांचें मारने और दौड़ने लगते हैं।

आजका सभ्य कहलानेवाला मनुष्य हरदम कपड़ोंसे ढका रहता है। उसके शरीरका अधिक भाग मानों अंधेरेमें रहता है। उसे चाहिए कि जरा अपने कपड़ोंको दूर करे, जंगलमें जाय, शरीरपर हवाका झोंका और प्रकाशकी किरणें लगने दे और तब देखे कि कैसी सजीवता और तेजस्विताका वह अनुभव

करता है। शरीरके, वायु और प्रकाशके संसर्गमें आते ही, अंग प्रत्यंग तेजीसे काम करने लगते हैं, जीवन-शक्ति बढ़ती है और निर्जीव, रोगपूर्ण शरीरमें स्वास्थ्यमय, हर्षोन्मादक भावनाका संचार होता है।

अंधेरी जगहोंमें बंद रहनेपर भी पशुओंके रोमकूपोंके द्वारा रोगकी गर्मी निकलती रहती है, पर कपड़ोंके कारण मनुष्य-शरीरके इस स्वाभाविक कार्यमें भी बाधा पड़ती है। अच्छा हो कि वनमें, मैदानमें या कमरेमें ही, जहाँतक संभव हो अधिक-से-अधिक खिड़कियाँ खुली रखकर थोड़े समयके लिए ही सही, नंगे रहा जाय। यह क्रिया बड़ी प्रभावशाली और अद्भुत रूपसे लाभदायक सिद्ध हुई है और इसके समान शक्ति देनेवाली तो कोई दूसरी तरकीब है ही नहीं।

प्रकाश जीवन शक्तिको सतेज करता है, और वह त्वचा, जिसे अंदरसे निकाली गयी वायुको कपड़ोंसे ढकी रहनेके कारण, अशत: फिर फिर सोखना पड़ता था, इस दूषणसे मुक्त हो जाती है और खुलकर शुद्ध वायु ग्रहण कर पाती है।

इससे वायु और प्रकाशके आश्चर्यजनक एवं जीवनदायक प्रभावका कारण सरलतासे समझा जा सकता है। स्वास्थ्य-रक्षामें, नये-पुराने रोगसे मुक्ति देनेमें, और घावोंके भरनेमें, वायु और प्रकाश कितने सहायक हो सकते हैं, यह साधारण बुद्धिवालेके भी समझमें आनेवाली चीज है। पर डाक्टरोंकी कौन कहे, प्राकृतिक चिकित्सक भी इसका समुचित उपयोग नहीं करते यद्यपि इससे सरल, सस्ती और सदा मिलती रहनेवाली दवा दुनियामें दूसरी नहीं है।

तीव्र रोगोंमें जानका अधिक-से-अधिक खतरा बहुत तेज

बुखारमें ही रहता है, अतः उसका कम करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए जल-चिकित्सक जल्का प्रयोग करते हैं। ज्वरको कम करनेवाले अनेक प्रकारके नहान एवं भीगी पट्टी आदिके बारेमें सभी जानते हैं और यह भी सबने देखा होगा कि ज्वर जलके प्रयोगसे उतर-चढ़कर फिर फिर आता रहता है। डिप्थीरिया रोगमें तो यह भय होने लगता है कि रोगीका दम न घुट जाय।

रोगीकी यह हालत देखकर जल-चिकित्सक भी चिन्तित होने लगता और कभी-कभी घबरा जाता है। उस समय भी कमरेके बाहर बहती हुई वायु कहती रहती है कि मुझे भी समझो, रोग-मुक्तिमें प्रकृतिकी मैं भी सहायिका हो सकती हूं। पर वायुके बोल, जलचिकित्सककी समझमें नहीं आते। वह कमरेकी गरमीसे घबराकर खिड़कीके पास जाता है। वायु अपने शीतल करोंसे उसका जलता मस्तक पोंछ देती है। वायुके हाथोंका यह स्पर्श उसे सुखद मालूम होता है पर रोगीकी कष्टकर दशा देखकर वायुके हृदयसे उठते उच्छ्वासोंका अर्थ उसकी समझमें नहीं आता।

तेज बुखारसे पीड़ित रोगी अपनेपर लादे गए वस्त्रोंकी अवहेलना करता है और सदा सही मार्गपर ही ले जानेवाली नैसर्गिक वृत्तिका अनुसरण करता है। डिप्थीरियासे पीड़ित बच्चा अपने बिछावनपर लेटा-लेटा हाथ-पैर फेंकता है यदि उसका वश चले तो वह अपने ओढ़नेको जरूर फेंक दे।

मियादी बुखारसे पीड़ित विभ्रांतचित्त रोगी अपनी संपूर्ण शक्तिसे, और यह शक्ति तीव्र ज्वरमें स्वभावतः बढ़ जाती है, बाहर निकल भागनेकी कोशिश करता है। वह कमरेकी

खिड़कीमें रास्ते बाहर बहती ठंडी-ठंडी हवामें उड़कर पहुंच जाना चाहता है। घरवाले रोगीकी यह दशा देखकर भयभीत हो उठते हैं। प्रकृति पूरे जोरके साथ अपनी इच्छा जाहिर करती है, तब भी डाक्टर मानों दोनों हाथोंसे कान मूंदे रहता है। हां, जब वह विद्यार्थी था, तब उसने अपने उस प्रोफेसरका फेफड़ेकी बीमारियां और उनकी चिकित्सापर उसकी बेसुरी आवाजमें, वैज्ञानिक भाषण अवश्य सुना था, जो उस भाषणके कुछ वर्षों बाद ही यक्ष्मासे मर गया था। पर वह प्रकृतिके आवाजपर ध्यान नहीं देता, जैसे यह आवाज उसकी समझमें ही न आती हो।

हृदयमें प्यारका भार लिये आशा और निराशाके बीच झूलती हुई माता डिप्थीरियासे पीड़ित अपने बच्चेकी खाटके निकट बैठी रहती है। देखती है कि बच्चा अपने बदनपरकी चादर फेंक-फेंक देता है। वह बलपूर्वक अपने लालको ढकती रहती है। यह भोली माता नहीं समझती कि प्रकृति माता उसे चादर फेंक देनेको प्रेरित कर रही है।

रातको मियादी बुखारसे पीड़ित रोगीकी तीन-तीन चार-चार मजबूत आदमी चौकसी करते हैं कि कहीं वह प्रकृतिकी आवाजपर चल न पड़े।

प्रकृतिकी सहायताको मनुष्य जान-बूझकर ठुकराता रहता है, पर दयालु प्रकृति उसपर अपने आशीर्वादकी वर्षा, चाहे जैसे, हर तरहसे करनेको उत्सुक रहती है।

इधर एक कहानी प्रचलित है कि किसी रोगीके बुद्धिके चाकर चौकीदारोंको प्रकृतिने एक बार सुला दिया था कि रोगी नंग-धड़ंग खिड़कीके रास्ते बाहर बहती जाड़ेकी बर्फ-सी ठंडी हवामें जा सके।

पड़ोसके घरमें ज्वरके कुछ रोगियोंकी रक्षा करनेके लिए प्रकृतिको अधिक कठोरतासे काम लेना पड़ा था। जाड़की स्वच्छरात्रि एकाएक बादलोंकी गड़गड़ाहटसे काँप उठी। बिजली चमकने लगी। प्रकृतिने रौद्र रूप धारण कर लिया। कुछ ही क्षणों बाद कड़कड़ाती बिजली, जिस घरमें रोगी रहते थे, उसीपर गिरी और घर एक किनारेसे धधाकर जलने लगा। लोग जाग पड़े और बेतबरीमें घरसे भागे। रोगी भी अपने बिछावनसे निकलकर, जैसे नंगे वे सोये थे, वैसे ही भागे। लोग बदहवास आग बुझाने और घरकी चीजें बचानेमें लगे थे। थोड़ी देर बाद होश-हवास कुछ दुरुस्त होनेपर उन्हें रोगियोंकी याद आई तो वे उन्हें, अथवा अपनी समझके अनुसार, उनकी लाशें खोजने निकले।

रोगी उन्हें मिले। उनकी हालत बहुत ठीक थी। ज्वर बिल्कुल चला गया था। तबसे उनकी हालत सुधरती ही गई। यह देखकर सबको आश्चर्य होता था।'[1]

प्राकृतिक बिजली गंदगी और सड़नपर ही गिरती है, केवल रोगपर ही गिरती है। प्रकृति, उसके कानूनके खिलाफ चलनेवालोंको सजा देती है। जंगलमें रहनेवाले स्वस्थ पशु

---

[1]जस्टकी दी हुई यह घटना हमारे अनेक पाठकोंको कपोलकल्पित जान पड़ सकती है। पर हम अपने पाठकोंको इसीसे मिलती-जुलती राजपूतानेकी एक घटना सुनाना चाहते हैं, जिससे पाठकोंको जस्टकी उक्त बातपर अपना विश्वास जमानेमें मदद मिलेगी।

झुंझनूंमें एक देवड़ा-परिवारका श्रीनोकरमल नामका एक व्यक्ति था। वह पागल हो गया। उसका अनेक प्रकारका इलाज हुआ पर लाभ कुछ न हुआ। वरन लोगोंको वह बहुत परेशान करता था। अंतमें

उस विजलीके कहां शिकार होते हैं, उसके गिरनेसे तो घरमें रहनेवाले अस्वस्थ पशु और उनसे बढ़कर रोगकी खान मनुष्य ही मरते हैं।

कटि-स्नानसे भी सभी तीव्र रोगोंमें बहुत लाभ होता है। इसके प्रयोगसे भयकर ज्वर भी शीघ्र कम हो जाता है, पर यह स्नान न उतनी देरतक लिया ही जा सकता है, न उतनी बार ही, जितनी बार कि प्रकाश और वायु-स्नान जिसके लेनेके लिए केवल नगे होकर थोड़ा टहलना बस होता है।

पालतू पशुओंको मनुष्य प्राय बिल्कुल अप्राकृतिक दशामें रखता है। अक्सर उनको तग, घिरी, अंधेरी जगहोंमें बद

विवश होकर और देवीकी कृपा पानेके खयालसे लोगोंने उसे झूंझनूंमें राणी सतीके स्थानपर रखा। पर उसकी हालत ऐसी नहीं थी कि खुला रखा जा सके, इसलिए एक नीमके पेड़के नीचे पोकरमलको जजीरसे बांधकर रखा गया था। एक दिन रातको बहुत जोरोंका, जैसा कि राजपूतानेमें प्राय नहीं होता पानी बरसा। उस नीमके पेड़के नीचे पानी भर गया। रोगी रातभर उस पानीमें पड़ा रहा और ऊपरसे बौछारोंसे भीगता रहा। वहां कोई उसकी रखवालीके लिए न था, अपने पागलपनके लिए उपेक्षित था वह। सवेरे लोग क्या देखते हैं कि रातकी जोरदार ठंडी हवाके झोंकों और पानीकी बौछारने रोगीका दिमाग ठंडा कर दिया। उसका पागलपन कतई जाता रहा। शायद लोगोंने समझा होगा कि राणी सतीकी कृपासे ऐसा हुआ पर वास्तवमें तो 'विश्वकी रानी प्रकृति' ने जो सदा सतपर स्थिर रहती है, कभी व्यभिचारिणी नहीं होती पोकरमलके मस्तको उस रात अपने हाथों मल-मलकर धोया होगा। हां, यह माना जा सकता है कि झूंझनूंकी राणी सतीने प्रकृतिसे ऐसा करनेकी प्रार्थना की होगी।

—अनुवादक

रखता है, जहां स्वय पशुके मल-मूत्रकी दुर्गंध उठती रहती है। उन्हें सडा-गला घास, भूसा इत्यादि खानेको दिया जाता है। फल यह होता है कि पशुको भयकर बीमारियां हो जाती हैं। तथापि पशुको न कभी तेज खतरनाक ज्वरका ही सामना करना पड़ता है न वह मियादी बुखारके रोगीकी तरह विक्षिप्त ही होता है। ऐसे पशुको चाहे कैसा ही मौसम क्यों न हो, अगर बीमार पड़ते ही वायु और प्रकाशविहीन तग गदी कोठरीमें बद करनेके बजाय खुले मैदानमें छोड दिया जाय तो वह शीघ्र स्वस्थ हो जायगा।

आदमीको ज्वर हो जानेपर वह इसलिए तेजीसे बढ़ता एव खतरनाक हो जाता है कि भीतरकी गरमीको न निकलने दिया जाता है न पशुके नगे शरीरकी तरह कपड़ोंसे ढके मनुष्य-शरीरका वायु शीतल ही कर पाती है।

गरम तरल पदार्थसे भरे बर्तनको ठडे पानीमें रख देनेसे जिस प्रकार वह ठडा हो जाता है उसी प्रकार ठडी वायुके सपर्कमें आनेपर शरीरकी गरमी कम हो जाती है।

अत प्राकृतिक चिकित्सक जब कभी किसी रोगीको देखने जाय तो उसे पहला काम यह करना चाहिए कि यदि वह रोगीके कपडे न उतरवा सके तो ओढ़ना जरूर हटवा दे, और यदि उसकी हिम्मत रोगीको बाहर खुलेमें ले जानेकी न पड़ती हो तो, जाड़ेकी ऋतु होनेपर भी कमरेकी अधिक-से-अधिक खिडकियां खुलवाकर ठडे गरम मौसमके अनुसार पद्रहसे बीस मिनटतक रोगीको नगा टहलने या लेटने दे। गर्मीके दिनोंमें वायु और प्रकाश स्नान एकसे तीन घटेतक दिया जा सकता है।

गरमीके दिनोंमें सवेरेकी ठडी-ठडी हवाका प्रयोग किया

जा सकता है। हवा जितनी ठंडी होगी, लाभ उतना ही निश्चित होगा।

ठंडक, सर्दी, जुकामसे सभी पुराने ख्यालके बड़े-बूढ़े डरते रहते हैं और प्राकृतिक चिकित्सक भी इस डरसे अपनेको मुक्त नहीं कर पाता, यद्यपि वह जानता है कि अन्य तीव्र रोगोंकी भांति जुकाम भी शरीरकी शुद्धिका प्रकृतिकी ओरसे एक प्रयत्न है और हर दशामें शुभ लक्षणके समान है। जुकामका उचित उपचार होनेपर वह कभी अनिष्टकर नही सिद्ध होगा बल्कि हर हालतमें स्वास्थ्यके लिए लाभकर ही होगा।

डाक्टरोंके दिमागमें तो जो धास युनिवर्सिटीमें लगाइ जाती है, वह शीघ्र इतनी अधिक गहरी जड़ जमा लेती है और घनी हो जाती है कि उसका बिल्कुल साफ हो सकना सर्वथा असभव हो जाता है।

कहिए कितना अच्छा होता, यदि इश्वर किसी महापुरुष-को इस ससारमें भेजता जो बुद्धिका भडार होता और जिसकी वाणीमें देवोंका-सा बल होता, जो मनुष्य-जातिके बड़े-से-बड़े सहायक ठडक, वायु और प्रकाशका भय लोगोके हृदयासे निकाल देता, जिससे स्वास्थ्य और प्रसन्नता मिलती तथा कितने ही मनुष्योंके अमूल्य प्राण असमय प्रयाण करनेसे बच जाते।

मनुष्य प्रकाश और वायुका सबसे बड़ा पुत्र ह। वायु और प्रकाश उसके जीवनके विशेष अग हैं, जसी कि प्रकृतिकी इच्छा ह उसे प्रकाश और वायुमें रात हो या दिन, गरमी हो या जाडा, निवस्त्र ही रहना चाहिए।

मनुष्य अपनेको प्रकाश और वायुसे दूर रखनेका पाप बहुत अधिक दिनोंसे करता आ रहा है अत उसके प्रकृतिकी

ओर लौटनेकी, शीघ्र-से-शीघ्र लौटनेकी विशेप आवश्यकता ह। बडे दुःखकी बात ह कि प्रकाश और वायुसे पूर्ण लाभ उठाने के लिए मनुष्य अपनेको काफी देरतक निवस्त्र नहीं रख पाता। इस बारेमें ज्यादती तो कभी हो ही नहीं सकती। रात-दिन सरदी-गरमी और बरसातके दिनोंमें अधिक समयतक यह क्या नगा रह सकता ह?

यह सोचना गलत होगा कि मनुष्य आदिमें बालोंसे ढका हुआ था और अब जब कि उसका यह चोगा उतर गया ह, उसक लिए बिना कपडोंके रहना कठिन ह। कुछ थोडे-से लोगोंके शरीरपर बाल अवश्य होते हैं, पर उन्हें अपवाद ही मानना चाहिए। शेप लोगोंके शरीरपर तो जिनमें ऐसे लोग भी शामिल हैं, जो सृष्टिके आदिसे ही नगे रहते ह या अपने बदनको कम-स कम ढकते हैं बाल कतइ नहीं होते। हाथ मुह, गरदनपर भी, जो आजतक कपडोंसे बचे रहे हैं बाल नहीं हैं। प्रकृतिने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्यको, समझकर ही बाल नहीं दिय हैं जिसमें वह स्वास्थ्यके सहायक वायु और प्रकाशके सीधे सपर्कमें आ सके। कपडे पहननेसे इसीलिए उसे रोग भी अधिक होते हैं और यदि वह नगा रहने लगे तो लाभ भी अधिक होगा।

वायु और प्रकाशसे सर्दी-जुकाम होता ह, यह बात ही साबित करती है कि जीवनशक्तिको जगानेकी उनमें बहुत अधिक शक्ति है। और जहां ठडी हवा और हवाके झोके लगने से बहुत जल्द जुकाम होता है, वहां उनका उपयोग, रोगनाशका प्रभावकारक और उत्तम साधन ह।

प्रकृतिने जाडे और ठडककी इसीलिए व्यवस्था की है कि पशु-पौधे और पृथ्वीपर होनेवाली सब न्न जाम सत्रामक

कृमि, सड़नेसे पैदा हुए कीड़े-मकोड़े और गदगी फैलानेवाले छोटे जीव मर जाय। रोगी शरीरके लिए तो इस प्रकारकी सफाइकी आवश्यकता बहुत ही अधिक रहती है।

जिसे खुजली हुइ हो, यदि वह जाड़ेके दिनोंमें नगा ही, खुले बदन निकले तो उसके खुजली पैदा करनेवाले कृमि जरूर मर जायगे। वायु और प्रकाशकी शरण जानेपर इसी प्रकार यक्ष्मासे पीडित अनेक रोगियोंके फेफड़ोंमें पदा हुए कृमि भी मर जायगे, जो वहा पड़े विजातीय द्रव्यकी सड़नके कारण पैदा हो जाते ह।

जो स्वस्थ हैं और जिनका शरीर सुदृढ़ ह, उनको तो कम, पर रोगी और कमजोर व्यक्तियोंको अपने अदरकी गरमी कम करने एव जीवनशक्तिको बढानेकी बडी आवश्यकता होती है।

एक बार मैंने एक डाक्टरसे पूछा कि प्रकाश और वायु-स्नानका उपयोग हर रोगमें और खासकर ज्वरमें क्यों इतना कम किया जाता है? तो उन्होंने जवाब दिया कि "अभीतक इस स्नानपर बहुत कम प्रयोग किए गए हैं।"

लड़कोंको कइ बपतक स्कूलमें पढ़ना पडता ह, फिर कालेज-में, और इसके बाद पाच बपतक डाक्टरी सिखाइ जाती है। कइ लड़के तो परीक्षा पास करनेके बाद भी अधिक जानकारीके लिए कइ बपतक और पढ़ते रहते हैं पर इतनेपर भी उनमें प्रकाश और वायु सर्दी और गरमीके प्राकृतिक प्रभावके अनुभव करनेकी शक्ति पैदा नहीं होती, और न वे विना प्रयोग किये, यही समझ पाते हैं कि वायु और प्रकाश-स्नान नितांत निर्दोष, प्रभावकर, स्वास्थ्यरक्षक जीण एव तीव्र रोगनिवारक हैं।

मैं ऐसे भीरु प्राणियोंको बता देना चाहता हू कि मैंने इस स्नानका प्रयोग अनेक प्रकारके रोगों एव उनकी अनेक दशाओंमें किया है और मेरी आशाके अनुसार ही बड़े प्रशसनीय परिणाम प्राप्त हुए हैं।

बहुधा ऐसा हुआ है कि मेरे समझा देनेपर रोगी आरमसे ही खुशी-खुशी यह नहान लेनको राजी हा गए।

जवान और वृद्धे दोनों ही प्रकारके ऐसे रोगी, जिन्होंने मोटे मोटे ऊनी कपडे पहनकर तथा और भी अनेक प्रकारसे अपने को वायु और प्रकाशसे दूर रखकर अपने शरीरको अत्यत सुकुमार बना लिया था, धीरे-धीरे आदत डाले बिना ही, एकाएक नगे होकर, बहती हवामें, बरसते बरफ और पानीमें कडकडाते जाड़ेमें, खुली जगहमें वायु और प्रकाश-स्नान लेनेको तयार हो गए।

कुछ तो ऐसे भी आये जो वायु और प्रकाश-स्नान लेनेके स्थानतक चलकर आनेमें अशक्त थे। ज्यों ही उन्होंने अपने कपड़े उतारे, वे अपनेमें शक्तिका अनुभव करने लगे, और जिस प्रकार वे घरसे आये थे उससे बहुत कम कठिनाइसे और अधिक तेजीसे घर गये। वायु और प्रकाशके स्नानार्थियोंमें बहुत कम जोर और रोगी, जवान ही नहीं, सत्तर-सत्तर अस्सी-अस्सी वर्षके बूढ़े-बूढ़ी और नामी-नामी व्यक्ति थे।

तीव्र रोगोंमें, खास तौरपर तेज बुखारमें, रोगीको इस स्नानसे ऐसी ताजगी और ताकत मालूम होती है कि अपने भयभीत घरवालोंके बार-बार कहनेपर भी वे कमरेके खिड़कीके निकटसे टलते नहीं।

नये रोगमें तो अनेक बार लाभ इतना आनन-फानन

हुआ कि रोगीके आस-पासके लोग आश्चर्यमें डूब गये।

न्यूयार्कके निकट स्थित मेरे यगयान नामक प्राकृतिक चिकित्सालयमें हर मौसममें, और खासकर जाड़ेके दिनोंमें, वायु और प्रकाशस्नान लोग बड़ी मौजसे लेते हैं ।

जिस प्रकार गरम कमरेमें बैठकर आंधीकी बात करनेपर यह बड़ी रहस्यमयी-सी प्रतीत होती है, पर खुलेमें जब उसका अनुभव कर लिया जाता है, तो उसकी सारी भयकरता दिमागसे निकल जाती है, उसी प्रकार ठडके दिनोंमें वायु एव प्रकाश-स्नान लेनेकी बात जितनी विचित्र मालम होती ह उतना स्नान स्वय नहीं ।

वायु और प्रकाश-स्नानसे शरीर गरम रहता ह ठडक नहीं मालूम होती, ताकत बढती ह । इसे जारी रखनेपर इसका लेना आसान हो जाता है और इसके साथ जो रहस्य-सा जुड़ा प्रतीत होता ह वह चला जाता है ।

गरमीके दिनोंमें सवेरे ही वायु और प्रकाश-स्नान लेना बड़ा आनद देता है । सवेरेकी ठडी-ठडी मजेदार हवाके सुखद स्पर्शसे चित्त प्रसन्न हो जाता है । फिर सूर्यकी कोमल रश्मियां शरीरपर लगती हैं । उनकी गरमी अधिक होनेपर किसी ठडी छांहदार जगहमें जा सकते हैं । यह स्नान, जाड़ा हो या गरमी, बराबर लेते रहना चाहिए । जाड़ेका एक अपना लाभ यह है कि त्वचा शीघ्र शीतल हो जाती है । अत यह स्नान गरमीके दिनाकी तरह जाड़ेमें अधिक देरतक लेनेकी जरूरत नही पड़ती ।

इतना कह लेनेके बाद मेरी समझमें अब किसी भी समझदारको विश्वास दिलानेकी जरूरत नहीं रह जाती कि वायु व प्रकाश-स्नानसे किसी भी हालतमें कोइ नुकसान होनेकी

नहीं हैं। कितने ही जीण रोगियोंके लिए तो मने कइ बार चाहा है कि उन्हें तेज जुकाम या कोइ तीव्र रोग हो जाय। यदि एसा हो जाता तो मैं अवश्य ही रोगीके लाभके लिए उसका उपयोग करता। पर मेरी ऐसी चाहना पूरी होनेका सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। यदि जुकाम हो जाय तो भी वायु और प्रकाश-स्नान छोडनेकी जरूरत नहीं, बुद्धिमत्तापूवक उसे लेते रहना चाहिए। इसे लेते रहनेपर जीवनशक्ति अधिकाधिक बढ़ती ह शरीर गदगी निकाल फेंकनेमें अधिक सफल होता ह। जुकाम से जो अदरूनी गरमी पैदा हो जाती है वह इस स्नानसे शांत हो जाती ह जिससे रोगीका कष्ट कम हो जाता है और वह आराम अनुभव करता है।

प्राकृतिक चिकित्सकके लिए यह आवश्यक ह कि वह वायु और प्रकाश-स्नानके सबधमें अपने विचार स्पष्ट कर ल और जब उसका उपयोग करे तो उसमें लाभके सबधमें किसी प्रकारकी शका न करे। यदि इस स्नानके प्रयोगसे रोगीको जुकाम होनेपर प्राकृतिक चिकित्सक घबराकर उसे वायु और प्रकाशसे दूर गरम कमरेमें बद कर देगा, और कहीं किसी दवाका प्रयोग करा बठेगा तो रोगी कमजोर हो जायगा। निकलता हुआ विजातीय द्रव्य शरीरके अदर ही रुक जायगा और परिणाम बुरा तो होगा ही, कभी-कभी खतरनाकतक हो सकता ह।

१ पर सुस्थिरता और दृढ़ताकी हमेशा विजय होती ह। इस चीजका विश्वास मैं हर नये आदमीको आरममें ही करा दिया करता हू, अत पसा लेकर स्वास्थ्य ठीक रखनेकी राय देनेवाले डाक्टरसे अधिक बुद्धिमती प्रकृति और उसके स्वास्थ्यप्रद

साधनोंमें विश्वास रखकर पहले हर एकको स्वयं वायु और प्रकाशस्नान करना चाहिए, और फिर अपने कुटुंबियोंको कराना चाहिए।

वायु और प्रकाश-स्नानसे मिले लाभके अनुभवसे प्रभावित हुए कितने ही पुरुषों और स्त्रियोंको भी गरमीमें ही नहीं, जाडेमें भी अपने कमरेकी खिडकियोंके सामने खडे होकर यह स्नान उत्साहपूर्वक लेते देखकर मेरी तबियत खुश होती है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नानका लोग आम तौरसे उपयोग नहीं करते तो मैं यह उनकी नहीं, प्राकृतिक चिकित्सकोंकी ही गलती कहूंगा, क्योंकि सर्वसाधारणको तो अपने स्वास्थ्यके बारेमें सोचनेकी शिक्षा ही नहीं मिलती, उनमें तो बिना समझे-बूझे, बिना तर्क किये जो कहा जाय, उसे करनेकी आदत डाली जाती है।

रात और दिनको जाडेमें और गरमीमें, नंगे रहकर अबाध रूपसे वायु और प्रकाश-स्नान करते रहना सर्वथा प्राकृतिक एवं एक श्रेष्ठ स्वास्थ्यकर स्वभाव है। पर और किसी तरहकी रुकावट न भी हो तो आजकी कापुरुष और निर्बल पीढ़ीके लोगोंमेंसे कौन हमेशा नंगा रहेगा? अतः इस विषयमें प्रत्येकको अपनी सुविधा और समयके अनुसार यह स्वयं निश्चित करना चाहिए कि सर्दी-गर्मीको देखते हुए कितनी देरतक और कितने समय बाद वह प्रकाश-स्नान करे। सिद्धांत यह है कि जितनी देरतक और जितनी जल्दी-जल्दी यह स्नान किया जाय, अच्छा है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नान, खुलेमें तथा वनमें जाकर लिया जा सके तो वह कमरेमें लेनेकी अपेक्षा अधिक लाभकर

होगा। प्रत्येक जगलमें ऐसी खुली जगहें होती हैं, जहां यह स्नान मजेमें सबेरे ही लिया जा सकता है। गरमीके दिनोंमें प्रातःकालका समय यह स्नान करनेके लिए बहुत उपयोगी है। यदि इच्छा होगी तो यह स्नान करनेका मौका भी मिल जायगा और समय भी निकल आवेगा।

नदी, समुद्र, तालाब और झीलके किनारे जहां लोगोंके स्नानके लिए घाट बने होते हैं, वायु और प्रकाश-स्नानके लिए भी, बहुत उपयोगी हो सकते हैं। यहा जब कोइ चाहे, जितनी देरतक चाहे, बहुत हल्के कपडे पहनकर वायु और प्रकाश-स्नान बडे मजेमें ले सकता है। धीरे-धीरे वहां बिल्कुल नगे रहकर यह स्नान करनेके स्थान बनवाए जा सकते है।

लेकिन ऐसे लाग खासकर औरतें जिन्हें खुलेमें वायु और प्रकाश-स्नान लेनेकी सुविधा प्राप्त नहीं है, जाड़ा, गरमी, बरसाव, सभी ऋतुओंमें, अपने कमरेकी खिडकीके निकट रहकर नित्य ऐसे स्नान कर सकती हैं। जो लोग यह स्नान आरम्भ कर रहे हों, वे इस रीतिसे यह स्नान जाड़ेमें भी शुरू कर सकते हैं। बच्चोंका, यह स्नान खास तौरसे, और जन्मके दिनसे ही करना चाहिए। कमरेमें कराना हो तो सबेरे सोकर उठते ही प्रातःकालका समय ठीक रहेगा। उन्हें इसमें शीघ्र ही आनद मिलने लगेगा। जब उन्हें यह दिया जायगा तो व आनदसे कूदने-फांदने लगेंगे। यदि इस रीतिका अनुसरण सबसाधारण करने लगें तो आगेकी पीढ़ीके खूब स्वस्थ और सुदृढ़ होनेकी आशा की जा सकती है। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय बदनपर कोइ कपडा न रहे, न जूता हो, न मोजा।

वायु और प्रकाश-स्नान करते समय, खास तौरसे जाड़े

दिन हो, तो खूब कसरत करनी चाहिए। यह कसरत टहलने और दौड़नेके रूपमें हो सकती है।

वायु और प्रकाश-स्नानके बाद शरीरमें गरमी लाना अत्यंत आवश्यक है। तेजीसे टहलनेसे, कोई श्रम-साध्य काम करनेसे, एवं घर-गृहस्थीका काम करनेसे या केवल ओढ़कर लेटनेसे यह काम बहुत अच्छी तरह पूरा होता है।

यह समझना भूल है कि वायु और प्रकाश-स्नान बदनकी गरमीको कम करनेके लिए किया जाता है। जिस प्रकार हर समय अंगीठीके पास बैठे रहनेवालेको जाड़ा कभी नहीं छोड़ता, उसी प्रकार ठंडमें वायु और प्रकाश-स्नान लेनेवालेका शरीर यह स्नान लेनेके समयके सिवा हर समय अधिक गरम रहता है।

कमरेमें नंगे रहनेका लाभ भी कम नहीं है।

यदि प्राकृतिक स्नान लेनेके बाद नहाकर और सारे शरीरको रगड़कर गरम कर लेनेके बाद, वायु और प्रकाश-स्नान किया जाय तो रक्त हाथ-पैरोंकी अंगुलियोंतकमें, तथा त्वचाकी ऊपरी सतहतक तेजीसे दौड़ने लगता है। उस समय यह स्नान करनेमें आसानी होती है और मामूलीसे अधिक देरतक लिया जा सकता है। एक बार परीक्षा कर देखिए तो आपको मेरे कथनकी सचाईमें विश्वास हो जायगा।

वायु और प्रकाश-स्नान करनेके अलावा बरसते पानीमें नंगे सिर चलना भी बहुत लाभदायक है।

जब समय मिले, और मौका मिले, तब वायु और प्रकाश स्नान करनेवाले भी नंगे पैर जरूर चलें।

विशेष स्नान, साधारण स्नान अथवा सिर धोनेके बाद

या नगे पर टहलनेके बाद भी शरीरको तौलियेसे सुखाना अप्राकृतिक है। यह आदत ठीक नहीं ह। सुखेमें खूब कसरत कीजिए, बदन अपने आप सूख जायगा।

जाडा गर्मी, बरसात सभी दिनोंमें सोनेके कमरकी खिडकियां रातमें भी खुली रखनी चाहिए।

धूप-नहान भी एक प्रकारका वायु और प्रकाशस्नान ह। इसके लिए किसी बनमें जाकर निवस्त्र होकर जमीनपर लेटना चाहिए। यदि धूप बहुत तेज हो और आपने कभी पहले धूप नहान न लिया हो तो बदनको जलनेसे बचानेके लिए बदनपर कोइ पतला-सा कपडा या बडा अच्छा हो कि ताजी हरी पत्तियां डाल ली जाए।

ठडी गीली मिट्टी भी सार बदनपर लगाकर उसे जलनसे बचाया जा सकता ह।

धूपमे जलना न हानिकारक है न खतरनाक पर जले हुए स्थानोंमें अक्सर बहुत पीडा होती है। अत जहातक बन सके इस प्रकार जलनेसे अपनेको बचाना चाहिए। यदि कहीं जल ही जाय तो उसकी दवा है ठडे पानी एव ठडे पानीसे भीगी पट्टियोंका प्रयोग। (गीली मिट्टी लगाना भी उतना ही लाभकर होगा) । आम तौरसे काममें लाये जानेवाले मरहम और तेलोंका प्रयोग कभी न करना चाहिए।

जब धूप बहुत तेज हो, तब धूप-नहान बहुत अधिक देरतक कभी नहीं लेना चाहिए। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय कभी धूपमें और कभी सायामें रहा जा सकता है।

यह आवश्यक ह कि धूप-नहान जमीनपर लेटकर ही लिया जाय। घरकी छतपर या बिछौनेपर लेटकर लेना,

जसा कि लोग अक्सर किया करते हैं, ठीक नहीं है। मनुष्य धरतीका बेटा है।

पृथ्वीके सीधे सपर्कमें आनेपर मनुष्यपर जो जीवनदायक प्रभाव पड़ता है, उसपर मैं सुविस्तृत प्रकाश फिर डालूंगा।

यदि नगे होकर वायु और प्रकाश-स्नान लेनेका मौका न मिले तो हल्के कपड़े पहनकर खुली जगहमें, और उसका भी मौका न मिले तो अपने कमरेमें ही लेना ठीक होगा। जब धूपमें लिया जाय तो मुहको धूपसे बचाना चाहिए।

धूप-नहानके बाद कटि-स्नान लेकर शरीरकी गरमी शांत करनी चाहिए।

झझरीदार झोंपड़ी

मदानमें बनी झोंपड़ीमें जिसमें वायु और प्रकाश निर्बाध रूपसे आते हों, सोनेसे बड़ा लाभ होता है।

यह बिलकुल मामूली झोंपड़ी होती है। वर्षाके पानीसे बचावके लिए ऊपर छाजन डाल देते है। इसमें दीवारें नहीं होतीं, बिल्कुल खुली या झझरीदार होती हैं। आधी और तेज हवासे बचनेके लिए परदे होते हैं और जाड़ेके दिनोंमें घोर ठडसे बचनेके लिए सरकडे आदिकी टट्टी या कम ऊचाइ-का काठका परदा लगा दिया जाता है जिसमें वायुका प्रवेश अच्छी तरह होता रहे। अगर खिडकियां और रोशनदान काफी हों तो दीवारें भी रखी जा सकती हैं और तब यह रहनेके काममें भी लायी जा सकती हैं। छतमें भी, रोशनदान रखना

अच्छा होता है जिसमें खिड़कियाँ बंद होनेपर वे खुल रह आ सकें।

शरीरके लिए, विशेषकर रात्रिकालमें जब वह पाचन-कार्यमें संलग्न रहता है, शुद्ध ताजी हवा परमावश्यक है। इस दृष्टिसे इस तरहकी झोंपड़ीमें सोना स्वास्थ्यके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिनके बाग-बगीचे आदि हैं वे रहनेके लिए ऐसी झोंपड़ियाँ मजेमें बनवा ले सकते हैं।

जंगलमें बने हुए मकानोंमें भी रसोईघर, रद्दी चीजों आदिकी गंध रहनेके कमरोंमें पहुंच सकती है। वायुके दूषित होनेका एक कारण यह भी होता है कि एक ही मकानमें नीचे ऊपर बहुतसे मनुष्य रहा करते हैं और पत्थरकी दीवारोंमें घुसी हुई दुर्गंध बहुत दिनोंतक रुकी रहती है, इसलिए ऐसे मकानोंकी हवा बिलकुल शुद्ध कभी नहीं रहती। झंझरीदार झोंपड़ेमें यह खराबी नहीं पायी जा सकती। सर्दी, आंत्रिक सन्निपात ज्वर, विसूचिका, गठिया, घातक अर्बुद, यक्ष्मरोग, फोड़ा या और कोई भी रोग हो, शुद्ध हवा उसे दूर करनेमें सबसे अधिक सहायक होती है।

सारे सुखोंका मूल आधार स्वास्थ्य ही है। मनुष्य भौतिक सुखोंका उपभोग अपने स्वास्थ्यके अनुरूप ही कर सकता है। इस तथ्यका ज्ञान हो जानेपर लोग झंझरीदार झोंपड़ीमें रहनेका लाभ समझने और उसका निर्माण करने लगेंगे और तब प्रकृतिकी गोदमें बनी हुई इन सुंदर झोंपड़ियोंमें सोना या रहना लोगोंके लिए आश्चर्यका विषय नहीं रह जायगा और इन्हें नगरके कमरोंपर बहुत तरजीह दी जाने लगेगी जो गंद, दुर्गंधसे विषाक्त और ऐसे रोगोंके उत्पत्ति-स्थान होते हैं

जो शरीरका ही विकृत और विषाक्त नहीं करते बल्कि सभी प्रकारके मानसिक और आध्यात्मिक विकारों, जड़ता और उन्माद, तृष्णा और विनाश पाप और अपराध, घृणा और द्वेष, कलह और संघर्ष—संक्षेपमें संसारकी सभी बुराइयोंके कारण होते हैं।

यह भय नहीं करना चाहिए कि इस तरहकी झोंपड़ीमें रहनेपर जाड़ेके दिनोंमें ठिठुरकर मर जायेंगे। अगर साधारण तोशक और रजाइ या कंबल हों तो मैदान या जंगलमें बनी ऐसी झोंपड़ीमें आरामसे रहा जा सकता है क्योंकि शुद्ध और ताजी हवामें सांस लेनेपर भरे और गंदे कमरेमें सांस लेनेकी अपेक्षा शरीरमें अधिक गरमी पैदा होती है।

इन झोपड़ियोंमें सोनेवालों और उनके कपड़ोंका वर्षासे मजेमें बचाव हो जाता है। मौसम अच्छा होनेपर खुले मैदानमें सोना झंझरीदार झोंपड़ीमें सोनेकी अपेक्षा अधिक लाभ दायक होता है, क्योंकि हम प्रकृतिकी ओर जितना ही बढ़ते जायंगे वह हमें उसका उचित पुरस्कार देती जायगी। मैदानमें सोनेपर हम अविराम गतिसे विचरण करनेवाले तारोंतक पहुंचते हैं और मंद समीरण हमारा आलिंगन करता रहता है। सुंदर रात्रि मनको तो मुग्ध करती ही है, शरीर तथा आत्माकी सारी कमजोरियोंको भी दूर कर देती है।

अगर कोइ मनुष्य मकानसे बाहर खुले मैदानमें सोता है तो इसमें दिखावे या उपहासकी कोइ बात नहीं है जब कि घरहे, हिरन, बारहसिंगे, सूअर तथा अन्य बहुतसे जीव मैदानमें ही रहते हुए अपनी साफ चमकीली आंखों, शरीरकी स्फूर्ति और शक्ति, स्वास्थ्य तथा प्रकृतिसे प्राप्त अन्य अच्छे गुणोंको

उत्तम ढंगसे बनाये रख सकते हैं। ये पशु मनुष्योंकी तरह आचरण नहीं करते जो अपने स्वास्थ्यकी उपेक्षा ही नहीं करते, उसे अपने ही पैरोंसे रौंदा करते हैं जिससे उनका जीवन कटु और दुःखमय हो जाता है।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भारी भरकम मकानोंसे छोटे हल्के मकान अच्छे होते हैं। बागोंमें या वृक्षोंसे परिवेष्टित छोटे छोटे मकान अधिक बनने चाहिए। गलियोंमें कतारमें बने हुए मोटी दीवारावाले मकान स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छे नहीं होते। नगरकी सीमापर बने हुए मकान भीतरके मकानोंसे कुछ अच्छे होते हैं। मकानोंकी बनावट ऐसी होनी चाहिए जिसमें हवा और रोशनी बिना किसी रुकावटके हमेशा आती रहें।

वेष-भूषा

प्रकृतिकी इच्छा है कि मनुष्य नंगा रहे, और इसी तरहके जीवनके उपयुक्त उसने मनुष्यके शरीरको बनाया है। यदि ऐसी बात न होती तो मनुष्य चरखे-करघेका आविष्कार करनेके बहुत पहले ही मर-खप गया होता। इसलिए यथार्थ बात यही है कि मनुष्यको किसी तरहके भी कपड़े नहीं पहनने चाहिए।

हम अपने शरीरको चाहे कुछ क्षणोंके लिए ही क्यों न ढकें, किंतु ऐसा करना हमारे स्वास्थ्यके लिए बुरा है। मनुष्यको प्रकृतिने कैसा स्वास्थ्य दिया था, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति कितनी तीव्र थी उसे कितनी उम्र मिली थी और वह कितने आनंद और सुखका अधिकारी था ?—इसका

ज्ञान हमें नहीं है, अत हम यह नही समझ पाते कि कपड़े पहनकर और फलत अपने शरीरको प्रकाश और वायुसे वंचित रखकर मनुष्य-जातिने अपने शरीरको कैसी कल्पनातीत हानि पहुचाई है। शीतोष्ण कटिबंधमें अभी कई ऐसी जातियां हैं (उदाहरणके लिए फायर आईलैंडके रहनेवाले तथा दूसरे लोग) जो जाडा हो अथवा गरमी, कभी कपड़े नहीं पहनतीं। कुछ ही वर्ष हुए समाचार-पत्रोंने योरोपनिवासी किसी कैप्टन स्मिथकी सारे कटिबंधोंमें की गई उस यात्राका वर्णन किया था जो उन्होंने बिना कपडे बिल्कुल नगे बदन की थी।

आज हम एकाएक फिरसे सबके नगा रहना शुरू करनेकी आशा क्यों नहीं कर सकते, यहां यह बतानेकी मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पर इस बातकी सख्त जरूरत है कि हम ऐसे कपडे ही पसद करें और बनावें जो वायु और प्रकाशको शरीरतक आसानीसे और भरपूर पहुचने दें और जिनसे होकर शरीरकी दूषित वायु बिना किसी कठिनाईके निकलती रह सके।

इधर बहुत दिनोंसे स्त्री और पुरुष दोनोंके लायक अनेक प्रकारके हवादार कपडे बाजारमें बिकने लगे है, पर जो कपडे सिलवाए जाय उनका सछिद्र और हवादार होना ही काफी नहीं है, बल्कि वे चुस्त न होकर खूब ढीले-ढाले भी होने चाहिए।

कपडे अजीब किस्मके और बहुत काट-छाटकर सिले हुए नहीं होने चाहिए, अन्यथा वे व्यर्थमें लोगोंका ध्यान आकर्षित करेंगे। पर न तो कुरुचिपूर्ण फैशनका गुलाम होनेकी जरूरत है और न भडकीले कपड़ोंको मान्यता देनेकी ही आवश्यकता।

इस सबधमें "बढ़िया कपडे पहनकर आदमी बड़ा दिखाई

देना है", लोगोंकी यह आम धारणा बडी निराशाजनक है। पर हमें यह आशा करनी चाहिए कि ऐसा वक्त शीघ्र आयगा जब लोग वस्तुत ऊची चीजोंकी सुदरताको समझने लगेंगे।

बाजारमें कइ तरहकी स्वास्थ्यप्रद कही जानेवाली बनियानें मिलती है, किन्तु वे तो और भी निकम्मी होती हैं। ऊनी कमीज या बनियान तो पहनना ही न चाहिए। ऊनके सीधे सपकमें आनेपर त्वचा सुकुमार हो जाती है। फोडे-फुसी या घावपर कोइ ऊनी पट्टी नहीं बाधता, जो चीज चुटीली या घावभरी त्वचाके लिए बुरी है वह स्वस्थ त्वचाके लिए बहुत अच्छी कैसे हो सकती है ?

अनेक सूती बनियानें बडी गहरी बुनी होती हैं। धोनेपर वे सिकुडकर नमदेकी तरहकी हो जाती हैं। सनके बने कपडे बहुत भारी तो होते ही है, वे अक्सर हवादार भी नहीं होते। कुछ कपडे बडे महीन और पतले होते हैं, अत वे बदनमें बिलकुल चिपक जाते हैं। कइ कपडे इतने कमजोर होते है कि बहुत जल्दी फट जाते है। कमीज और बनियानके लिए कपडा खरीदते वक्त इन बातोंका पूरा ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इनका हमारे स्वास्थ्यसे विशेष सबध है।

मेरे चिकित्सालयमें लोग जो कमीजें पहनते है वे बहुत हवादार होती हैं और इतनी पतली नहीं होतीं कि बदनमें चिपक जाय। इनका रग मलाइका-सा होता है, ये बिलकुल सफेद कपडेकी भी बन सकती हैं।

सबसे अधिक अत्याचार तो हम अपने पैरोंपर करते हैं। शरीरके किसी भी अगकी बनिस्बत पैरोंसे अधिक गदगी निकलती है, यह उनसे निकलनेवाले पसीनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

इसलिए पैरोंका समय-समयपर खुला रखना चाहिए। पर दुर्भाग्यसे चाल इससे बिल्कुल उल्टी है। लोग अपने पैरोंको चमड़ेके तग जूतोंमें कसे रखते हैं, जिससे उन्हें कष्ट होता है और स्वास्थ्यको नुकसान पहुचता है।

चमड़ेके जो जूते पहने जाय वे कड़े फिट न हों। कपड़े अर्थात् कैनवसके बने जूते चमड़ेके जूतोंसे अधिक स्वास्थ्यप्रद होते हैं। अब कैनवसके जूते हर जगह बिकने लगे हैं। रबड़ और चमड़ा स्वास्थ्यके लिए खास तौरसे हानिकारक है। इसलिए चमड़ेके जूतों, दस्तानो एव जुर्राबके इस्तेमालसे बचना चाहिए। सूतके पतले मोजे ऊनी मोजोंसे अच्छे हैं।

दस्तानोंका प्रयाग बिल्कुल न करना चाहिए। यदि व्यवहार किया ही जाय तो वे सूत या बटे सूतके बने होने चाहिए। जुर्राब भी मजबूत लचीले सूती कपड़ेके बने होने चाहिए।

सबसे अच्छा तो यही है कि मनुष्य फिरसे नगे पांव चलना आरम करे। नगे पांव चलनेको लोग तमाशेकी चीज न समझें इसके लिए इस सबधकी अनेक प्रचलित रूढ़ियोका मिटाना होगा। पर ऐसी रूढ़ियोंसे हमें बहुत डरनेकी जरूरत नही है हमें हिम्मत करके आगे बढ़ना चाहिए और लोगोंके सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। ऐसा कर हम लोगोंको 'प्रकृतिकी ओर लौटो' के पथपर लगायेंगे। इसके लिए आवश्यकता हो तो हमें कष्ट भी सहना चाहिए। फिर शीघ्र ही हमारे साथ चलनेवाले लोग मिल जायगे।

यदि शहरकी सड़कोंपर नगे पांव चलनेकी हमारी हिम्मत न हो तो जब हम गावोंमें जाय या यात्रा आदिपर निकलें, उस वक्त तो हमें नगे पांव ही चलना चाहिए।

अपने घरमें या अपने कमरेमें हम चप्पल पहनकर मजम रह सकते ह और अपने पैरोको आराम दे सकते हैं। मुझे तो चप्पलें बड़ी सुदर लगती ह। प्राचीन ग्रीक निवासी और पुरान राजा चित्रोंमें चप्पल पहने दिखाए जाते हैं और वे चप्पल पहने बडे भव्य प्रतीत होते हैं। आजकी चप्पलो और सेंडिलोंमें कइ दुर्गुण होते हैं। कइ ऐसी होती हैं जो परोंको दबाती और काटती हैं। मेरे चिकित्सालयमें जो सेंडिलें पहनी जाती हैं वे मेरे बताए अनुसार बनी हैं और इन दुर्गुणोंसे मुक्त हैं। उनमें पैर बहुत अधिक स्वतत्र रहते ह और उन्हें आराम मिलता ह।

प्राचीन कालमें पाजामा घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। जो पाजामा पहनता था लोग उसे जगली समझते थे, साधारण लाग ढीला-ढाला मोडदार 'टोंगा' (प्राचीन रोमका चोगा-विशेष) पहनते थे।

आजके लोग पाजामा छोड़कर टोंगा या चोगा पहनना जल्दीसे पसद न करेंगे। लोगोंकी इस रुचिके विपरीत कोइ दूसरी चीज चलानी कठिन प्रतीत होती है। पर इतना तो हो ही सकता ह कि लोग कसे हुए जांघिए वगैरहका उपयोग न करें।

स्त्रियां, लड़कियां और छोटी-छोटी बच्चियां तक जांघिया क्यों पहनती हैं? यह बात बिलकुल समझमें नहीं आती। *मैं यहां इस रिवाजकी निंदा करनेमें समय नहीं लगाऊंगा,* पर मेरा यह दृढ़ विश्वास ह कि यदि स्त्रियां जांघिया पहनना बद कर दें और उनके पेडूके चारो तरफ हवा आ-जा सके तो वे गर्भाशयके रोग, बच्चे जननेमें पीडा, मूर्छा आदि अनेक रोग, जिनसे वह प्राय पीडित रहती हैं बची रहेंगी।

करिए और देखिए।

हमारी मा-बहनोंके वस्त्रोंमें एक भयंकर राक्षसी घुस आई है—वह राक्षसी है चोली। पुराने जमानेकी निशानीके तौरपर रखे गये यंत्रणा देनेके अस्त्र जिनसे मनुष्यके अत्याचार करनेकी सीमा प्रदर्शित होती है, मुझे इतने भयानक नहीं प्रतीत होते जितनी आजकी ये चोलियां। अत्याचारके उन साधनोंका प्रयोग तो बड़े-बड़े अपराधियोंको सजा देनेके लिए किया जाता था और अपराधी इसे अवरत सहता था, पर हमारी मा-बहनें तो खुशी-खुशी अपनी इच्छासे अपने ऊपर भयानक अत्याचार कर रही हैं और इन चोलियोंसे इस हदतक अपनेको कसती हैं कि उनके लिए सांसतक लेना कठिन हो जाता है। यह बड़ी विचित्र पहेली है।

स्त्रियां अपने इस कष्टकी इतनी आदी हो गई है कि वे इसका अब अनुभव ही नहीं कर पाती। पर वास्तवमें यंत्रणाके उन प्राचीन अस्त्रोंसे चोलीकी यंत्रणा कम नहीं होती।

चोलीके विरुद्ध अबतक लोगोंने बहुत कुछ कहा और लिखा है, पर उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मैं इस विषयपर अब व्यर्थके लिए अधिक लिखना उचित नहीं समझता। अबतक बेहोशीके दौरे, मूर्छा, तरह-तरहकी कमजोरियों और पीड़ाओंको आनंदकी वस्तु समझा जाता है और पीले करुणोत्पादक चेहरेको सौंदर्यका आदर्श, तबतक चोलीका चलन चलता रहेगा। इस संबंधकी अपनी गलतीके लिए जब पुरुष सजा पा लेंगे तब ईश्वर उन्हें अवश्य अक्ल देगा।

यदि स्त्रियां ढीले कपड़े पहनना पसंद करें तो वे कई तरहकी ऐसी ढीली अंगिया भी बना सकती हैं, जिनका शरीरपर दबाव न पड़े और रक्तके संचालनमें बाधा न हो।

कितना अच्छा होता यदि जन्मते ही बच्चोंको गरमाहटके लिए कपड़ेमें लपेटनेकी प्रथाका अंत हो जाता। इस प्रथाके कारण बच्चोंकी बढ़वार शुरूमें ही रुक जाती है। बच्चोंमें बड़ोंकी अपेक्षा जीवनशक्ति और उष्णता अधिक होती है। वे नंगा रहना बड़ोंसे ज्यादा अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते हैं। उनकी नैसर्गिक वृत्ति उन्हें अपने कपड़े उतार फेंकनेके लिए बार-बार प्रेरित करती है। जब कभी उनके कपड़े उतार दिए जाते हैं, वे कितने खुश होते हैं। अतः हमें प्रकृतिकी भावनापर ध्यान देना चाहिए और बच्चोंको समय-समयपर नंगे सुलाने और नंगे रखनेका खयाल रखना चाहिए।

प्यारी माताओ! यदि आप अपने बच्चोंके कपड़ोंकी कम चिंता करेंगी तो निश्चय जानिए कि वे एक दिन आपको इसके लिए अवश्य धन्यवाद देंगे। वे आपके इतने अधिक कृतज्ञ होंगे कि जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकतीं। नंगे पाँव रहनेमें बच्चोंको बड़ा आनंद मिलता है। हमें उन्हें यह आनंद मनाने देना चाहिए और उन्हें इस आजकी सभ्यताके रोग, शोक और अकाल मृत्युसे बचनेके पथपर चलनेसे न रोकना चाहिए। यदि हम इस सबंधमें औचित्यसे काम लेंगे तो हमें अपने बच्चोंके लिए व्यर्थकी चिंता, दुःख और कष्ट उठानेकी आवश्यकता न रहेगी। पर बात क्या है कि माताएं अपने अनजानेमें अपने सुकोमल प्यारको कठोर निर्दयतामें बदल देती हैं और बच्चोंको उस सच्चे आनंद खुशीके खजानेका उपभोग नहीं करने देतीं जो प्रकृति उनके लिए सदैव खुला रखती है और इस प्रकार बच्चोंमें जीवनभरके रोग-शोकका कारण होती हैं। इस गुत्थीको कौन सुलझा सकता है?

फटे हवादार कपड़े पहने, नंगे पाँव गाँवकी धूलमें खेलनेवाले प्रसन्न-वदन नटखट लड़कों और खानाबदोशोंके लड़कोंपर नजर डालिए। फिर बच्चोंको स्वस्थ रखनेके नियम जाननेकी आवश्यकता न रह जायगी। नंगे पाँव रहनेकी आदत डालना बच्चों और बड़ों, दोनोंके लिए लाभदायक है।

हम किसीको प्रणाम करते वक्त, गिरजेमें और कब्रिस्तानमें एवं प्रार्थनाके समयकी गंभीर और महत्त्वपूर्ण अवस्थाओंमें अपनी टोपी क्यों उतार देते हैं? अब भी एक धीमी-धीमी आवाज हमें बताती है कि बुद्धिके उद्‌गमस्थान सिरको ढकना प्रकृतिकी इच्छा एवं ईश्वरकी आज्ञाके विरुद्ध है, अतः पाप है। धार्मिक अनुष्ठानोंके समय यह पाप करनेसे हम अनजानमें ही बच जाते हैं।

प्रकृतिने मनुष्यके सिरको आरंभमें लंबे, घुंघराले, लहरदार बालोंसे सुसज्जित किया था। स्त्रियोंके बाल तो इतने बड़े होने चाहिए कि उनकी सुनहली अलकोंसे उनका सुंदर शरीर ढक जाय। पर मनुष्य जब अपने सिरको ढकता है, तब वह प्रकृतिकी इस देनका निरादर करता है। वह जो इसे नष्ट कर देता है, पापपूर्ण भी है और मूर्खतापूर्ण भी। ईसाके सिरको कभी किसी टोपीने नहीं ढका। उसे तो केवल काँटोंके ताजसे सुसज्जित किया गया था।

जितना ही अच्छी तरह सिरको ढका जाता है उतना ही अधिक बालोंको नुकसान होता है अंतमें वे बिलकुल उड़ जाते हैं। बाल उड़ जानेपर हम सुंदरसे अधिक असुंदर ही प्रतीत होते हैं। खल्वाट मस्तक साक्षात् कुरूपता है।'

'जो फिरसे या अच्छे घने बाल उगाना चाहते हैं उन्हें प्रकृतिके नियमोंके अनुसार (जल, प्रकाश वायु, भोजन) जीवन व्यतीत करना

अतः सभी टोपियाँ और हैट हवादार और हल्के होने चाहिए और उनके अंदर अस्तरमें चमड़ा नहीं लगाना चाहिए। भीतरकी तरफ चारों ओर कपड़ेकी (ऊनी) पट्टी लगाई जा सकती है। पर नंगे सिर रहनेके लिए हमेशा मौका निकालना चाहिए। जब हम अपने घरमें रहें, या कमरेमें बैठकर काम करें, उस वक्त हमें अपना सिर खुला रखना चाहिए। शहरकी सीमा पार कर लेनेपर हमेशा टोपी उतार लेनी चाहिए।

यदि लोगोंमें एक बार फिरसे नंगे सिर, नंगे पांव और बन सके तो मांझियोंकी भांति सीना भी खोलकर रखनेकी आदत डाली जा सकती तो उन्हें अपार लाभ पहुंचाया जा सकता। लोगोंका यह प्रकृतिकी ओर एक बड़ा कदम होता और जीर्ण रोगोंकी लंबी शृंखला जगह-जगहसे टूट जाती। पर कभी भी इतने कम कपड़े पहननेकी जरूरत नहीं है कि आदमी जाड़ेसे ठिठुरता रहे और कष्ट भोगता रहे।

यदि हम हर तरहसे प्राकृतिक जीवन बिताना आरंभ कर देंगे तो हमारे शरीरमें स्वयं धीरे-धीरे इतनी उष्णता उत्पन्न हो जायगी कि हम जो अपनेको जाड़ोंमें ऊनी कपड़ोंसे लादे रहते हैं, उनमेंसे एकके बाद दूसरा कपड़ा स्वयं अपनी इच्छासे और खुशी-खुशी उतार फेंकेंगे। यह नहीं कि उस वक्त उनके बिना हमारा काम चल जायगा, वरन् उनके फिरसे उपयोग करनेपर उनसे हमें तकलीफ होने लगेगी।

चाहिए। और जहां तक बने सिरको नंगा रखना चाहिए। सिरपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे सिरकी त्वचासे विजातीय द्रव्य खिंच आयेगा और बालोंके उगनेमें सुविधा होगी। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा बालोंके बढ़ने और घने होनेमें और भी सुविधा मिलेगी।

कुछ लोग प्राकृतिक जीवनसे यह अर्थ लगाते हैं कि ऐसा जीवन व्यतीत करनेवालेको टेबुल, कुर्सी, मेज, कपड़े आदि वस्तुओंसे, जो उसे अभीतक आराम और आनंद प्रदान करती रही हैं, वंचित रहना पड़ेगा। पर यह डर निराधार है।

आरंभमें जो इन वस्तुओंसे जितना चाहे आनंद उठावे। पर प्रकृति-पथपर अग्रसर होनेपर सभ्यताके ये अधिकांश चिह्न धीरे-धीरे न केवल व्यर्थ प्रतीत होंगे, वरन् वे भारवत एवं कष्ट-कर हो जायंगे। उनसे तब खुशी-खुशी छुट्टी ली जा सकेगी और इस प्रकार प्राप्त सादगी और स्वतंत्रता, अवश्य ही अधिक आनंद और सुखका सृजन करेगी।

इसलिए चलो प्रकृतिकी ओर लौटें। इस पथपर चलकर हम आनंद और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे, शांतिप्रदायिनी सादगीके अधिकारी होंगे और असंतोषकी मूर्ति आवश्यकतासे मुक्ति मिलेगी।

आज हम इतने सुकुमार हो गये हैं कि कपड़े बिना हमारा काम नहीं चलता। दूसरे, कपड़ोंकी इसलिए भी जरूरत है कि समाजमें बिना कपड़ेके रहना लोगोंमें अपने प्रति क्षोभ और घृणा उत्पन्न करता है। कपड़ोंसे बस इतना-सा काम सधता है, अन्यथा वे बिल्कुल व्यर्थ हैं।

कपड़ोंद्वारा न तो चमकनेकी ओर न लोगोंको मोहित करने-की इच्छा करनी चाहिए और न उनसे अपनी नकली कीमत बढ़ानेकी ही कोशिश करनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो फिर हम अपने कपड़ोंके लिए पहलेकी तरह चिंतित न रहेंगे, उनका हमारे लिए विशेष मूल्य न रह जायगा, न हमें उनके लिए उतनी चिंता होगी और न वे हमारा उतना समय और ध्यान आकर्षित करेंगे।

लेमें कितनी सादगी अपना सकता है एवं उसकी आवश्यकताएं किस हदतक स्वतन्त्र हो सकता है इसका निर्णय प्रत्येकको अपने लिए स्वयं करना चाहिए।

कम-से-कम नये कपड़े बनवाते समय तो हमें सादगी और स्वास्थ्यका ध्यान रखना शुरू कर ही देना चाहिए। स्त्रियोंको इधर खास तौरसे ध्यान रखनेकी जरूरत है। सादे कपड़े पहनना शुरू कीजिए, वे आपको आजके मूर्खतापूर्ण फशनेवुल कपड़ोंसे अधिक सुंदर जचने लगेंगे। जो स्त्री फैशनकी गुलाम न बनकर बल्कि फैशनकी अवहेलना कर सीधे-सादे कपड़े पहनती है, वह कभी नुकसान नहीं उठावेगी। उसे इसके लिए हर जगह सहानुभूति और सम्मान मिलेगा।

मूर्खतापूर्ण फैशनकी प्रशंसा करना अब हमें बंद कर देना चाहिए। जो लोग बहुमूल्य वस्त्र पहनकर अपनेको आकर्षक बनाना चाहते हैं, उन्हें ईसाके इन शब्दोंपर ध्यान देना चाहिए "खेतमें खिली हुई लिलीकी ओर देखो, कितनी सुंदर है। और मैं तुम्हें बताता हूं कि यद्यपि सोलोमन इसकी तरह सजाए नहीं गए थे, पर वे इससे कम गौरवशाली न थे।" खेतोंमें खिले फूल, एक पेड़से दूसरे पेड़पर प्रमुदित-मन दौड़ती गिलहरी, पत्थरों और झाड़ियोंपरसे शानसे छलांग मारता हुआ हिरन, सुंदर पांखोंवाली गाती हुई चिड़िया, ये सभी सुंदर हैं।

अपने सुंदर केशोंसे सुसज्जित, उत्कृष्ट रूपसे सुडौल अंगों वाली, एक ढीला-सा वस्त्र पहने ग्रीसकी स्त्री भी सुंदर होती थी। समन स्त्रियां अपने सौंदर्यके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रकृतिकी ये बालिकाएं बहुत थोड़े कपड़े पहनती हैं और अपने द्वीपमें निष्कपट भावसे विचरण करती रहती हैं। इनका भोजन

होता ह करीब-करीब केवल फल, जिसे प्रकृति अब भी महुतायतसे उपजाती है।

जवानीमें ही वृद्धत्वको प्राप्त हुए, मक्खन-सी चिकनी चांद लिए, नुकीले टोवाले जूतों, एक आंखके चश्मे तथा अन्य सिंगार-सामानसे बने-ठने जवान कुरूपताकी प्रतिमूर्ति ह, उन्हें देखकर घृणा होती है।

खेतमें गड़े डरावेकी तरह प्रेत-सी लगती हुइ पीली-पीली लड़कियां और स्त्रियां जो गोटे पट्टेसे लैस चमकीले भड़कदार कपड़े पहने, सिरके बालोंको आड़ा तिरछा किये, रुनझुन-रुनझुन बजते गहने पहनकर शहरकी सड़कोंपर घूमती नजर आती हैं उन्हें कुरूप न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? उनकी ओर लोग आकर्षित नहीं होते, बरन् उन्हें देखकर प्रत्येक सौंदयके पारखीके मनमें घृणा उत्पन्न होती ह।

ईसाने अपनी आज्ञामें छोटी-छोटी बातपर भी ध्यान रखा ह। उन्होंने अपने शिष्याको छड़ी लेकर चलनेसे भी मना किया ह—"तुम लोग अपने साथ दो कोट न रखो, न जूते ही पहनो और न छड़ी लेकर ही चलो।" इसलिए बिना छड़ीके टहलना अधिक प्राकृतिक एव स्वास्थ्यप्रद है। अनुभवकी बात है कि बिना छड़ी लिए चलना अधिक सुखप्रद और स्वास्थ्यप्रद है।

कपड़ोंकी बात तो अलग रही, घरको सजानेमें भी हम जिस तड़क-भड़कसे काम लेते हैं वह अधिकतर अप्राकृतिक और हानिप्रद है। इस दशामें भी हम अपनी उस प्राकृतिक दशासे बहुत दूर जा पड़े ह जब मनुष्य ईश्वरके बनाए प्रासादमें, तारासे ग्रथित आकाशके नीचे, पेड़ोंके सायेदार गुबजके तले रहता था और खुली धरतीपर बैठता और लेटता था। उस समय प्रकृति स्वय

अपने हाथों उसके घरको फूल-पौदों और वृक्षोंसे सजाती था।

पहले हमें तकिया और झालर लगे मेज-कुर्सीसे बचना चाहिए और उनका त्याग करना चाहिए। मुलायम गद्दी-तकिया लगे सोफेपर बैठने या लेटनेपर शरीरके कुछ अंग बहुत अधिक गरम हो जाते हैं। फल यह होता है कि इन अंगोंमें रक्त इकट्ठा हो जाता है जिससे शरीरके रक्त-संचालनमें बाधा पड़ती है, थकान और सुस्ती आती है, कापुरुषता और हर तरहकी कमजोरीका आगमन होता है। मैं समझ नहीं पाता कि लोग गद्दे और झालरदार टेबुल कुर्सी, जिनमें गर्दा बुरी तरह फँसा रहता है, से भरे कमरेमें आरामका अनुभव कैसे करते हैं? इसके बजाय बेंतकी बनी और बेंतसे बुनी कुर्सी आदिका उपयोग हो सकता है। सीधी-सादी लकड़ीसे बनी मेज, कुर्सियाँ और बेंच जैसी कि पहले लोग काममें लाते थे, आजके तकिए और झालरदार सोफे और कुर्सीसे अच्छे समझे जाने चाहिए।

खिड़कियोंको सजानेमें भी कम बेवकूफीसे काम नहीं लिया जाता। पहले लोग खिड़कीपर पर्दा नहीं लगाते थे। वायु और प्रकाश अबाध रूपसे कमरेमें आता रहता था और यह बहुत अच्छी बात थी। आज सुसंस्कृत! कुटुम्बोंमें यदि घरमें कोई ऐसी खिड़की हो जिससे रोशनी घरमें घुस सकती हो तो यह बड़े शर्मकी बात समझी जाती है और इसलिए वे उसपर पर्दा डाल देना आवश्यक समझते हैं। अतः वे केवल ऐसे पर्दे खिड़कीपर नहीं लगाते जिससे सड़कपर चलनेवालोंको घरके अंदरकी चीजें न दिखाई दें, वरन् वे उसपर इतने मोटे कपड़े लगाते हैं कि कमरेमें अंधेरा हो जाता है। जिससे कमरे

अस्वास्थ्यकर ता हो ही जाते ह, उनमें आराम भी नहीं मिलता। यदि खिडकियोंको सजाना ही हो तो क्यों नहीं किसी सुदर, पतले पारदर्शी कपडेसे उन्हें सजाया जाय जिससे सूयकी किरणो और प्रकाशको कमरेमें पहुचनेमें कम-से-कम रुकावट हो।

यहां मैं थोडा-सा बिछावनके बारेमें भी कहना चाहता हू। मनुष्यकी जिंदगीका आधा भाग बिछावनमें ही कटता है। बिछावनमें वह अपनी थकान दूर करता और अपना स्वास्थ्य बढाना चाहता है। इसलिए बिछावनपर बहुत ध्यान देनेकी जरूरत है ताकि उन्हें प्रकृतिके अनुकूल बनाया जा सके। पहली जरूरत बिछावनके बारेमें यह ह कि उसमें हवा आसानीसे आ-जा सके। चादरके अदरकी हवा, शरीरसे निकले भाप और पसीनेके ससगमें आकर गदी हो जाती ह। उसकी गदगी दूर करनेके लिए चादरके अदरकी हवासे बाहरकी हवाको मिलनेका पूरा मौका मिलना चाहिए। इसलिए रूइ या पर से भरे रजाइ-गद्देका पूण बहिष्कार करना चाहिए। ओढनेके लिए केवल ऊनी कबल सवश्रेष्ठ है। शरीरसे लगी रहनेवाली चादर जरा पतली रहनी चाहिए ताकि वह शरीरसे अच्छी तरह चिपक सके। कबलके ऊपर जो चादर डाली जाय वह भी हल्की, सूक्ष्म रध्र-युक्त होनी चाहिए। ऐसे ओढनेके नीचे शरीरमें उपयुक्त और आवश्यक गर्मी पैदा होती ह।

बिछानेके लिए खर-पयालकी बनी चटाइ, जसी कि पहले चला करती थी, बहुत अच्छी रहेगी। पयाल या खरमें हवा अच्छी तरह आ-जा सकती ह और वह शरीरको बिना अप्रा कृतिक रूपसे गरम किये, काफी गरम भी रहती ह। पर आज लोग अपने शयनकक्षकी फर्शपर बिछे गलीचेपर गिरा हुआ खर

देखना कसे पसद करेंगे। इसलिए चटाइका चलन चलना ऐसा प्रतीत नहीं होता।

पर गद्दा समुद्री घास, जड़ भूसे आदिसे भरकर भी बन सकता है। कंबलसे भी गद्देका काम लिया जा सकता है। घोड़ेके बाल और उनसे भी गद्दा बन सकता है। उनके साथ यदि घोड़ेके बाल मिलाकर गद्दा बनाया जायगा तो उन दब-दबकर इतना नहीं चिपटा हो जायगा कि हवा उसके आर-पार न जा सके।

ऊंचे-ऊंचे तकिए लगाकर सोते वक्त सिरको बहुत न उठा-इए। तकिए हों ही तो बहुत पतले। ओढ़नेके नीचे बिलकुल नग (बिना कमीज या जांघिया पहने) सोनेपर जितना जोर दिया जाय, कम है। बिना कपड़े पहने सोनेपर कपड़े पहनकर सोने शरीर ज्यादा गरम रहता है। हवादार गद्दे बड़ी आसानी बन सकते हैं। धीरे-धीरे लोगोंको पुराने चालके गद्दे छोड़ स्वास्थ्यकर गद्दे बनवाने चाहिए।

धरतीमाता

मछली जलका जीव है वह जलमें ही रह और जी सक है। पक्षीका निर्दिष्ट स्थान वायु है। वह आकाशका रा है। जब वह आराम करता है तब वह पेड़पर बैठता है, इ लिए जमींनपर तो शायद ही कभी उतरता है। (जब मैं कह रहा हूं तब मेरा लक्ष्य मुर्गी-से परदार जानवरकी ओर है) लेकिन आदमी धरतीपर चलता है।

जबतक आदमीने जूते-कपडे नहीं पहने थे तबतक वह बैठा होता था या चलता, दोनों ही हालतोंमें पृथ्वीके सीधे संपर्कमें रहता था।

पृथ्वी और मनुष्यके संबंधमें उस वक्त किसी प्रकार भी अड़चन नहीं पडती थी।

प्रकृति यह चाहती है कि उसका और मनुष्यका यह निकट संबंध अब भी बना रहे। प्रकृतिकी इस इच्छाको एक पवित्र एवं अलंघ्य नियमकी तरह समझना चाहिए जिसे तोडनेपर हमेशा दंड मिलता है।

यह जानकारी मुझे अधिक-से-अधिक प्रकृतिकी ओर लौटने तथा अपने और अपने साथियोंके लाभके लिए उसके नियमोंको गहराइसे समझनेकी अटूट एवं अथक कोशिशके सिल-सिलेमें हुई और मुझे आशा है कि लोगोंके लिए यह जानकारी कामकी होगी। मुझे इसका अनुभव साफ-साफ हुआ है कि कमरे अथवा तख्तोंपर नंगे पैर टहलना उतना पुरअसर शक्ति एवं उत्साहवर्धक नहीं है जितना खुली धरतीपर टहलना, चाहे उसपरकी धूल और घास बिल्कुल सूखी ही क्यों न हो। वनवासियों एवं वनमें काम करनेवाले मजदूरोंसे बात होनेपर उन्होंने मुझे विश्वासके साथ कहा है कि बेंच अथवा और किसी चीजपर सोनेसे पृथ्वीपर सोना उनके अधिक अनुकूल पड़ता है एवं इससे उन्हें अधिक शक्ति भी मिलती है।

पशु और मनुष्य दोनों ही पौधोंकी तरह पृथ्वीके प्राणी है। उनके विकासमें उनका पृथ्वीसे संबंध छूट गया और वह स्नायु-युक्त चलने-फिरने लगे। पर पौधोंकी तरह पशुओं और मनुष्य-पर प्रकृतिके नियम समान रूपसे लागू हैं। उन्हें शारीरिक

शक्ति एवं प्राणशक्ति अब भी पृथ्वीसे ही मिलती है।

इस जानकारीके बाद मैंने नंगे पांव पृथ्वीपर चलनेको अधिक महत्त्व दिया और मुझे नंगे पांव चलनेका चिकित्सक गुण ज्यादा-से-ज्यादा समझमें आने लगा। फिर मैं यह सोचने लगा कि मनुष्य धरतीसे और अधिक लाभ किस प्रकार ले सकता है। मैंने पहला काम यह किया कि रोगियोंका चारपाईपर सोना बंद करा दिया और उन्हें खुले आसमानके नीचे अथवा वायु एवं प्रकाशपूर्ण झोंपड़ोंमें जमीनपर पुआल या गद्दा बिछाकर सुलाने लगा। इस प्रकारके सोनेके समय वे धरतीके कुछ अधिक नजदीक आए। इससे प्रत्यक्ष लाभ मालूम हुआ, नींद ज्यादा ताजगी और आनंद देनेवाली हुई।

पर जल्दी ही कुछ रोगी बिल्कुल नंगे ही मुलायम घासपर पुआल ओढ़कर सोने लगे। वे सभी सोनेमें पृथ्वीसे मिले लाभका वर्णन उत्साहपूर्ण शब्दोंमें करते। वे लोग जो कुछ कहते, उससे ज्ञात होता कि यदि रोगी पृथ्वीपर सोना शुरू कर दें तो उन्हें सभी रोग, खास तौरसे आजके प्रचलित कोढियों स्नायु-संबंधी रोगोंमेंसे किसीका कोई डर न रहे। रातको सोनेमें मनुष्यपर जो पृथ्वीकी शक्तियोंका प्रभाव पड़ता है वह निस्संदेह आश्चर्यकारी है। जिसने इसका कभी अनुभव नहीं किया है उसकी समझमें यह बात आनी कठिन है कि मनुष्य-शरीरपर इसका सोनेमें कितना तरोताजा करनेवाला और शक्ति एवं जीवनदायक असर होता है।

रोगीकी पाचन-क्रियाको सुधारना एवं उसे शक्तिशाली बनाना प्रत्येक चिकित्सा-पद्धतिका पहला काम है। प्राकृतिक-नहान एवं वायु और प्रकाश-स्नानसे ठीक समयपर और साफ

होने लगता है पर पाचन-क्रियाको ठीक करनेके लिए जमीन-पर सोने-सा दूसरा उपाय नहीं है।

धरतीपर सोनेसे शरीरकी सुस्ती जाती, चेतना जगती और आँतें सडाध एव पुराने कडे मलको अच्छी तरह निकाल पाती हैं। फलत शरीर नवजीवन और नइ शक्तिका अनुभव करता है।

नगे पाव चलनेमें अथवा प्रकाश और वायु-स्नान लेते वक्त जमीनपर नगे लेटनेमें पृथ्वीकी चिकित्सक शक्तिका वह अनुभव नहीं होता जो रातको पृथ्वीपर सोनेसे होता है। पता नहीं यह विशेष लाभ सोते वक्त शरीरके बिल्कुल निश्चेष्ट रहनसे मिलता है अथवा पृथ्वीकी शक्तिप्रदायिनी क्रिया रातको खास तौरसे तेज हो जाती है।

प्राय सभी पशु, विशेषतया खरहे और हिरन जब अपने लिए सोनेका स्थान बनाते हैं, पत्ती एव लकडीके टुकडे वगैरह जमीन परसे हटा देते हैं। वे ऐसा निश्चय ही इसलिए करते हैं ताकि वे पृथ्वीके सीधे सपकर्में रह सकें और पृथ्वीकी शक्ति उनपर प्रभाव डाल सके। कोइ भी पशु घास, पत्ती, लकडी वगैरह इकट्ठी कर उनपर नहीं सोता, इन सब चीजोंको तो पक्षी ही अडा सेनेके सुभीतेके लिए गरम रहनेवाला घोंसला बनानेके लिए इकट्ठा करता है। एक खास तौरसे ध्यान देने योग्य बात यह है कि जगलके पशु जहा सोते या आराम करते हैं उस जगहसे लकडी डठल पत्ती वगैरह और यहातक कि यदि हो तो बरफ भी हटाकर साफ कर लेते हैं। कभी-कभी वे जमीनपर लोट भी लगाते हैं। जमनीके शिकारी उनकी इस आदतको 'गदलोट' कहते हैं।

लोमड़ी और बिज्जू अपनी मांदमें बहुत-सी चीज घसीट ले जाते हैं पर अपने सोनेकी जगह बिल्कुल साफ रखते हैं। वे हमेशा साफ-सुथरी जमीनपर सोते हैं। जगली सूअर मिल या पेड़की पत्तियोंके ढेरमें घुसकर या झाड़ियोंमें छिपकर सोना पसद करते हैं पर जहा सोते हैं उसपर कोइ चीज नहीं होती। कभी-कभी तो अपने शरीरका कुछ भाग वे जमीनमें गड़ा तक देते हैं।

एक बार मुझे एक बीमार पालतू बाजकी गतिविधिका अध्ययन करनेका मौका मिला था। उसे उसके गद पिंजड़े बाहर निकाल दिया गया था और मेरे कहनेपर लोगोंने उसे बिल्कुल अकेला छोड़ दिया था कि वह जहां चाहे जा सके। वह तरकारीके खेतमें गया और करमकल्लेकी क्यारीमें जहां जमीन मुलायम थी कुछ जमीन खुरची और अपनेको उसमें थोड़ा धसाकर चुपचाप लेटा रहा। कुछ दिनों बाद वह वापस लौट आया और हम लोगोंने देखा कि वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। जबतक वह बीमार रहा उसने कुछ भी नहीं खाया। इस प्रकार पशु गोकि अपने साधारण जीवनमें चलते दौड़ते वक्त पृथ्वीके सपकर्में रहता ह फिर भी आराम करते वक्त और बीमारीमें पृथ्वीके अधिक नजदीक और सीधे सपकर्में आनेकी कोशिश करता है।

जबतक विछावन रहेंगे उनके सुधारकी बात चलती रहेगी और जबतक मनुष्य प्रकृतिद्वारा निर्मित विछावनपर नहीं सोवेगा विछावनकी अपूर्णता भी मनुष्यके सामने आती रहेगी। प्रकृतिने अपने इस बिछावनमें वह जादूभरी शक्ति भर दी है कि उसके सपकर्में आनेपर मनुष्यको अपने जीवनमें अधिकाधिक आनदका अनुभव होता ह।

पहले मनुष्य प्रकृतिके नेतृत्वमें, पापरहित, पवित्रतम एव आनदसे परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। वह अबाध रूपसे उस स्वर्गीय सुखका उपभोग करता रहता था जिसकी कल्पना प्रत्येक सुसभ्य जातिकी स्वगसबधी कल्पनाके अतगत की गइ है। पर स्वगके सपकी तरह तकने पृथ्वीपर हमला किया और लोगोंको बहकाया कि वे खुदाके हुक्मों—प्रकृतिके नियमो—जिनकी अनुभूति हमें ज्ञानेंद्रियों-स्पर्शेंद्रियों आदि नसर्गिक वृत्ति एव विवेकद्वारा होती ह—की अवहेलना कर अपनी इच्छानुसार मौज और खुशीमें रत रहेंगे तभी उनके शरीर मन और आत्मा, तीनोंको पूण आनद मिलेगा।

जैसा कि मैंने 'प्रकृतिके बोल पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि तकके दुरुपयोग एव अपमानके फल-स्वरूप सपके बच्चे विज्ञानका ज म हुआ। उसने औषध-विज्ञानको ही नहीं अध्यापनविद्या धम-शास्त्र, दशन एव न्याय-शास्त्रको भी पैदा किया। मनुष्यको सुखी एव समृद्ध बनानेवाले प्रकृतिके नियमोंके पालनकी राय विज्ञान कभी नहीं देता। औषध विज्ञान तो यह घोषणा करता है कि यदि मनुष्य प्रकृतिके अनुकूल जीवन व्यतीत करेगा तो उसका अहित हुए बिना न रहेगा। यह कहता है कि प्राकृतिक भोजन फल आदि स मनुष्यको पूरी शक्ति तो मिलती ही नहीं उसका स्वास्थ्य नष्ट होता है और मनुष्यका प्रकाश और वायुके सपकमें अपनेको लाना खतरेसे खाली नही ह। (इससे सर्दी वगरह हो जाती है)। उसकी यह भी अवमानना है कि प्राकृतिक भोजन, जीवन व्यतीतकर हम जिंदगीके मजे कम कर देंगे। इसके बाद विज्ञान, शरीर विज्ञान एव और भी प्रयोगशालामें किए गये

अनेक प्रकारके अन्वेषणोंके आधारपर अप्राकृतिक भोजनका एक नुस्खा तैयार करता है, जिसके लिए वह कहता है कि इसे खाते ही शक्ति मिलती है और वह स्वादिष्ट लगता है। इस प्रकार विज्ञान नैसर्गिक वृत्ति, स्वाद (सही मानोंमें) एव सदसद् विवेकका कोइ खयाल न करनेवाले स्वास्थ्य-नियमोंका निर्माण करता है। विज्ञानकी दूसरी शाखाए अध्यापन, धर्म, दमन न्यायशास्त्र भी अब ऐसे नियम बनावेंगे जिनमें मनुष्यको प्रकृतिके सपकर्में आनेसे फूक-फूककर बचाया जायगा और कहा जायगा कि इनपर चलकर मनुष्य अच्छा और भला बनेगा तथा उसे सुख और सतोष प्राप्त होगा।

इस प्रकार विज्ञानके फेरमें पड़कर मनुष्यने जूते पहने और पृथ्वीकी सुखद शय्याको छोडकर पलगपर लेटा। उसने कल्पना की कि इनके द्वारा उसे वह हिफाजत, आराम और आनद मिल रहा है जो प्रकृति उसे नहीं देती थी। पर तर्कके इस झूठे लुभावने और विज्ञानकी चमकीली सिखावनके फेरमें पड़कर मनुष्यको न आराम मिला न आनद, न स्वास्थ्य न खुशी, न साधुता, न सौजन्य, पर उसकी आशाके विपरीत मिले उसे रोग और पीडा, ऊब और घबराहट, पाप और अपराध, दुख और निराशा। प्रकृतिके विरुद्ध चलनेवालेसे प्रकृति इसी तरहका बदला लेती है। कविवर गेटेने ठीक ही कहा है:

"इस प्रकारके जीवनमें मनुष्यको शायद कुछ अधिक सतोष मिल जाय, पर जब उसने स्वर्गीय प्रकाशसे पथ प्रदर्शन लेना छोड़कर तर्कका पल्ला पकड़ा तो उसने अपनेको अधिक शक्तिशाली अनुभव किया—पशुसे भी अधिक शक्तिशाली और फिर उसमें पशु जितना भी विवेक नहीं रहा।"

तक एक उच्च प्रतिमा है और मनुष्यके लिए इश्वरकी विशेष देन है। पर मनुष्य इसका सदुपयोग नहीं कर सका और यह शक्ति उसके लिए आसुरी फदा और दुखोंका कारण बन गई।

आत्मा और शरीरका सच्चा और पूर्ण स्वास्थ्य जिसमें शारीरिक शक्ति, मानसिक स्वच्छता, आत्मानद सम्मिलित है बिना एक बार फिर अपनेको पृथ्वीके सीधे सपर्कमें—चलते-फिरते वक्त और खास तौरसे आराम करते वक्त—लाए बगैर मनुष्यको और किसी तरह मिलनेको नहीं है।

यह उम्मीद तो नहीं की जा सकती कि मनुष्य एकदम कपडा पहनना ही छोड देगा और दिनभर नगा घूमेगा। अभी इस रास्तेकी अनेक कठिनाइयोंको उसे सुलझाना है, और न यही उम्मीद की जा सकती है कि वह एकाएक सर्वथा प्राकृतिक भोजनको अपना लेगा और केवल फल-मेवेका ही आहार ग्रहण करेगा। पर इतना तो यह कर ही सकता है कि हरदम नगे पाव रहे। इस चलनसे जाडेमें भी कोई तकलीफ नहीं होगी। वरन् लोग सुखी और आनदका अनुभव करेंगे। नगे पाव चलना तपस्या नहीं है, इससे जीवनका आनद घटता नहीं बढ़ता है। मनुष्य जब नगे पाव चलना शुरू करता है, धरतीको अपना बेटा वापस मिल जाता है। मनुष्यपर नूतन स्वास्थ्य और सच्ची खुशीकी वर्षा होने लगती है। आजके रोगी, दुखी, पापी, अन्यायी मनुष्यका पुनर्निर्माण भी होगा, वह जो है उससे दूसरा तभी बनेगा जब वह नगे पाव चलना रोज कुछ मिनट या चद घटोंके लिए ही नहीं पर हमेशाके लिए सीख लेगा।

वृक्षमें जो काम जडें करती है हमारे शरीरमें वही काम

कुछ अशोंमें पर करते हैं। उनके द्वारा पृथ्वी हममें शक्ति और प्राणोंका सचार करती है।

ईसा नगे पांव चलनेको बहुत महत्त्व देते थे। वे स्वय नगे पांव चलते थे और उन्होंने अपने शिष्योंको आज्ञा दी थी "तू जूतोंका बोझ मत घसीट!"

वे भिक्षु जो नगे पांव चला करते थे, ठीक ही समझते थे कि ईसाका प्रतिपादित आनद और मुक्ति तबतक मनुष्यको नहीं मिलेगी जबतक वह जीवनमें उस प्राकृतिक पद्धतिको नहीं अपनाएगा जिसे ईश्वरने अपने भक्तोंके जीवनद्वारा सार ईसाई-ससारके सामने उपस्थित की है और जिनकी आज सर्वथा अवहेलना की जाती है।

प्रत्येक आरोग्य-मदिरका यह पहला नियम होना चाहिए कि उसके अधिवासी हमेशा नगे पैर रहें, चप्पल भी न पहनें।

तब कुछ दिन नगे रहनेपर प्रकृतिके दिये हमारे पैरोंमें अब खून दौड़ने लगेगा और इससे जब उनकी आकृति स्वाभाविक हो जायगी, लोग घिसे, भौंडे, पेबद लगे जूतोंसे खुले पैरोंको अधिक सुदर और सौंदर्यसवर्धक मानने लगेंगे और तब नगे पांव चलनेका जिसका प्रतिपादन ईसाने अपने उपदेश और उदाहरणद्वारा किया है, न मजाक उड़ाया जायगा न इसे ओछी दृष्टिसे देखा जायगा। घृणास्पद जूतोंको, जो अक्सर पैरोंको दबाते-काटते हैं और जिसका कष्ट मनुष्यके मुखपर प्रतिबिंबित होता रहता है, प्रकृतिकी कलाकृति मनुष्यके पैरोंसे सुदर समझना प्रकृतिका अपमान करना है।

यदि धरतीपर सोनेका महत्त्व एक बार पूरी तरह समझ लिया जाय और इसका चलन चला दिया जाय तो मनुष्य-जाति

रोगी शरीर और विकृत मनके भवर-जालसे निकल जाय। इस स्थितिसे मुक्ति दिलानेमें प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश-स्नान, प्राकृतिक भोजन आदि भी बडे सहायक होंगे।

नये-पुराने सभी प्रकारके रोगोंमें धरतीपर सोनेका चमत्कारिक गुण शीघ्र देखनेको मिलता है।

हजरत इसा गदी हवा, विलास, कापुरुषता और नतिक पतनके अधिपति शहरोंसे हमेशा दूर रहते थे। वे अधिकतर रेगिस्तानमें या पहाडोपर रहते थे। वे अपने उपदेश अधिकतर इन्हीं स्थानोंके वासियोंको दिया करते थे और यदि किसी दिन वे यरूसलमके मदिरमें उपदेश करते थे तो अपनी रात वे आलिबस पहाडपर ही विताते थे जहां निश्चय ही वे खुली धरतीपर सोते थे। प्रकृतिकी गोदमें विश्राम करते वक्त उनके शरीरपर ओढ़नेके नामपर केवल एक ढीला-ढाला लबादा ही रहता था।

धरतीपर सोना प्रारभ करनेवालोको दूबसे ढकी बढ़िया जगह चुननी चाहिए, यदि ऐसी जगह न मिले तो जमीनपर चटाई बिछाकर सोना चाहिए। इसमें तो कोइ सदेह नहीं कि चटाइ पृथ्वीकी शक्तिको बहुत कुछ रोक लेगी। पुवाल ऊन या रूइसे भरे गद्दे या कबल-दरीपर सोनेकी तो बात ही नहीं सोचनी चाहिए। इनका उपयोग पृथ्वीसे सबध होनेमें बहुत बाधा पहुचाता ह। तकियेकी भी जरूरत नहीं ह। ठडी ताजगी प्रदान करनेवाली धरतीपर सिर रखकर सोना विशेष लाभदायक है।

यदि धरतीपर सोनेकी पहली रात कुछ तकलीफदेह साबित हो तो निराश होनेकी जरूरत नहीं ह।

मैंने बराबर यह देखा ह कि दो चार दिनके बाद ही रोगीको

उसकी धरतीकी शय्या अति सुखद प्रतीत होने लगती है। तब वह पृथ्वीपर कोई चीज भी बिछाकर सोना कभी स्वीकार नहीं करता। बरसातकी रातमें ओढ़नेकी चीजोंको भीगने से बचानेके लिए मैं चाहता था कि रोगी अपनी झोंपड़ियोंमें सोवें पर वे अपनी पृथ्वी-शय्या छोड़नेके लिए बड़ी कठिनाईसे तैयार होते थे। कुछ ही दिन धरतीपर सो लेनेके बाद उसकी कठोरताका भी कोई अनुभव नहीं होता। इससे भी डरनेकी जरूरत नहीं है कि जाड़ेकी रातोंमें जब ओढ़कर धरतीपर नंगे बदन सोवेंगे तो धरती बड़ी ठंडी लगेगी। बहुतसे लोगोंको बिछावनमें सोनेकी अपेक्षा जमीनपर सोनेसे पसीना जल्द आता है। पर धरतीपर सोना आरंभ करनेवालोंको और ऐसे लोगोंको भी जिन्होंने प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर अपने शरीरकी गर्मीको नहीं बढ़ा लिया है, ग्रीष्म एवं वसंतकी सी ही ऋतुओंमें खुली धरतीपर खुले बदन सोना चाहिए और जरूरत हो तो कुछ ओढ़कर सोना चाहिए।

जब आदमी धरतीपर सोना शुरू करता है तब शुरूमें पहली रातको उसे अक्सर वैसी अच्छी नींद नहीं आती जैसी नींद उसे अपने बिछावनमें आती थी। इसके बाद सबको और कभी-कभी निद्राभावके पुराने और बुरे रोगियोंको भी खूब नींद आती है और इससे उन्हें अपूर्व ताजगी और शक्ति मिलती है। पर यह गहरी नींद आनेकी अवस्था बहुत दिनोंतक नहीं चलती। अक्सर कुछ दिन बाद लोगोंको बहुत थोड़ी नींद आती है। यहांतक कि उन्हें एक-दो घंटे ही सोनेकी जरूरत पड़ती है और ऐसे लोगोंको जितनी ही कम नींद आती है दूसरे दिन वे उतनी ही चैतन्यता ताजगी एवं शक्तिका अनुभव करते हैं।

पहले जब म स्नायुदौबल्यका बुरी तरहसे शिकार था, यदि मुझे किसी रात नींद नहीं आती थी तो दूसरे दिन मेरी बुरी गति हो जाती थी। पर पृथ्वीपर सोना आरम करनेपर आगे चलकर मुझे हफ्तों नींद नहीं आइ, मैंने एक झपकी भी नहीं ली, पर मुझे किसी तरहके कष्ट या परेशानीका अनुभव नहीं हुआ। इसके विपरीत वे रातें अधिक आनदमय एव क्लांतिविहीन प्रतीत होती थीं और मैं उन दिनों एक अपूव ताजगीका अनुभव करता था। किसी प्रकारकी थकान या आलस्यका तो कोइ अनुभव होता ही नहीं था।' स्वतत्र प्रकृतिमें विचरण करनेवाला हमें ऐसा कोइ भी प्राणी नहीं दिखाइ देता जो मनुष्यकी तरह निद्राके वशीभूत होता है और जो रोज-रोज रातको मनुष्यकी तरह छ से आठ घटेतक या अधिक भी मृत्युकी-सी अवस्थामें व्यतीत करता ह'। जितने घटे मनुष्य सोता ह उतने घटे उसकी जिंदगी-

---

'ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रकृतिके निकट पहुचता जायगा रोगावस्थाकी सम क्लिका क्लांति उससे दूर होती जायगी। मनुष्यका प्रत्येक क्षण पशुके मुकाबलेमें प्रकृत्या अधिक आनंद और प्रसन्नतामें बीतना चाहिए, क्योंकि उसे तर्क और, कल्पना मिली है, पशु इससे विहीन है। इस प्रतिभाके बलपर कविता-जगतमें विचरण कर सकता है। उसे जगतमें क्लांतिके लिए स्थान कहां? क्लांति जड़ताकी प्रतीक है रोगावस्थाकी बहन है।

'कुछ पशु आठेमर सोते रहते हैं। उनस मनुष्यकी तुलना नहीं की जा सकती। उनकी बनावट कुछ ऐसी होती ह कि ठंडककी वजहसे उनके शरीरमें रक्त-परिचालन बहुत धीमा होता है और पाचनक्रियाका काम बिल्कुल रुक जाता है अत ऐसे वक्त पशुओंको भोजनकी बहुत थोड़ी या बिल्कुल जरूरत नहीं होती।

से मिट ही जाते हैं। पशु प्राय रातभर घूमते रहते हैं। वे कभी-कभी आराम जरूर करते ह, खास तौरसे दिनमें। जब वे आराम करते हैं तब कभी-कभी ऐसा मालूम होता ह जसे उनके सभी मानसिक एव शारीरिक काय बद हो गये हैं पर वे उस तरह नहीं सोते हैं जिस तरह आदमी सोता ह। मनुष्यकी तरह तो घरेलू पशु भी नहीं सोता। घोड़ेको ही लीजिए, वह कठिन परिश्रमके बाद ही कुछ घटे गहरी नींदमें सोता है। गाकि पशु सोते नहीं हैं पर उनकी ताजगी और चमक बनी रहती है। वे रातभर सोनेवाले मनुष्यकी तरह न कभी जम्हाइ लेते हैं और न उनके मुहपर कभी उनींदापन और थकान ही दिखाइ देती ह। शरीरकी चमक बनी रहे, सुस्ती कभी न घेरने पावे इसक लिए हमें प्रकृतिसे अधिक संपक स्थापित करना चाहिए, जिससे धीरे-धीरे हमें सोनेकी बहुत कम जरूरत रह जाय और समयत आगे चलकर इसकी जरूरत बिल्कुल खतम हो जाय। यहां आराम करने और सोनेके भेदको समझ लेना चाहिए। कायक बाद विराम यह प्रकृतिका नियम ह। आजके मनुष्यके शरीर और मनको उसकी आंतरिक अशांति और उद्विग्नताके कारण कभी पूण विश्राम नहीं मिलता। ज्यों-ज्यों उसका स्वास्थ्य सुधरता जायगा वह सुदरतम आनद, मधुरतम प्रसन्नता प्रदान करनेवाले विश्रामका अधिकारी होता जायगा।

इस प्रकारके विश्राममें जड़ता नहीं होती, न मस्तिष्ककी मरणावस्थाकी-सी दशा।

पशु पूर्ण विश्रामकी अवस्थामें सब कुछ सुनते और करते हैं। प्राकृतिक भोजन ग्रहण करनेवाले और प्राकृतिक स्नान करनेवालेको बहुत कम नींदकी जरूरत होती है।

जिस प्रकार सूखी धरतीके बजाय कम्बलपर सोकर भी धूप-नहान लेनेवालेको नींद नहीं आती उसी प्रकार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाला यदि नंगा होकर अधिक गरमीके दिनोंमें भी धरतीके बजाय बिछावनपर सोवे तो भी निद्रा उसपर अधिकार नहीं कर पाती। जितना ही अधिक हम अपनेको विशेषत धरतीपर सोकर एव अन्य प्राकृतिक नियमोंद्वारा प्रकृतिके सपर्कमें लावेंगे उतनी ही कम हमें नींदकी जरूरत रहेगी और बल तथा ताजगीके लिए नींदकी अपेक्षा।

यदि किसीको सुलाना हो तो किसी तरकीबसे उसके स्नायुओंमें ढीलापन लानेकी जरूरत होती है यह अवस्था ब्रोमाइड, मार्फिया, अफीमके विषोंद्वारा उत्पन्न की जाती है और इतने जोरके झटकेसे एव इतनी गहराइसे की जाती है कि बादमें स्वास्थ्यपर उसका बुरा असर साफ-साफ प्रकट होता है। शराब पीनेसे, अप्राकृतिक भोजन करनेसे, गरम कमरेमें सोनेसे, गरम कपडे ओढकर सोनेसे, मोटे गद्देदार बिछावनमें सोनेसे भी नींद आती है और इस नींदको लोग शक्तिदायक और लाभदायक समझते हैं। पर यह नींद भी इन बाहरी उपकरणोद्वारा शरीरमें ढीलापन उत्पन्न हो जानेके कारण ही आती है और निश्चय ही शरीरको नुकसान पहुचाती है पर वह हानि इतनी अधिक नहीं होती कि उसके लक्षण साफ-साफ दिखाइ दे सकें।

फिर भी लोग सोकर उठनेपर एक प्रकारकी घबराहट और भयका अनुभव करते ही हैं। पर जब लोग धरतीपर सोने लगते हैं तब उन्हें नींद थोडी ही क्यों न आए या न भी आए तो भी सोकर उठनेपर उन्हें कोइ अप्रिय एव कष्टकर अनुभव नहीं होता।

आजके कृत्रिम जीवन, स्नायविक उत्तेजना, गरम बिछौनेके कारण जो लोग स्नायविक दौर्बल्यके अनेक रोगियोंकी तरह अपने शरीरको ढीला नहीं कर पाते एवं जिन्हें अच्छी तरह देरतक नींद नहीं आती उनकी दशा चिंतनीय समझी जानी चाहिए।

जो लोग शराब पीते हैं एवं दूसरे अप्राकृतिक खाद्योंका उपयोग करते हैं एवं अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, गरम कपड़े आदि पहनते हैं और जिन्हें धरतीपर सोनेकी आदत नहीं है यदि वे थकान आनेपर अपने गरम बिछावनमें जाकर लेटते हैं तो गलती करते हैं। पहले तो ऐसे काम करना जिससे शरीर थके और फिर उस थकानसे लड़ना शरीरको तेजीसे खपाना है। उदाहरणके लिए यदि कोई अफीम या मार्फिया खा ले और इससे जो नींद आवे उससे लड़े तो शरीरपर इन विषोंका असर ज्यादा बुरा होगा और नींदसे वह जीत भी न सकेगा, वह उसे जरूर धर दबावेगी।

मैंने निद्रासंबंधी अपने जो विचार यहां प्रकट किए हैं वे केवल यह दिखलानेके लिए प्रकट नहीं किए हैं कि मैं प्रचलित विचारोंसे विपरीत सबसे भिन्न विचार रखता हूं और न इस आशासे किए हैं कि लोग उन्हें पढ़कर मुझे वाहवाही देंगे या यदि मेरे विचार उन्हें असुविधाजनक और भारस्वरूप लगें तो कम-से-कम मैं उनके कोप और घृणाका भाजन बनूंगा। मेरी इच्छा केवल इतना ही बतानेकी है कि यदि कोई सज्जन खुली धरतीपर नंगे सोनेका प्रयोग—संभवतः गरमीकी किसी सुंदर रात्रिमें करें और उन्हें नींद कम आवे तो वे पस्त हिम्मत न हों और इस सर्वथा प्राकृतिक रीतिका अनुसरण करनेसे उनके स्वास्थ्य और शरीरको जो अपूर्व लाभ मिलनेवाला है उससे वंचित न रहें। यदि ये प्रयोगकर्ता बीचमें ही अपना योग छोड़ बैठें तो वे जान लें कि किसी शराबकी भट्ठीमें घुलाई

औषधि या किसी मरीज-दिमागमें पदा हुए रसायनसे महरूम न रह जाएंगे, वरन् एक ऐसी प्राकृतिक महोपधिके अपनेको अनधिकारी ठहरावेंगे जिसे प्रकृति स्वय अपने हाथों प्रदान करती है और जिसकी अनुभूति स्वास्थ्यकी सच्ची नियन्त्रिणी एव पथप्रदर्शिका नैसर्गिक वृत्तिद्वारा होती है।

जिन लोगोंने नगे पैर टहलनेका इरादा पक्के तौरसे कर लिया ह वे इसकी चिंता न करें कि वे कहा टहलेंगे। खेत और खलिहान जगल और वन काफी लबी दूरीमें फैले हुए ह जहां कोइ भी टहल सकता है। आजके लोगोंके दिमागोंसे रूढ़ियादिता खतम हो रही ह जिससे वे नइ चीजें देखनेके आदी होते जा रहे ह। अत नगे पाव टहलनेको लोग बहुत विचित्र चीज नही मानते और नगे पांव टहलनेवालोंको न चिढाते हैं न उनका मजाक ही उड़ाते हैं।

लोग यह भी पूछ सकते हैं कि रातको खुली धरतीपर खुले वदन सोनेके लिए अपना कवल और ओढ़ना लेकर कहां जाए? प्राकृतिक चिकित्सालयोंमें इसकी सुविधा रहती ह। वहां पार्कोंमें ऊंचे-ऊचे तख्ते खड़े करके, स्त्री और पुरुषोंके लिए अलग जगहें बना दी जाती हैं जिनमें वायु एव प्रकाशपूर्ण झोपड़े भी होते हैं ताकि रोगी इच्छानुसार खुली जमीनपर या जमीनपर (पुवाल या पत्तसे भरा) गद्दा बिछाकर सो सके और वायु और प्रकाशस्नान कर सके।

ऐसी जगहोंमें प्राकृतिक स्नानकी भी सुविधा अवश्य होनी चाहिए। वहां इस स्नानके लिए छोटी-छोटी कोठरियां बनवा दी जा सकती हैं।

मेरी यद्यपि यह मशा नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति मेरे विचारोंसे प्रेरित होकर समाजमें गहराइतक जड पाइ हुइ पुरानी रूढ़ियोंसे,

जो अकसर नुकसानदेह ही होती ह अपना नाता तोड ले और जिनके साथ अभीतक वह भुगतता और सहता रहा है, जिनके साथ अब भी उसका भाइ चारे और प्रेमका सबध है, उनके विरोधका भाजन बने एव उनसे खुली लडाइ ठान बैठे।

जहांतक बन सके हमें ऐसे खुले विद्रोहसे बचना चाहिए पर ऐसा न हो कि हम जिस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए कटिबद्ध हैं उस ही हतोत्साह होकर छोड बैठें। ऐसा करना अपमानजनक एव भीरुताका लक्षण होगा। स्वास्थ्य प्राप्तिका हमें सदा ध्यान रहना चाहिए। स्वास्थ्यपर ही सारी दुनियाकी खुशी निभर ह।

समाजके स्वास्थ्यकी देख-रेखके लिए नियत सरकारी अधि कारियोंसे भी हमें न भिडना चाहिए, और न ऐसे कानूनोंको ही तोडना चाहिए, गो वे गलत ही क्यों न ठहरते हों, जिन्हें साधारण जनताके मतके आधारपर चुने प्रतिनिधियोंने बनाया है।

पर प्रत्येक नागरिकको यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कानून (टीका आदि लगानेके कानून)से लागोंका कम-से-कम अहित हो और उन्हें इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि एस कानून समय पाकर बदल दिए जाय या मिटा दिये जाय।

सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवालोंका मजाक उडाने और उनकी राहमें रोडे डालनेकी लोगोंकी इच्छा होनेके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें अपने अस्वाभाविक जीवनका एव उससे आनेवाली विपत्तियोंका नसर्गिक रूपसे ज्ञान रहता ह और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वालोंके हुए लाभको देखकर उन्हें ईर्ष्या होती रहती ह। दूसर प्राकृतिक भोजन एव जीवनकी अस्वाभाविक रीतिसे, जिनका मनुष्य मादक द्रव्यों एव पापाचारोंकी तरह गुलाम बना रहता है,

मुक्ति पा लेनेके लिए न उसमें काफी मानसिक बल होता है, न इसके लिए उसे प्रोत्साहन अथवा मौका ही मिलता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें इस सही रास्तेका समुचित ज्ञान भी नहीं होता कि वे इसका अनुसरण कर सकें।

पर अब लोग इस सत्यको अधिकाधिक साफ तौरसे पहचानने लगेंगे और शांति एवं बुद्धिमत्तापूर्वक उसे इस तरह अपनाएंगे कि लोग उनसे कम-से-कम चिढ़ें या भड़कें, तो इसकी जड़ उतनी ही जमती जायगी और इसके मार्गमें कांटे बिछानेवालोंकी संख्या भी कम होती जायगी। और अब तो मालूम होता है कि रास्ता बहुत कुछ साफ हो भी गया है।

तब पृथ्वीके आनंद और आरामका दरवाजा जिस प्रकार आज यह मेंढक और चूहे, खरहे और साही, हिरन और बारहसिंघे, लोमड़ी और बिज्जू आदि सभी जीवोंके लिए खुला है उसी प्रकार ईश्वरके प्रियपात्र मनुष्यको भी धरतीमाताके जादूभरे संसर्गमें रहकर आराम करनेकी सुविधा मिल जायगी, जिससे उसे पृथ्वीका सच्चा आनंद मिलेगा एवं उसके स्वास्थ्यको अपरिमेय लाभ प्राप्त होगा।

कुछ ही दिन हुए जब कुछ स्थानोंमें स्वास्थ्योन्नति एवं रोग-निवारणके लिए कुछ लोगोंका बरफपर भी नंगे पांव टहलना आरंभ करनेका समाचार सुना गया था। साधारणतः सुननेवालोंने तब इसका मजाक ही उड़ाया था।

लोग तो पहले पांवोंको, जिनका हमेशासे खास खयाल रखा जाता रहा है एवं जिन्हें हर समय गरम रखनेका खास इंतजाम किया जाता रहा है, ठंडी हवा, खुरदरी धरती एवं शीतकाल ही तो बरफके संपर्कमें लानेके विचारमात्रसे झिझकते थे। क्यों न

झिझकते ? हमेशासे जो दादी कहती आई है "बेटा ! पांवोंको हमेशा गरम रखो।" और डाक्टर साहब पावोंको ठंडे पानीसे बचानेकी सीख जो देते आए है। इस समाचारके बाद कुछ लोगोंने नंगे पांव टहलनेकी आजमाइश की और जाना कि नंगे पांव टहलना स्वास्थ्यके लिए तो सब तरहसे उपयोगी है ही, बढ़िया कसरत भी है। और तभीसे इस सर्वथा प्राकृतिक उपचारके संबंधमें लोगोंके विचारोंमें बड़ा परिवर्तन हुआ है।

इसी तरह धरतीपर सोनेका भी चलन चलेगा। कुछ दिन तक यह चलन नंगे पांव चलनेसे बहुत अधिक कठोर एवं अमानुषीय समझा जायगा। पर जब लोग इसका प्रयोग कर देखेंगे तब इसके रोग निवारणके विशेष गुणसे परिचित हो जायंगे और यह भी जान जायंगे कि यह चाल नंगे पांव चलनेकी तरह ही निरापद है।

सूर्यकिरणें रोग-निवारणमें बड़ी लाभकर सिद्ध हुई हैं। यदि रोगी धूपमें टहलनेके बजाय लेटकर धूप ले तो लाभ बहुत अधिक होता है। इसी तरह धरतीपर लेटनेपर धरतीका असर भी टहलते समयसे ज्यादा सीधा पड़ता है। धूपकी तरह धरती भी शरीरमें रोग निवारणकी क्रिया प्रारंभ कर देती है, पर यदि टहलनेमें या और किसी कार्यमें शक्तिका व्यय हो रहा हो तो धूप और धरतीसे शक्ति मिलती रहनेपर भी शरीर अपने शोधनका काय पूरी तेजीसे नहीं कर पाता।

जो भी हो, प्रचलित विचारोंका खयाल करके प्रत्येक रोगीको और खास तौरसे चिकित्सालयके निवासियोंको खुली धरतीपर आराम करने या सोनेकी राय देते वक्त बहुत सोच-समझसे काम लेना चाहिए। इसके चुनावका सारा भार रोगीपर ही छोड़ना चाहिए। इक्के-दुक्के आदमी जो धरतीपर सोकर लाभ उठायेंगे

उन्हें देखकर और लोग भी उनका अनुसरण करेंगे। शुरूमें एक रात जमीनपर और दूसरी रात बिछौनेपर सोना काफी होगा।

जब मैंने अपने चिकित्सालयोंमें धरतीपर सोनेका चलन चलाया तो मुझे भी अनेक वहमोंका सामना करना पड़ा। किसीको जमीनपर सोनेका प्रयोग करनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। तब कई लोगोंने एक साथ बड़े उत्साहसे धरतीपर सोना आरंभ किया और इससे प्राप्त लाभोंसे बड़े प्रसन्न हुए। फिर तो उन्होंने प्राय सभीको खुली धरतीपर सोनेके लिए राजी कर लिया। इससे प्रत्येक-को जो लाभ हुआ उसे देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता था।

जलके प्रयोग लोग प्रिसनीज, कनाइप, कूने आदिके समयसे करते आ रहे हैं। नहानेके साथ शरीरको रगड़नेकी क्रिया भी प्रचलित हो गई है, पर इनमेंसे कोई भी क्रिया पूर्णतया प्रकृतिकी बोधगम्यताके अनुसार प्रतिपादित नहीं है।

नंगे रहनेका प्रचार पहले-पहल रिक्लीने किया था। वह वायु और प्रकाशसंबंधी प्राकृतिक नियमोंको पूरी तरह नहीं समझता था और इनकी जानकारीके बगैर भी वह कुछ लोगोंको नंगे रहनेकी राय दे देता था पर इससे साधारण जनतामें इसका चलन नहीं हो सका।

पर धरतीकी शक्ति और उसके प्रयोगपर किसीका जरा भी ध्यान नहीं गया था। जब मैंने पहले-पहल इसकी चर्चा की तो लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, पर शीघ्र ही धरतीकी शक्ति लोगोंके लिए कुतूहलका विषय बन गई और हर जगह इसकी बात बड़े ध्यानसे सुनी जाने लगी।

सचमुच धरतीके रोग निवारक गुण और इससे मिलनेवाले अनेक प्रकारके लाभोंसे बढ़कर दूसरा दिलचस्प और आवश्यक

विषय है भी नहीं। इसलिए मैं इसकी चर्चा विशेष रूपसे करना चाहता हू। पृथ्वीमें इसके आदिसे ही एक शक्तिशाली प्राणका प्रवाह हो रहा है जिसपर मनुष्यके बनाव बिगाड़का कोई असर नहीं पड़ सका है। यदि मनुष्य पृथ्वीके सीधे सपर्कमें आ जाये तो पृथ्वी मनुष्यको भी अपनी इस सजीव शक्तिसे प्रवाहित करनेको तैयार रहती है।

हम पृथ्वीसे इच्छित शक्ति प्राप्त कर सकते हैं और जो जितना ही अधिक प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता है पृथ्वीसे उतनी ही अधिक शक्ति मिलती है। जब कभी मौका मिले आदमीको धरतीपर कपड़े पहनकर ही सही बैठना चाहिए। टहलते वक्त या लम्बी यात्राओंमें खुली धरतीपर बठकर या लेटकर आराम करना चाहिए। पृथ्वीकी शक्ति प्रकृत्या मनुष्यपर उसके कपड़ोंके द्वारा भी असर करती है। आप थोड़ी देरके लिए आरामसे खुली धरती पर सो जाइए, आप मेरे कथनका अनुभव कर लेंगे।

उत्तेजित मनोदशा, निरुत्साह और शोकके क्षणोंमें हिस्टीरियाका दौरा होनेपर एव शरीरमें ऐंठन चलने आदिकी दशाओं अथवा अनेक प्रकारकी रोगावस्थाओंमें मैंने धरतीपर बठने या लेटनेसे लोगोंको अकसर शीघ्रतासे शांत होते, उनका कष्ट घटते और उन्हें रोगमुक्त होते देखा है।

पृथ्वी यदि गीली हो तो हमें इसकी चिंता करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी हालतमें पृथ्वीकी रोगनिवारक शक्ति अधिक सतेज होती है जिसकी पुष्टि इस बातसे होती है कि कई लोगोंको इससे सर्दी-जुकाम हो जाता है। यह शरीरकी शुद्धि प्रारभ होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है जैसा कि अकसर लोग समझते हैं यह किसी तरह भी डरकी चीज नहीं है।

सारी प्रकृतिमें ही रातके वक्त एक निराली शक्ति प्रवाहित होती रहती है। यदि आप रात्रिके समय जंगलमें जाय तो प्रतीत होता है कि वहा संसारके मुक्त प्राण पर्यटन कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि दूर्वा दिनमें नही, रात्रिको ही बढ़ती है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि धरतीकी शक्ति रातको खास तौरसे शक्तिशाली होती है।

मैंने अपने चिकित्सालयमें बराबर ऐसी कोशिश की है जिससे लोगोंको धरतीपर सोना अधिकाधिक सुखद प्रतीत हो। अंतमें मेरे मनमें बालूके गद्दे बनवा देनेका विचार उत्पन्न हुआ। साधारण धरतीपर सोनेके बजाय इनपर सोना ज्यादा आरामदेह होता है। ये धरतीसे मुलायम होते हैं।

चारसे आठ इंच मोटी बालूकी तह सोनेके लिए काफी होती है। इसपर कोई भी पतला टाट या कपड़ा बिछाया जा सकता है। इससे पृथ्वीकी शक्ति प्राप्त करनेमें कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती और ओढ़ना भी साफ रहता है। इसमें और भी कई लाभ हो सकते हैं। सिरहानेकी ओर घासकी ऊंची पटिया-सी बनाकर तकियेका काम लिया जा सकता है।

यदि बालूका यह बिछावन खुली जगहमें लगाया जाय तो लाभ और विशेष हो, क्योंकि मनुष्यके रोग-निवारणमें आकाशका भी स्थायी प्रभाव पड़ता है। और यह प्रभाव रात्रिको अधिक शक्तिपूर्ण रहता है। तारोंभरी रातमें आकाशके महान गुंबजके नीचे जब मनुष्य सोता रहता है, यह शक्ति उसके शरीरमें जीवन और बल भरती रहती है। आकाश और धरतीकी शक्ति मिलकर एक महान शोधक शक्ति बन जाती है।

मौसम ठीक न होनेपर यह बिस्तर खुले कमरेमें या सेमम बनाना चाहिए।

काठका कोई भी लंबा और बड़ा-सा बक्स किसी कमरेमें रख दिया जा सकता है और मिट्टी बालू भरकर सोनेके काममें लाया जा सकता है।

सर्दीका भय

खुलेमें, हवामें और प्रकाशमय झोपड़ीमें, जमीनपर सोने और जाड़ेके दिनोंमें तथा खास तौरसे रोगकी हालतमें भी इस तरह रहनेकी मेरी सिफारिशने कुछ लोगोंके सामने कितने ही भयकर रोगोंकी तस्वीर खड़ी कर दी होगी। उनके रोंगटे खड़े कर दिए होंगे। वे सोचते होंगे इस तरह रहा जाय तो सर्दी, जुकाम, गठिया, मियादी बुखार, इन्फ्लुएंजा, निमोनिया आदि भले चंगेको घर दबाएंगे और रोगी इस रहन-सहनकी बदौलत दुनियासे ही कूच कर जायगा।

लोगोंके दिलोंसे ठंडके भयका भूत भगानेकी कोशिश मैं कई बार कर चुका हूं। यह जानते हुए भी कि राक्षसकी भांति इसके पांव चारों तरफ फैले हुए हैं, मैं एक बार फिर इसपर एक सांघातिक आघात करना चाहता हूं।

मनुष्यकी पाचन प्रणालीका काम देखनेसे मालूम होता है कि वह ऐसे ही खाद्यको अच्छी तरह पचा सकता है कि जिन्हें प्रकृतिने उसके लिए उपजाया है अर्थात् धरती, जिन्हें बिना खेती या बागबानीकी मददके अपने आप उपजाती है और जिन्हें आदमी उनकी

प्राकृतिक—बिना बिगड़ी हुई अवस्थामें (मेवे, झरबेर, फल एवं अन्य कई चीजें) स्वाद लेकर खा सकता है। अब यदि आदमी इन प्राकृतिक खाद्योंकी बदली हुई दशामें आगकी मददसे खाता है या ऐसे अप्राकृतिक खाद्य खाता है कि जो प्राकृतिक खाद्योंसे देखनेमें तो थोड़े बहुत मिलते हैं पर जिन्हें प्रकृतिने उसके लिए नहीं बनाया है तो उसकी पाचन प्रणाली उन्हें अशत, और सो भी कठिनाईसे ही पचा पाती है या वे बिलकुल नहीं पचते। शरीर इन अप्राकृतिक खाद्योंका उपयोग (रक्त, पेशी, अस्थि आदि बनानेमें) पूरी तरह नहीं कर सकता। उससे हमारे शरीर और मस्तिष्कको समुचित रूपसे बढ़नेके लिए उपयुक्त सामान नहीं मिलता, न पूरी शक्ति और जीवन। उस खाद्यका अवशेष आमाशयमें पड़ा रहकर, वहाँसे ठोस, तरल और वायव्य रूपोंमें शरीरके प्रत्येक अंग और उनके सिरोंतक पहुँच जाता है और कभी-कभी शरीरका रूप ही बिगाड़ देता है। यह शरीर-द्रव्य नहीं विजातीय द्रव्य है। और यह द्रव्य दूसरे तरीकों, सांस और त्वचाद्वारा टीके और इंजेक्शनके रूपमें भी शरीरमें पहुँच सकता है।

विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे अंगोंके बीचमें स्थान बना लेता है। यह अंगोंको अपनी प्रकृतिके अनुसार जल्दी या देरसे नुकसान पहुँचाता और उन्हें नष्ट कर देता है। विजातीय द्रव्य भीतर सड़ने भी लगता है उससे एक प्रकारकी गरमी निकलती है जो शरीरको नुकसान पहुँचाने और नष्ट करनेका असर रखती है। इस तरह शरीरके कभी इस अंगमें तो कभी उस अंगमें दर्द उत्पन्न होता रहता है और उनके सारे साधारण कार्योंमें व्याघात पहुँचता रहता है जिससे आगे चलकर मनुष्यकी अकालमें मृत्यु हो जाती है। इस जमानेमें लोगोंमें विजातीय द्रव्यके बनने और इकट्ठा होनेकी यह

क्रिया अधिक तेजीसे होती है। क्योंकि हम लोग भारी-भारी जूते और मोटे-मोटे कपड़े पहनते हैं शरीरपर ठंडा पानी लगनेसे तन-को बचाते हैं, पृथ्वीसे हमारा कोई सबंध नहीं रह गया है, वायु और प्रकाश हमारे तनतक नहीं पहुंच पाते, हम गंदी हवामें सांस लेते हैं। इन कारणों एवं प्रकृतिके विरुद्ध किए गए अन्य पापोंके कारण हमारी पाचनशक्ति और जीवनशक्तिके कायमें बाधा पड़ती रहती है जिससे आगे चलकर वे निकम्मी हो जाती हैं।

पर ज्यों ही मनुष्य अपने भारी जूतों और भारी कपड़ोंको अलग कर देगा और ऐसे कपड़े इस्तेमाल करेगा कि उनसे होकर पानी, प्रकाश, हवा और खास तौरसे तेज ठंडी हवा शरीरतक आसानीसे पहुंच सके त्यों ही प्रकृति हमारी जीवन-शक्तिको विजातीय द्रव्यको ढीला करने और बरजोरी शरीरसे बाहर निकालनेका काम कर काय करनेके लिए तुरत प्रेरित करेगी। जीवन शक्तिकी इस क्रियाको स्वास्थ्यकर उभार कहते हैं।

यह उभार कमजोर, दुबले और बिगड़े शरीरवालोंमें स्वभावतः बहुत जल्द और तेजीसे होता है। उन्हें प्रकृतिकी इस सहायता की आवश्यकता भी बहुत अधिक रहती है। क्योंकि ठंडे पानी प्रकाश, वायु और ठंडी जमीनके डरसे और इनसे मिलनेवाले लाभ से अपनेको बचाये रखनेकी वजहसे उनकी जीवनशक्ति बहुत मंद पड़ जाती है और उनके शरीरमें विजातीय द्रव्य बहुत अधिक मात्रामें इकट्ठा हुआ रहता है।

इससे सर्दी और जुकाम डेरे डाल देते हैं अथवा अंगों (फेफड़े स्नायु आदि) की अपना विजातीय द्रव्य निकाल डालनेकी सामर्थ्यके अनुरूप लाल बुखार चेचक (बच्चोंके रोग) हाफाहाफी मियादी बुखार, निमोनिया, इन्फ्लुएन्जा आदि तीव्र रोग होते हैं।

गरमी, हवा और ठडक लगनेके अलावा अन्य कारणोंसे, उदाहरणार्थ वायुमडलके तापमानमें यकायक परिवर्तन, अत्यधिक मानसिक उत्तेजना आदिसे भी तीव्र रोग (मियादी बुखार, हजा आदि) हो जाते हैं। कभी-कभी ये रोग शरीरमें स्वय बिना किसी बाहरी कारणके उत्पन्न हो जाते हैं।

इन तीव्र रोगोंके साथ हमेशा तीव्र ज्वर भी होता है। पहले प्राय कुछ ठडक-सी लगती है, विजातीय द्रव्यमें उत्तेजना होनेसे, अणुओंके आपसमें रगड खानेसे शरीरके अदर गरमी बढ़ जाती है इसलिए रक्त शरीरके अदरकी तरफ खिंच जाता है, शरीरका बाहरी भाग ठडा हो जाता है और रोगीको ठडक मालूम होती है। पर जल्द ही गरमीके शरीरकी त्वचातक पहुच जानेसे, शरीर गरम हो जाता है। क्योंकि इस समय परिचालित विजातीय द्रव्यको शरीर त्वचाद्वारा तीव्रतासे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है। हाफेडाफेमें गला खास तौरसे आक्रांत हो जाता है। बढ़ती हुई गरमीसे विजातीय द्रव्यका आकार बढ जाता है और वह पेटसे सिरकी ओर जाते समय गलेमें फस जाता है जिससे दम घुटकर मृत्यु हो जानेका भय उत्पन्न हो जाता है।

अब यदि हम रोगीके कमरेकी खिडकियां बद करके, प्रकृतिके चिकित्सा-साधन, शुद्ध वायु और प्रकाशको रोगीतक पहुचनेसे रोकते हैं एव ज्वरनिरोधक जहरीली दवाए आदि देते हैं तो बेचारे रोगीकी जीवन-शक्ति और भी कमजोर हो जाती है और गरीब रोगी प्रकृतिके विरुद्ध ठानी हुई इस लडाईमें सदैव परास्त होता एव गिरता है। रोगीको भयानक कष्ट और पीड़ाए सहनी पड़ती हैं। तब भी होता यही है कि प्राय उसकी मृत्यु ही हो जाती है, कभी-कभी यह भी होता है कि इस लडाईमें रोगके लक्षण चले जाते

है, रोगी अच्छा हुआ-सा दिखाई देता है अर्थात् शरीर अपनेको शुद्ध करनेका प्रयास बंद कर देता है पर कुछ ही दिन बाद शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेकी और भी अधिक कठिन रीति ग्रहण करता है और एक भयानक उभार प्रस्फुटित होता है। हो सकता है कि इन्फ्लुएंजा किसी शोषनाशक दवासे प्रकट रूप चला जाय पर शीघ्र ही फेफड़ोंमें प्रदाह आरंभ हो जाता है। इस प्रकार ओषधियोंके उपयोगके कारण कभी-कभी जीवनशक्ति सदाके लिए ऐसी क्षीण हो जाती है कि शरीर तीव्र रोग अथवा अन्य किसी रीतिसे अपने विजातीय द्रव्यको निकाल फेंकनेमें सदाके लिए असमर्थ हो जाता है।

शरीरमें इकट्ठा विजातीय द्रव्य जब सड़ने लगता है तब जीर्ण रोग होते हैं—यह सड़ान गरमी उत्पन्न करती है जो शरीरके

भीतर गरमी मालूम होना जीर्ण ज्वरका लक्षण है। इस रोगमें रोगीका शरीर बाहरसे ठंडा रहता है पर ज्यों-ज्यों रोगकी दशा बिगड़ती जाती है रोगीका शरीर ऊपरसे भी गरम रहने लगता है। इसीलिए पुराने जीर्ण रोगियोंको अंतमें तेज ज्वर रहने लगता है। ऐसी दशामें समझना चाहिए कि रोगीकी जीवनशक्ति बिलकुल क्षीण हो गई है। इस दशामें ज्वर तीव्र रोगके ज्वरके समान विजातीय द्रव्यको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए नहीं बढ़ता है वरन् इसका यह अर्थ है कि जो जीवनशक्ति शरीरके अवरुद्ध ज्वरको दूर करनेमें लगी हुई थी और ज्वरको बाहर जानेसे रोक रही थी उसने थककर काम छोड़ दिया है, जिसकी वजहसे ज्वर शरीरके बाहर-भीतर सभी जगह बढ़ गया है। जीर्ण ज्वरकी अंतिम अवस्थामें इस ज्वरसे लड़नेके लिए भी प्राकृतिक चिकित्साके सारे प्रकाश वायु जल मिट्टी प्राकृतिक भोजन आदिका उपयोग सावधानीके साथ किया जा सकता है।

लिए हानिकर है। जीर्ण रोग अब खतरनाक होता जाता है, धीरे-धीरे स्नायुदौर्बल्य, यक्ष्मा (इन्फ्लुएंजा और फेफड़ोंमें प्रदाह उत्पन्न हो जानेके कारण), कैंसर, गठिया, मधुमेह, बड़े घाव-सरीखे कठिन रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस समय यदि प्राकृतिक चिकित्साद्वारा रोगीकी जीवनशक्ति धीरजसे लगे रहकर एक बार फिर न जगा दी जाय तो ये रोग रोगीको वर्षों खाटमें सड़ाकर धीरे-धीरे उसे कब्रतक पहुंचा देते हैं।

तीव्र रोगोंमें शरीरको बहुत हानि पहुंचाते हुए भी औषधोपचार रोगोंको दबानेमें सफल हो जाता है। पर जीर्ण रोगोंको तो वह दबा भी नहीं पाता। वहां उसकी कुछ नहीं चलती। हां, धीरे-धीरे और संखिया आदि-सरीखे भयंकर विषोंके द्वारा जीर्ण रोगकी दशा भी कभी-कभी कुछ बदल जाती है, रोगके एक-दो लक्षण दूर

उदाहरणके लिए सदा बहनेवाले खुले घावको लीजिए। कभी-कभी यह कोई तेज मरहम लगानेसे बंद हो जाता है। पर ऐसा करके केवल एक ऐसे रास्तेको, जिससे शरीरका विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे निकल रहा था बंद कर दिया जाता है। अब विजातीय द्रव्य शरीरकी अंदरकी ओर बढ़ता है और यदि इसे निकलनेका कोई दूसरा रास्ता शीघ्र न मिला तो यह शरीरको इतनी बड़ी हानि पहुंचा सकता है कि जिससे मृत्युतक हो सकती है। पर यदि विजातीय द्रव्यका बनना ही प्राकृतिक भोजनद्वारा रोक दिया जाय एवं प्रकाश वायु जल और धरतीकी शक्तिके उपयोगद्वारा शरीरकी जीवन-शक्ति और पाचनको बढ़ाकर विजातीय द्रव्यको मल, मूत्र एवं स्वेदमार्गसे निकालनेमें सहायता की जाय तो घावका बहना अपने आप बंद हो जायगा और शरीरकी रोगनिवारिणी शक्ति बढ़नेसे वह सूख जायगा। इस विधिसे किसी प्रकारकी हानिकी संभावना नहीं है न शरीरका ही कोई नुकसान हो सकता है।

हो जाते हैं और शरीरके किसी विशेष अगके रोगके लक्षण प्रकट रूपसे चले भी जाते है। लेकिन रोगीका प्रधान रोग तो बढ़ता ही जाता है। यहातक कि जिन चीजोंके मोहके कारण वह प्रकृति-पथसे हटा था वे उसकी कोई सहायता नही कर पातीं और वह वह मृत्युके कराल गालमें जा पड़ता है।

टीकेके जहरद्वारा शरीरकी जीवनशक्ति आरभमें निकम्मी कर दी जा सकती है। फलस्वरूप जिन जीवन-शक्तिसे भरे पूरे लड़कोंके शरीरका विजातीय द्रव्य चेचक आदि बच्चोंके रोग कहे जानेवाले उपायोंसे निकल जाता था वे बंद हो जाते हैं। अब इन सीधे-सादे तीव्र रोगोंके बजाय डिफ्थीरिया, फेफड़ोंका प्रदाह-सरीखे भयानक रोग होते हैं और स्नायुदौर्बल्य, यक्ष्मा, कैंसर आदि सरीखे जीर्ण रोगोंकी एक लबी कतार उनके पीछे लग जाती है। कितने ही लोग यक्ष्मा, कैंसर, स्नायुदौर्बल्य कठमाला, बहरेपनको साथ लिए अपनी बसाखीके सहारे काखते और लड़खड़ाते हुए चलते दिखाई दे रहे हैं। इनमेंसे कितने ही अधे भी हो चुके है और अनेकोंके शरीरका आकार विकृत हो गया है। इनमेंसे अनेककी यह दशा स्वास्थ्यके रक्षक कानून और औषधोपचारद्वारा विहित टीके ने की है। पर यह बात बहुत कम लोगोंको मालूम है। इस सबधमें भी यही देखना है कि अधेरेमें रखे गए इस सत्यपर प्रकाश कब पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जुकाम एव अन्य साधारण तीव्र रोगोंके लिए दी गई दवाएं ही मनुष्यके लिए बड़ा-से-बड़ा खतरा उत्पन्न करती हैं, उसे कष्ट और सकटमें डालती हैं। यहां भी औषधोपचार प्रकृतिके आवाजपर कान नहीं देता और प्रकृतिके सदुद्देश्योंका गलत अर्थ लगाता है।

हम जितना ही आगे बढ़कर प्रकृतिका स्वागत करेंगे, तीव्र रोगोंके उद्देश्योंको समझकर उनके सहायक होंगे, जितना ही हम रोगोंके सही कारण अप्राकृतिक भोजन, शहरों और कमरोंकी गदी हवासे बचेंगे—और जितना ही हम अपने शरीरपर प्रकाश, वायु, शीतल जल एव धरतीकी शक्तिका असर होने देंगे उतनी ही पूर्णता और शीघ्रतासे हम अपने शरीरके अदर उत्पन्न गरमीके खतरेसे दूर होंगे। और तब मल भी (नाक और फेफड़ेके रास्ते) अधिक शीघ्रतासे और समुचित रीतिसे निकलने लगेगा। गुर्दे और बड़ी आँतें अपना काम ठीक-ठीक करने लगेंगी। गरमी होनेपर पसीना आने लगेगा, खसरा, लाल बुखार चेचकके रूपमें मल त्वचाके ऊपर आ जायगा तथा अनेक अन्य रूपोंमें विजातीय द्रव्य शरीरसे बाहर होने लगेगा। शरीरमें गरमी कम होनेपर रोगीको कष्ट और पीड़ा कम होगी और उसे शीघ्र ही आरामका अनुभव होने लगेगा। तीव्र रोग जानेपर उसे अपनेमें नवीन शक्ति आई प्रतीत होगी एव इससे उसका कायाकल्प उस ग्रीक पौराणिक पक्षीकी भाति हो जायगा जो अपनेको भस्म करके अपनी राखसे फिर पैदा हो जाता था।

तीव्र रोगोंके उपचारमें औषधोपचारकी असफलता एव ओषधिके प्रयोगसे होनेवाली हानिया उन सबपर, जो डाक्टरोंकी तड़क-भड़कसे चौंधिया नही गए हैं एव जो दवाओंद्वारा रोगीपर लाए गए असरको निष्पक्ष भावसे देख सकते हैं, प्रकट हो जायगी। इसी प्रकार तीव्र रोगोंमें प्राकृतिक चिकित्सा करनेपर जो लाभ होता है एव रोगोंके जानेपर स्वास्थ्यमें जो सुधार होता है वह कोई भी किसी प्राकृतिक चिकित्सालयमें जाकर या

स्वयं अनुभव करके साफ-साफ देख सकता है। तब उसे मेरे इस कथनपर भी विश्वास हो जायगा कि तीव्र रोग जरा भी खतरनाक नहीं है वरन् वे उपचारात्मक उभार हैं जिनके द्वारा शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त कर लेता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि मियादी बुखार, डिप्थीरिया, हैजा आदि सभी तीव्र रोग अधिकतर सर्दीके कारण होते हैं और जिनसे लोग आजकल बुरी तरह डरते हैं, बिल्कुल खतरनाक नहीं हैं। यदि इनका समुचित उपचार किया जाय तो ये अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। वे मनुष्यके लिए वरदानस्वरूप हैं, आनंद और हर्षके साथ उनका स्वागत करना चाहिए।

अनगिनत रोगियों एवं स्वयं अपनेपर किए गए अनेक अनुभवोंने मेरे इस विश्वासको कि सर्दी, जुकाम आदि रोग प्रकृति हमारे लाभके लिए लाती है, अधिक दृढ़ कर दिया है। जो मेरी बताई उपचार-पद्धतिको काममें लायेगा, उसे मेरे कथनकी सत्यताकी प्रतीति करानेवाले ठोस प्रमाण भी मिल जायंगे।

तीव्र रोग शरीरको चलाते रहनेका प्रकृतिका एक साधारण उपाय है। पर यह सर्वथा आवश्यक नहीं है। यदि प्रकृतिकी ओर लौट चला जाय तो उससे पूरी तौरपर बचा जा सकता है। जुकाम या अन्य कोई तीव्र रोग होनेपर यदि जल्द ही उसकी प्राकृतिक चिकित्सा आरंभ कर दी जाती है अर्थात् यदि रोगी प्राकृतिक स्नान करता है, कमरेकी सारी खिड़कियां खुली रख कर कमरेमें या बाहर खुलेमें सर्दी-गर्मीके अनुसार थोड़ी या अधिक देरतक बार-बार नंगे रहकर वायुका शरीरपर लगने देता है, नंगे पांव टहलकर, खुले बदन सोकर या आरामकर धरतीसे अपना संबंध जोड़ता है तो चेचक, डिप्थीरिया, मियादी

बुखार, तीव्र ज्वर, हुजा-सरीखे डरावने रोग भी कोइ कष्ट नही देते और रोगीकी परिचर्यामें लगे लोगोंको भी रोगके उतार-चढावके समय कोइ चिंता नहीं होती। पर यदि स्वस्थ दिखाइ देनेवाले लोग या जीण रागके रोगी, अभीसे, तीव्र रोग हानेके पहले ही, प्रकृतिकी ओर लौट चलें अर्थात् जल, प्रकाश, वायु और धरतीका समुचित उपयोग जिसका वणन मैं कर चुका हू, करने लगें और प्राकृतिक भोजन करें, जिसके सबधमें म आगे लिखूगा, तो उन्हें जुकाम या कोइ भी अय तीव्र रोग न होगा।

अपने प्राकृतिक चिकित्सालयमें और इसे स्थापित करनेके पहल मुझसे जिन अनगिनत रोगियोने पूरे विश्वासके साथ चिकित्सा कराइ उन्हें चिकित्साकालमें न तो जुकाम हुआ और न कोइ अन्य तीव्र रोग। इस प्रकारके स्वास्थ्यकर उभार भी किसी-न किसी रूपमें अप्रीतिकर होते हैं। ये कम-से-कम हमारे साधारण जीवन क्रममें बाधक तो होते ही ह। पर जिन अनक बूढे और जवानोंने, जिन्होने बिना किसी विशेष सावधानी या क्रमागत परिवतनके सीधे नगे पाव टहलना शुरू कर दिया, खुलेमें प्राकृतिक नहान लेने लगे, वायु और प्रकाशपूण झोपडीमें सोन लगे अथवा बिल्कुल खुली जगहमें खुली धरतीपर लेटने लग और नगे रहने लगे, उनमेंसे किसीको भी यद्यपि उन्होंने अच्छे और बुरे मौसममें, बरसात और धूपमें और कभी-कभी कडाकेकी सर्दीमें भी सारी चिकित्सा जारी रखी, कोइ उभार नहीं हुआ।

इस प्रकार पूणतया प्रकृतिकी ओर लौटनेसे हमारी जीवन-शक्ति प्रचडरूपसे उद्दीप्त हो उठती है और वह अपनी पूरी शक्तिके साथ शरीरसे विजातीय द्रव्य निकालनेमें लग जाती है जिसकी प्रक्रियास्वरूप सारे शरीरमें ऐंठन-सी होती ह कभी-कभी

हल्का या तेज दर्द भी होने लगता है (फोड़े भी हो जा सकते हैं), पर साथ-साथ शरीरके अंदरकी बढ़ती हुई गरमी, जो सभी कष्ट कर, उत्तेजक और थकानेवाले तीव्र रोगोंका कारण होती है, तुरत कम हो जाती है और धीरे धीरे चली जाती है। इसकी वजहसे तीव्र ज्वर और साधारणतया जुकाम या कोई भी तीव्र रोग नहीं होने पाता। साधारण जीवनमें भी मनुष्य जितना ही अधिक ठंडे जल, ठंडी हवाके संपर्कमें अपने शरीरको रखता एवं उसपर मोटे कपड़े और भारी जूते नहीं लादता तथा जितनी ही दृढ़तापूर्वक वह प्रकृतिमें अपने विश्वासको बनाये रखता है उसे उतना ही मामूली और निरापद स्वास्थ्यकारक उभार होता है और यदि हल्का जुकाम-सा कोई उभार हुआ ही तो वह आसानीसे चला भी जाता है, पर जब प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते कुछ दिन हो जाते हैं तब तो इस प्रकारके उभार आनेकी संभावना नहीं रह जाती।

यह सभी जानते हैं कि जो सर्दीसे नहीं डरते या जिनके पास सर्दीसे बचनेके लिए काफी कपड़ा और जूता वगैरह खरीदनेको पैसा नहीं है उन्हें या तो तीव्र रोग होते ही नहीं या बहुत कम होते हैं।

क्या ठंडकके बारेमें मेरे विस्तारपूर्वक लिखे हुए विचारोंको पढ़कर आपके मस्तिष्कसे सर्दीका भय निकल जानेकी आशा की जा सकती है? नहीं, मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि यह सोचूं भी कि सर्दीके भयानक किलेको मेरे विचारोंसे जरा भी ठेस लगी होगी। चाहे जितने प्रमाण उपस्थित किए जानेपर भी, कुछ लोगोंको भयरहित होकर मौजसे हवा और ठंडकके झोंके नंगे बदनपर सहते एवं गीली धरतीपर नंगे पांव चलते दिखाई

देनेपर भी लोग तरह-तरहकी आपत्तियां पेश करेंगे, कहेंगे, अजी वह तो अभी जवान है, उसका शरीर सहनशील बन गया है, उसकी काठी मजबूत है इसलिए वह यह सब कर सकता है पर मेरे लिए यह कैसे संभव है? इन बहानोंकी फौजके बलपर ही सर्दी अपने भयके गढ़की रक्षा करती है।

यदि डाक्टर अनेक रोगोंसे पीड़ित भी हो तो भी लोग उसके पास जाते हैं और इस विश्वासके साथ जाते हैं कि वह हमें रोगमुक्त कर देगा। जो दवा दवा-फरोशके यहांसे आती है यदि वह जहर भी हो अतः स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचानेवाली एवं नष्ट करनेवाली हो और दवा बनानेवालोंकी जरा-सी गल्तीसे जान लेनेवाली साबित हो तो भी हम आंख मूंदकर उसका विश्वास करते हैं। जब डाक्टर इन खतरनाक दवाओंके नाम सादे कागजपर लटिन भाषामें, जिसे हम समझ नहीं पाते, लिखकर देता है तो उनपर हमारा विश्वास और भी बढ़ जाता है।

पर प्रकृतिसे लोग डरते हैं। और उस प्रकृतिपर विश्वास नहीं करते कि जिसकी चिकित्साके साधन जल, प्रकाश, वायु गरमी, सर्दी हैं, जिनसे संसार बना है एवं चलता है और जो प्रकृति सारे प्राणियोंका भला चाहती है। जबतक मनुष्य प्रकृति-पथसे नहीं हटा, वह प्रकृतिकी गोदमें खुशी-खुशी खेलता रहा और प्रकृति अपनी इच्छा उसे साफ-साफ बताती रही। डाक्टर यही कोशिश करते हैं कि लोग प्रकृतिके प्रति अपना यह अविश्वास बनाए रहें।

विश्वकी उत्पत्ति शाश्वत प्रेमके भंडारसे हुई है, इस भंडारसे शुभके अतिरिक्त क्या कभी कोई अशुभ या बुरी चीज प्रकट

हो सकती थी ? इसलिए प्रकृतिमें जलकी एक बूंद भी ऐसी नहीं है कोमलतम वायुका मंदतम झोंका भी ऐसा नहीं है और न सर्दीका एक लघुतम अंश ही ऐसा है जिसका निर्माण देहधारियोंके कल्याण और सुखकी दृष्टिसे न किया गया हो।

जब मनुष्य प्रकृतिसे विमुख हो गया तब अपने कष्टोंका कारण अपनेमें न खोजकर अपनेसे बाहर प्रकृतिमें खोजने लगा। यह उसके नए आचरणके अनुरूप ही कहा जायगा। अब उसने प्रकृतिको खतरोंसे भरी हुई, निर्दय और कठोर माना जिसके परिणामस्वरूप वह प्रकृतिका अविश्वास करने लगा। जिसका आगे चलकर यह फल हुआ कि प्रकृति और उसके कार्योंका वह गलत अर्थ लगाने लगा और फलस्वरूप वह प्रकृतिके साधनोंका दुरुपयोग करके अपने लिए कष्ट और दुःख मोल लेने लगा। अनेक खतरनाक काम प्रकृतिको गलत समझनेके कारण ही किए जाते हैं।

प्रायः एक सदीसे ज्यादा हो गया कि डाक्टरोंने जलका उपयोग उसकी स्वाभाविक अवस्थामें, अथवा उस अवस्थामें जिसमें कि अपनी नैसर्गिक बुद्धिकी सुननेवाले पशु काममें लाते हैं, रोगियोंकी चिकित्सामें इस्तेमाल करनेसे इनकार कर दिया है। चाहे फोड़ा सड़ जाय और रोगी मर जाय फिर भी वे फोड़ेको धोनेके लिए गरम पानीका ही उपयोग करेंगे।

बहुत दिन नहीं हुए कि किसी भी ऐसे रोगीको जिसे जोरा का ज्वर चढ़ा हो, चाहे वह अत्यधिक प्यासकी पीड़ासे परेशान हो एवं भीतरकी गरमीसे जला जा रहा हो चिकित्सक पीनेको ठंडा पानी नहीं देते थे। किसीको भी यदि उसका शरीर किसी कारणसे गरम हो गया है तो किसी रूपमें भी ठंडा पानी

पीनकी इजाजत उसे नही थी। सिपाहियोंका मार्च करते समय ठंडा पानी पी लेनेपर सख्त सजा दी जाती थी। यदि सिपाही प्यासके मारे थककर गिर जाय तो भी इसकी परवा नहीं की जाती थी। बदनके गरम हो जाने या रहनेपर ठंडे पानीसे नहाना बहुत खतरनाक समझा जाता था।

पर आज अवस्था बदल गई है। आज यदि किसीके घाव हो जाता है या कोई अंग कट जाता है तो पहले ठंडे पानीका ही उपयोग होता है, ज्वरके रोगीका कष्ट कम करनेके लिए उसे खुशी-खुशी ठंडा पानी पिलाया जाता है, मार्च करते समय सिपाहीको केवल ऐसी जगहोंको छोड़कर जहांके लोग कीटा-णुओंसे नहीं डर गए है—यही तो लोगोंके लिए आज हौवा बना हुआ है—ताजगी लानेके लिए ठंडा पानी पिलाया जाता है।

यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है कि स्नान करते समय शरीर-को जब पहले पानी छूता है उस समय शरीर जितना ही अधिक गरम होता है स्नानसे लाभ उतना ही अधिक मिलता है। अब लोग वाष्पस्नानके बाद बदनसे जब पसीना जोरोंसे चूता रहता है तुरत ठंडे पानीसे नहाते है।

आज इसके स्पष्ट चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि लोग प्रकृतिकी ओर लौटना चाहते है पर ठंडी हवाके बजाय लोग पहले ठंडे पानीकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। आज जगह-जगह ठंडे पानीसे चिकित्सा करनेवाले जल-चिकित्सालय खुल गए है और रोगी बहुतायतसे वहां चिकित्साके लिए पहुंचने लगे हैं।

प्रकृति निस्सदेह बहुत दयालु है, यदि कोई उसकी तरफ एक कदम भी बढ़ता है तो वह उसे अपने हृदयमे लगानेको हाथ फैलाकर दौड़ती है और हमारी भलाईके लिए अपना

वरदहस्त सदा आगे बढ़ाए रहती है। यद्यपि ठंडे पानीका उपयोग आज उस पूर्ण विधिसे नहीं होता जैसा कि प्रकृति चाहती है फिर भी लोग यह जान गए हैं कि ठंडे जलमें रोग-निवारणका गुण अत्यधिक मात्रामें मौजूद है। यदि इस ठंडे पानीके द्वारा प्राप्त सफलताकी तुलना औषधोपचारद्वारा प्राप्त सफलताओं या यों कहिए कि असफलताओंसे की जाय तो निश्चय ही वह मानव-जातिको विस्मित कर देनेवाली होगी। किंतु ठंडे पानीका उपयोग एक बारमें केवल कुछ ही देरतक और सीमित रूपमें ही किया जा सकता है।

पर शुद्ध ताजी हवा मनुष्यका प्राण है। त्वचा एवं फेफड़ों-द्वारा जिस अनुपातमें शुद्ध वायु मनुष्यको मिलती है ठीक उसी अनुपातमें उसका शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य घटता-बढ़ता है।

यदि हम केवल एक क्षणके लिए भी मनुष्यका वायुसे वंचित कर दें तो उसके जीवनका तत्काल अंत हो जायगा। यदि हम उसका नाक और मुंह खुला रखकर उसके शरीरपर किसी ऐसे पदार्थका लेप कर दें कि वह त्वचाद्वारा सांस न ले सके तो कुछ ही घंटोंमें उसकी मृत्यु हो जायगी।

जलके विपरीत वायुमें रोगी हमेशा रह और घूम सकता है और इच्छा होनेपर समय-समयपर वह अपने कपड़े भी उतार दे सकता है। भोजनको, जिससे मनुष्यका सारा शरीर और स्नायु बने हैं, प्राकृतिक कर देनेसे शरीरमें विजातीय द्रव्य एवं रोगका बढ़ना तुरत रुक जाता है। यदि स्वास्थ्यको बनाये रखने एवं रोगोंको दूर करनेके लिए वायु, ठंडक, धरतीकी शक्ति एवं प्राकृतिक भोजनका—इस भोजनकी आजके शाकाहारी

भोजनसे कोई तुलना नहीं है—उपयोग किया जाय तो उससे प्राप्त सफलताके सामने शीतल जलद्वारा प्राप्त सारी शानदार सफलता मात हो जायगी। पर वह प्रयोग अनिवार्यतः मेरी बताई विधिके अनुसार, जिसका वर्णन मैं कर चुका हू और आगे चलकर और करूगा, होना चाहिए।

जलका प्रयोग यदि गलत तरीकेसे और देरतक किया जाय तो हानि हो सकती है पर वायुसे किसी हालतमें भी कोई नुकसान नहीं होता, उसका प्रयोग सदा लाभकर ही होता है। लेकिन तब भी लोग वायुको अविश्वासकी दृष्टिसे ही देखते हैं। आज जब हमारा शरीर विशेष रूपसे गरम रहता है या जब हमारे शरीरसे गरमीके मारे पसीना बहता रहता है उस समय भी हम ठडे पानीसे स्नान करते नहीं हिचकते, ज्वरके रोगियोंको भी ठडे पानीमें सुला दिया जाता है पर क्या कोई यात्री, जो तेज रफ्तारसे चलनेके कारण पसीने-पसीने हो गया है, किसी खुले स्थानमें या किसी शिलाखडपर बैठकर अधनग्नावस्थामें (नगी छाती, नगे पाव और नगे सिर) या बिल्कुल नगे होकर अपने शरीरपर तेजीसे आती हुई ठडी हवा केवल कुछ समयके लिए लगने दे सकता है? डिप्थीरिया या चेचकसे पीड़ित किसी बालकको या निमोनिया या मियादी बुखारके तीव्र ज्वरसे पीड़ित किसी बड़ेको, जो गरमीके मारे छटपटा रहा हो, और मोटे भारी ओढ़नेको फेंक देना चाहता हो, जाड़ेके दिनोंमें खिड़की खुले ठडे कमरेमें या खुले मैदानमें बिलकुल नगा ले जाने का कोई साहस करेगा?

ऐसे रोगीको आज कौन दुर्गंधभरी भारी, जहरीली हवाभरे कमरेमें और ठडकके दिनोंमें भी बाहर ले जाकर बाग

मिट्टी

बाइबिलमें लिखा है, "खुदाने धरतीकी धूलसे आदमीका पुतला बनाया, उसके नथनोंमें प्राण फूंक और वह सजीव प्राणी हो गया।"

तो आदमी मिट्टीका ही बना।

घाव और हर प्रकारके चमरोगके लिए गीली मिट्टी असली प्राकृतिक मरहम है। मिट्टीमें बने शरीरकी क्षतिकी पूर्ति मिट्टीसे ही हो जाती है।

मैंने कई बार यात्रियोंसे सुना है कि वहशी घावों और त्वचाके रोगपर गीली मिट्टीका प्रयोग बराबर करते हैं और शीघ्र रोगसे मुक्ति पा लेते हैं।

पशु भी घावोंपर मिट्टीका ही प्रयोग करते हैं। हाथीके शरीरपर यदि डाली वगैरहकी रगड़से कभी घाव हो जाता है तो वह तुरत अपनी लारसे मिट्टी गीली करता है और उसे सानकर मुलायम हलुए-सी बनाकर घावपर थोप देता है।

पशुओंके रोगोंमें गीली मिट्टीका प्रयोग बराबर होता है। गाय-बैलके खुर पकनेपर उनपर लोग गीली मिट्टी बांधते या उन्हें कीचड़में खड़ा रखते हैं। हम अब फिरसे जब प्रकृतिके नियमोंके अनुसार रहने लगेंगे, प्रकृतिकी आवाजपर कान देने लगेंगे, तब हमें गीली मिट्टीको अपनाना ही होगा। यदि हमने इसे अपना लिया तो समझ लीजिए हमने एक बड़ी सिद्धि प्राप्त कर ली।

मिट्टीका प्रयोग करनेवालेको किसी प्रकारके घाव उसके प्रदाह, सूजन तथा ज्वरसे कभी कोई खतरा नहीं हुआ, न उनसे

डरसे वे आतंकित ही होते हैं। यदि मिट्टीका प्रयोग किया जाय तो चीरफाड़की जरूरत ही न रहे न उनसे किसीको कष्ट ही उठाना पड़े। हर प्रकारके घाव और चर्मरोग मिट्टीके प्रयोगसे कम-से-कम समयमें बिना किसी कष्ट अथवा दर्दके अच्छे होते हैं। सर्वथा प्राकृतिक गीली मिट्टीकी पुलटिसके गुण अनंत हैं। घाव, फोड़े-फुंसी और चर्मरोग तो इसके प्रयोगसे यों ही अच्छे हो जाते हैं। युद्धमें भी मिट्टीकी पुलटिस विशेष उपयोगी हो सकती है।

शरीरपर किसी तरहकी चोट लग जाय, घाव हो जाय, कट जाय, बर्छी भालेसे लग जाय, जल जाय, गोली वगैरा लग जाय सारा शरीर फूल जाय, फोड़े-फुंसी, दाद, खाज, उकवत हो जाय, सूजन आ जाय, बिच्छू-बर्रे या साँप डस ले जानवर काट खाय, रक्तमें जहर फैल जाय, घाव दूषित हो जाय, नाक-मुँहपर फफोले पड़ जाएं, सेहुआ हो जाय, सिरमें रूसी पड़ जाय, कोढ़ हो जाय, हड्डी टूट जाय, तो रोगके स्थानपर मिट्टीको गीली करके या नदी-नालेकी गीली चिकनी मिट्टी बाँधनी चाहिए।

मिट्टी बाँधते ही शीतलता आती है आरामका अनुभव होता है और लाभ तत्काल होता है जिसे देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता है। मिट्टीकी महिमा ऐसी ही है, पर कितने लोग हैं जो इस महिमासे परिचित हैं?

मिट्टीकी पुलटिसके लिए जिसे मिट्टीकी पट्टी भी कह सकते हैं गीली-से-गीली मिट्टी (नदी-नालेका कीचड़) लेनी चाहिए और उसे सीधे घावपर (गहरा हो तो घावके अंदर भी) रखना चाहिए, फिर ऊपरसे कपड़ा बाँध देना चाहिए कि मिट्टी इधर-उधर न सरके। घावपर कपड़ा रखनेके बाद उसपर मिट्टी

रखकर घाव और मिट्टीका सीधा संबंध होनेसे बचानेकी कोशिश कभी न करनी चाहिए।

लोगोंको मिट्टीका यह प्रयोग आवश्यकतासे अधिक सीधा और सरल प्रतीत होता है। उनका चिंतित, अस्थिर मस्तिष्क बड़े-बड़े वैज्ञानिक अनुसंधानोंके बलपर जटिल मशीनोंकी सहायतासे चमत्कारपूर्ण मरहम बनानेकी कोशिश करता है।

मिट्टीकी साधारण पुल्टिस आदमीको बिना किसी खतरेमें डाले घावको भर देती है, बड़ी आसानीसे अच्छा कर देती है। मरहम अकसर बहुत हानि पहुंचाते हैं। मिट्टीके प्रयोगसे कई लोग इसलिए डरते हैं कि कहीं मिट्टी गंदी हुई तो खूनमें विष न पहुंच जाय। पर जहां कूड़ा-करकट फेंका जाता हो या गंदगी गाड़ी जाती हो वहांकी मिट्टी कोई लगावेगा ही क्यों?

शराब, मांस आदि अनेक अप्राकृतिक खाद्योंद्वारा शरीरमें पहुंचनेवाली गंदगीके बारेमें, जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और जो घावोंको खतरनाक बना देती है, आज कोई नहीं सोचता। शरीरमें भरे विषसे कोई नहीं डरता लोग डरते हैं उन विषोंसे जो बाहरसे शरीरमें अनजानसे पहुंच सकते हैं गोकि इनसे डरनेकी जरा भी जरूरत नहीं है। मिट्टीद्वारा शरीरमें विष पहुंचनेकी तो जरा भी आशंका नहीं है।

घावपरसे मिट्टीकी पट्टी जब हटाई जाती है तो अकसर उसके साथ बदबूदार तरल पदार्थ निकलता है। मिट्टी इसे घावके चारों तरफसे खींचकर निकाल लाती है। इससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि मिट्टी घावको और उसके चारों ओरकी जगहको दूषित पदार्थसे मुक्त रखती है और इसीलिए मिट्टीके प्रयोगसे घाव शीघ्र और आसानीसे अच्छे होते हैं।

घावमें मिट्टीद्वारा विष पहुचनेका कोइ डर नहीं हैं। यदि मिट्टीद्वारा कुछ गदगी घावमें पहुच जायगी तो मिट्टी उस गदगीको तुरत सोखकर नष्ट कर देगी।

कुछ लोग मिट्टीमें खाद-गोवर मिले होनेकी शका करते ह, पर यह तो सभी जानते हैं कि देहाती घावपर सीधे गोवर रख देते हैं। उनका घाव बिना विषाक्त हुए ठीक हो जाता ह, इसलिए यदि मिट्टीकी पुलटिसमें गोवर हो भी तो किसी प्रकार डरनेकी जरूरत नहीं ह।

रोगोंके कीटाणु पृथ्वीपर भरे पडे ह, आजके विज्ञानके इस कथनपर जरा भी ठडे दिलसे विचार किए वगर लोग इतने घवरा गए हैं कि गीली मिट्टीके प्रयोगकी बात करना ही एक साहसका काम हो गया है। इसके प्रचारपर पुलिस रोक लगा सकती है, पर हमें इन पक्षपातपूर्ण रूढ़िवादी विचारोंसे डरनेकी जरूरत नहीं हैं।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मैंने अनगिनत बार मिट्टीका प्रयोग किया ह और प्रत्येक बार फल आशातीत हुआ है। नुकसान तो कभी किसीको पहुचा ही नहीं, न एकका भी रक्त विषाक्त हुआ।

पक्षी और पशु अपनी नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर अपने घावोंपर मिट्टीका प्रयोग कर उन्हें अच्छा कर लेते हैं। नैसर्गिक वृत्ति किसीको कुराह नहीं ले जा सकती। हम बिना किसी सशयके इसके इशारेपर चल सकते हैं, हमें कभी कोइ हानि नहीं होगी।

यदि घाव बडा हो तो हर प्रकारसे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेकी (मांस,मदिरा, बीडी, सिगरेट आदि छोडनेकी) आवश्यकता होती है, यह प्रयोगद्वारा सिद्ध हो चुका है।

मिट्टीकी पुलटिस और इसके अनेक प्रकारके प्रयोगोंके बारेमें कहना अभी थोडा बाकी रह गया है।

मैं यह पहले ही बता चुका हूं कि मिट्टीमें घुलाने और चूसनेकी शक्ति है। वह विजातीय द्रव्यको घुलाकर चूस लेती है।

यह बराबर देखा गया है कि लोग बिना पहलेकी जानकारीके डंक मारनेपर या सांपके डस लेनेपर नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर मिट्टीका प्रयोग करते हैं।

एक बार जब ईसामसीह कहीं जा रहे थे तो उन्होंने रास्तेमें एक आदमीको देखा जो जन्मसे अंधा था।

जब उन्हें उसके बारेमें ज्ञात हुआ तो उन्होंने जमीनपर थूक-कर मिट्टी सानी और अंधेकी आंखोंपर लगा दी।

और कहा, "सैलम तालाबपर जा और अपनी आंखें धो।" यह सुनकर वह गया आंखें धोई और देखता वापस लौटा।

धरतीमें जो आश्चर्यकारी रोगनाशक गुण हैं उनके कारण मिट्टीकी पुलटिसको भी विशेष स्थान प्राप्त हो गया। मिट्टीके प्रयोगसे कितने स्थानीय रोग इस प्रकार चले जाते हैं जैसे उनपर जादू कर दिया हो। यह प्रकृतिकी ही शक्ति है जिससे ये आश्चर्य जनक कार्य सपन्न होते हैं।

कोई किसी भी रोगका रोगी क्यों न हो, सामान्यतया उसके सारे शरीरकी चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु तथा प्राकृतिक भोजन द्वारा होनी अत्यावश्यक है। इसी एक उपायद्वारा स्थायी स्वास्थ्यकी प्राप्ति होगी। पर स्थानीय चिकित्साके भी बहुतसे लाभ हैं। यदि तुरत लाभ प्राप्त करना हो तो रोगी अंगकी चिकित्सा कभी-कभी अत्यतावश्यक हो जाती है, और इसके लिए वस्तुतः प्राकृतिक साधन मिट्टीसे बढ़कर दूसरा ज्यादा पुरअसर उपाय नहीं है।

अबतक ऐसे अवसरपर जलका प्रयोग होता आया है। रोग स्थित स्थानपर लोग भीगे कपड़ेकी पट्टी बांधकर गरमी लानेके लिए ऊपरसे ऊनी कपड़ा बांधते हैं। पर मिट्टीकी पुलटिस अधिक प्राकृतिक है और अधिक लाभदायक भी, क्योंकि मिट्टी पानी ज्यादा सोखती भी है और जल्द सूखती भी नहीं। इसके अलावा घुलाने और जज्ब करनेका मिट्टीमें अपना निजी गुण भी है।

प्रिसनीज साहब[1]के बताये पेड़ू पर गीले कपड़ेकी पट्टी बांधने और भी जितने प्रकारके गीली पट्टीके प्रयोग हैं, मिट्टीकी पुलटिसके प्रयोगकी तुलनामें नगण्य हैं और वह दिन दूर नहीं है जब लोग उनके बजाय मिट्टीकी पट्टीका ही उपयोग करेंगे।

मिट्टीकी पट्टी भी प्रिसनीज साहबकी बताई पट्टियोंकी तरह ही बांधी जाती है। अन्तर केवल यह है कि जलकी जगह गीली पट्टीका प्रयोग होता है। जहांतक बन सके मिट्टीको ढीली बनानी चाहिए पर इतनी ढीली नहीं कि रखनेपर बहने लगे।

मिट्टीकी पट्टी बनानेके लिए गीली मिट्टी या नदी-नालेकी कीचड़ लेकर छाती, आंख, गलेके चारों ओर और गरदन, गाल, पैर, पिंडली, पंजे, हाथ, जननेंद्रिय, मूत्राशय, तिल्ली और जिगरके स्थान, रीढ़की हड्डी आदि जहां भी रोग हो फैला देनी चाहिए और फिर उसपर कोई ऊनी या सूती मोटा कपड़ा रखकर बांध देना चाहिए ताकि मिट्टी अपने स्थानपर बनी रहे। ऊपरवाले कपड़ेके एक सिरेपर एक डोरी लगी रहे तो बांधनेमें सहूलियत होगी।

जरा सोचने-समझनेवाला कोई भी आदमी आसानीसे जान

[1]प्रिसनीज साहब बस्टके पहले हुए थे। ये रोगोंको मिटानेके लिए पानीका प्रयोग भीगी पट्टियोंके रूपमें करते थे।—अनुवादक

लेगा कि किसी विशेष स्थानपर मिट्टीकी पुल्टिस कैसे बांधी जा सकती है। समझना केवल यही रहता है कि गीली मिट्टी अपने स्थानपर कैसे टिकी रक्खी जा सकेगी।

बांधनेकी पट्टी सूती या ऊनी कोई भी हो सकती है। पानीकी पट्टी या गद्दीमें ऊपरसे ऊनी पट्टी बांधनेकी जैसी जरूरत होती है वह मिट्टीकी पट्टीमें नहीं, क्योंकि मिट्टी अपने आप गरम हो जाती है। पर जो रोगी कमजोर हों, जिनके शरीरमें गर्मी कम हो, उनके लिए ऊनी पट्टीका प्रयोग बहुत अच्छा है।

मिट्टीकी पुलटिस वह बनी-बनाई दवा है जिसका कोई भी रोग क्यों न हो किसी तरहका दर्द क्यों न हो तुरत उपयोग कर सकते हैं। सदा अभीष्ट फल प्राप्त होगा। कितने ही रोगोंमें तत्क्षण आराम पहुंचेगा। रोग कड़ा हो तो मिट्टीकी पुल्टिस देरतक रखा रहना चाहिए। सर्वरोगहारी मिट्टी रोगोंकी एक ही औषधि है।

रोग शरीरके बाहर हो या भीतर, मिट्टीकी पट्टी गरमीको खींचती है। यदि रोग छातीपर है तो मिट्टीकी पट्टी छातीपर मूत्राशय और तिल्लीके रोगोंमें इनके स्थानमें पेटके ऊपर, डिप्थीरियाके रोगमें गलेके चारों ओर तथा और भी रोगोंमें इसी तरह रखनी चाहिए।

सभी रोग पेटकी गड़बड़ीके कारण पैदा होते हैं, अतः पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखना सभी रोगोंमें लाभदायक साबित होगा। ऐसे रोगोंमें जिनमें कोई खास स्थान ग्रसित नहीं होता—जैसे स्नायुदौर्बल्य, शोकातुर होना, आदि रोग जो सारे शरीरके रोग कहे जा सकते हैं—पेडू पर मिट्टीकी पट्टी रखना लाभकारी है।

पेड़पर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे ज्वर तुरत कम होता है। अतः इसका उपयोग मियादी बुखार, लाल बुखार, मोतीझरा,

बफज्वर आदि-से नये रोगोंमें और किसी भी कारणसे गिरे स्वास्थ्यमें अवश्य करना चाहिए।

मिट्टीकी पट्टी पेडपर घटोंतक पड़ी रह सकती है, अत यह कटिस्नानकी बनिस्वत, जो एक बारमें केवल कुछ मिनटोंके लिए ही लिया जाता है, पेटमे ज्यादा गरमी खींचती है। पर क्योंकि मिट्टीकी पट्टीके बाद पेडूको साफ करनेके लिए उसे धोना ही पड़ता है, अत मिट्टीकी पट्टीके बाद बहुत थोड़े समयका एक कटिस्नान हमेशा ले लेना चाहिए। नहान यदि नहीं लिया जाय तो भी कोई हरज नही है।

मिट्टीकी पट्टी उतारनेके बाद उसपर हाथ रखनेसे मालूम हो जायगा कि मिट्टीकी पट्टी पेडू या फोडेकी कितनी गरमी खींचती है।

सारे बदनमें धूप लेनी हो तो मिट्टी पोतनेके बाद धूपमें लेट-कर हम अपने बदनपर अहसान करेंगे। इस प्रकार शरीरमें धूप लगनसे चमड़ी काली नहीं होगी, न जलेगी। धूप-नहान लेते वक्त यदि केवल मिट्टी मिला पानी ही शरीरपर चुपड लिया जाय तो वह जलनेसे बचेगा।

मिट्टीकी पट्टी आवश्यकतानुसार घटों रखी रह सकती है और दिनमें कई बार बदली भी जा सकती है। रोग कड़ा हो तो पट्टी शुरूमें जल्दी-जल्दी बदलना चाहिए। सोते समय रातको मिट्टीकी पट्टी बांधी जा सकती है और तकलीफ न होती हो तो पट्टी रातभर बंधी रह सकती है। जब पट्टी बहुत गरम हो जाय तो उसे उतारकर दूसरी लगा देनी चाहिए।

जहां आदमी रहता है वहांकी मिट्टी जैसी भी हो वह मिट्टी-की पट्टी बनानेके लिए उपयोगी होती है। चिकनी मिट्टी

आसानीसे चिपकती है और इससे लाभ कुछ विशेष भी होता है। अगर मिले तो चिकनी मिट्टीका ही उपयोग करना चाहिए।

सूजन, फेफड़े, गले और कठनलिका, आंख, नाकके रोग गठिया, वात-रोग, स्त्री, चर्मरोग, पेटके और जननेंद्रियसंबंधी रोग, मूत्राशय और यकृतसंबंधी रोग, नसोंकी पीड़ा, हर प्रकारके दर्द, सिरदर्द, दांतका दर्द आदि जैसे अनगिनत रोगोंमें जो आये दिन होते रहते हैं, मिट्टीकी पट्टीका सहारा विश्वासपूर्वक लिया जा सकता है।

दर्दका तो मिट्टी निश्चय और निरापद इलाज है, क्योंकि दर्दके कारण विजातीय द्रव्यको मिट्टीकी पुल्टिस खींच लेती है और दर्द हमेशाके लिए चला जाता है। फोड़े, फुंसी, सूजन वगैरह के लिए जिन अप्राकृतिक ओषधियोंका उपयोग किया जाता है वे रोगको अच्छा करनेके साथ ही विषको शरीरके अंदर पहुंचाती है और इस प्रकार घातक सिद्ध होती हैं।

दर्द मिटानेवाली दवाका उपयोग कर दांतसाज दांतको ही खतम कर देता है। ऐसी दवाओंसे बचना चाहिए। अगर दांतका दर्द बिना दांत खोये (उखड़वाये) चला जाय तो फिर उस लाभका क्या कहना।

अगर एक बार मिट्टी रखनेसे दर्द न चला जाय तो उसे तब तक बदलते रहना चाहिए जबतक इच्छित लाभ प्राप्त न हो जाय।

गरदनपर मिट्टीकी पट्टी बांधनेसे सिर-दर्दमें विशेष लाभ होता है।

बिजली गिर जानेपर या सांपका विष चढ़ जानेपर या किसी प्रकारके घातक रोगसे एकाएक आक्रांत हो जानेपर आदमियोंको सिर बाहर रखकर समूचा जमीनमें गाड़ दिया गया है। कभी

कभी कोई खास अंग विशेष तौरपर हाथ-पाव ही गाड़े गये हैं। इससे रोगी जल्द अच्छा हो गया और बच गया है। आदमीको समूचा या उसका कोई विशेष अंग गाड़ते वक्त ऋतुकी उपयुक्तता पर ध्यान रखना चाहिए। हैजेके उग्र रोगी तथा मियादी बुखारके रोगीको गाड़ना श्रेष्ठतर साधन है। जिस मिट्टीमें रोगी गाड़ा जाय वह बहुत सुस्क न होनी चाहिए।

शरीरके जिस अंगकी चिकित्सा मिट्टीकी पुल्टिससे की जाती है अथवा सारा शरीर या शरीरका जो अंग मिट्टीमें गाड़ा जाता है, उसे मिट्टी शक्तिशाली और तरोताजा बना देती है यह देखकर मिट्टीका महान चिकित्सक गुण स्पष्ट हो जाता है। जिनकी किसी कारणवश एकाएक मृत्यु हो गई है वे मिट्टीमें गाड़ देनेसे पुनर्जीवित हो गये हैं।

सूर्यके प्रकाशमें शरीरको बालूमें गाड़नेकी भी सिफारिश की जा सकती है। सूर्य बालूको गरम कर देता है, अतः इस क्रियाका लाभ बढ़ जाता है।

हमेशा मिट्टीकी ठंढी पुलटिसका ही प्रयोग करना चाहिए, उसे अप्राकृतिक तरीकेसे आगपर कभी गरम न करना चाहिए। गरम पानी पीकर देखिए। तुरत मालूम हो जायगा कि उसमें न वो ताजगी है न शक्तिप्रदायक गुण। इस तरह पुल्टिसको जब आगपर गरम कर देते हैं तो पुलटिसमें लगा पानी और मिट्टी दोनोंकी रोगनाशक और शक्तिदायक शक्ति नष्ट हो जाती है। गुनगुने गरम या खूब गरम पानीके प्रयोगसे भी विजातीय द्रव्यको घुलाया जा सकता है और रोगसे कथित मुक्ति पाई जा सकती है। इस रीतिसे शरीर कमजोर हो जाता है और उसे बड़ी क्षति पहुंचती है। यहांतक कि हानिका पल्ला लाभसे बहुत ऊंचा पड़ता

है। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हानिकी प्रतीति तुरंत नहीं होती, पर वह लगड़ाती हुई धीरे-धीरे आती है और कुछ देर बाद पहुंच ही जाती है।

गरम पानी या गरम पुलटिसके प्रयोगके तुरंत बाद ठंड जलके स्नान, फुहारे आदिका प्रयोगकर हम गरम प्रयोगसे हुई क्षतिको मिटा नहीं सकते।

इसी तरहकी हानि गरम वाष्पके स्नानसे भी होती है।

मिट्टी अथवा कीचड़ लगानेसे त्वचा बहुत अच्छी तरह साफ होती है। शरीरपर बराबर मिट्टी लगाकर रगड़कर धोते रहनेसे त्वचा स्वच्छ पूर्णतया होनेके साथ-साथ मुलायम और चिकनी हो जाती है।

इस विलक्षण ओषधि मिट्टीसे रोग जिस तरह आसानी और आरामसे तथा जितने निश्चित रूपसे जाते हैं उसके लिए मिट्टीके प्रयोगकी लाख-लाख प्रशंसा करनी चाहिए और इसका जोरदार प्रचार होना चाहिए। मिट्टीकी पुलटिस बनाकर और उसका प्रयोग करनेकी विधिकी अबतक उपेक्षा (केवल फादर कनाइप कभी-कभी मिट्टीकी पुलटिसकी राय देते थे) ही की जा रही है। मैंने बहुत पहले ही मिट्टीके प्रति अपने विश्वासकी घोषणा की थी कि मिट्टीका भविष्य महान है और इसका घर-घर प्रचार हो जायगा। जहां जब जरूरत होगी यह मिलेगी और आशातीत लाभ प्रदान करेगी। इसके प्रयोगसे जो फल निकले हैं उन सबने मेरे विश्वास की पुष्टि की है।

मिट्टीकी पुलटिस और मिट्टीकी पट्टीके प्रयोगसे आश्चर्य जनक रीतिसे रोगमुक्त हुए लोगोंकी रिपोर्ट बराबर आ रही हैं। सभी लोग इन प्रयोगोंकी जोरदार शब्दोंमें प्रशंसा करते हैं।

अनेकोंने मुझे यह भी लिखा है कि वे मेरे विचारोंका हृदयसे प्रचार कर रहे हैं।

इस प्राचीन तथा सीधी और सरल प्राकृतिक ओषधिको इसके योग्य सम्मान और पुरस्कार मिले, यही मेरी अभिलाषा है। नव प्रकृतिकी सबसे बड़ी ओषधिपर मनुष्य-जातिका पूर्ण अधिकार हो जायगा।

प्राकृतिक आहार

हजारों बरससे विज्ञान इस बातका पता लगानेकी कोशिश कर रहा है कि मानवदेहके पोषणके लिए किन चीजोंकी आवश्यकता है—इन्सानकी सही खूराक क्या है। जीवन शास्त्र, रसायन-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, तन्तु-विज्ञान (हिस्टालोजी), मानव विज्ञान और विज्ञानकी दूसरी शाखाओंमें इस गरजसे छानबीन की जा रही है।

पर एक हजार सालकी खोजका नतीजा क्या रहा? एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध प्रोफेसरका कहना है कि सच्चा विज्ञान-सम्मत आहार आज भी हमारे लिए अनहोनी वस्तु है। सैकड़ों साल तक सिर मारते रहनेपर भी विज्ञान अभी यह नहीं जान पाया है कि मनुष्यको क्या खाना और क्या पीना चाहिए। इस विफलताके कारण वह मानते हैं कि विज्ञानमें इस कामकी योग्यता ही नहीं है। पर दुर्भाग्यवश दुनिया आज भी उसकी इस अयोग्यताकी कायल नहीं है।

विज्ञान तो अभी उन बातोंको भी नहीं जान पाया है जिन्हें आदि युगके मनुष्योंने बिना किसी अध्ययन या अनुसंधानके जान

लिया था। वह गलत-से-गलत और अति अनथकारी सिद्धांतोंकी घोषणा करता जा रहा है और कभी अपनी गलतीको देखता-समझता नहीं।

अपने समयके महाविद्वानोंके विषयमें हम बाइबिलके इस वचनको दुहरा सकते हैं कि "अपने आपको बुद्धिमान कहते हुए वे मूर्ख बन गये।"

जो आदमी सच्चे ज्ञानके लिए पुन प्रकृतिकी पुस्तकके पन्ने उलटता है, और यो सुखी और स्वस्थ रहकर जीनेके लिए जो कुछ उसे जानना चाहिए उसे सीधे-सादे ढगसे जान लेता है उसे उन लोगोंके प्रयासपर हँसी आती है जो सदा अध्ययन अनुसधान और प्रयोगोंमें तन-मनस लगे रहते हैं, पर जिनकी हर खोजका फल कोई बेतुका असगत सिद्धांतमात्र होता है।

पर इन वैज्ञानिक अनुसधानोंके बावजूद जो बात सचमुच मनुष्यके सुख-स्वास्थ्यकी वृद्धि और उसका कल्याण करनेवाली है वह दिन-दिन उसकी आखोंसे ओझल होती जा रही है। पर जो आदमी फिरसे प्रकृतिके आदेशका अनुसरण करता है, उसके बताये हुए रास्तेपर चलता है, वह देखता है कि सब पेड़-पौधे और पशु-पक्षी जो वस्तुत प्रकृतिके आश्रयमें रहते हैं, रोग और दुःख दैन्य उन्हें नही सताते। उसको इस बातका दृढ़ विश्वास हो जाता है कि मैं स्वास्थ्य और आत्मकल्याणके सही रास्तेपर हू। सत्-असत्‌की जिस उलझन और बेचैनीमें आजकी दुनिया चपड और गोते खा रही है वे उसे छू भी नहीं पातीं। भले-बुरे, हितकर अहितकरके क्षुद्र विवादको वह दूरसे बिलकुल पूर्ण समाधान और प्रसन्नताके साथ देखता है। सही रास्तेपर होनेका अटल विश्वास स्वय ही सुख-स्वास्थ्य देनेवाली बहुत बड़ी शक्ति है।

मनुष्यका प्राकृतिक आहार क्या है, यह आज एक उलझा हुआ मसला हो गया है और इससे हमारे सही रास्तेसे बहक जानेका खतरा पैदा हो गया है। कहा जाता है कि हमारे शरीरको अल्ब्यूमेन, नाइट्रोजन, पोषक नमक आदिकी अनिवार्य आवश्यकता है।

फिर भी इतना हम जरूर जानते हैं कि हमारी सच्ची खूराक वही है जो अपने प्राकृतिक रूपमें हमारी जीभको रुचती है और हमारी सहज बुद्धि जिसके ग्रहणके लिए हमें प्रेरित करती है। हमारी खूराकमें किन चीजोंका होना जरूरी है और जो कुछ हम खाते हैं वह किस तरह पचकर रक्तमांस बनता है, इस विषयमें पक्के तौरपर हम कुछ भी नहीं जानते। यह हमारे लिए अधिकांशमें प्रकृतिका एक रहस्य है और सदा रहेगा।

हमारा आहार क्या होना चाहिए और हमारे शरीरके सम्यक् पोषणके लिए किन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है इसके विषयमें विज्ञानने जो 'सिद्धांत' हमारे सामने रखे हैं उनसे अधिक बेतुकी बातें इनसानी दिमागसे अबतक नहीं उपजी। यही कारण है कि ये 'सिद्धांत' रोज बदलते रहते हैं।

अत इस मामलेमें हमें खास तौरसे दृढ़ रहना चाहिए और केवल प्रकृतिको अपने जीवन-पथका प्रदर्शक मानना, केवल उसीकी आवाजका अनुसरण करना चाहिए।

चिड़ियेका बच्चा जब घोंसलेसे बाहर निकलकर पहली बार बाहरकी दुनियाके दर्शन करता है तो क्या उसके मनमें क्षणभर भी इसकी उलझन होती है कि उसे अपनी भूख किस चीजसे बुझानी चाहिए? सहज बुद्धि उसे राह बताती है और वह बिना किसी परेशानीके अपनी खूराक पा जाता है।

हिरनका बच्चा घास खाता है, गिलहरीका बच्चा मींगीवाले फलोंकी तलाश करता है और लोमड़ीका बच्चा जनमते ही चूहे खरगोशके पीछे दौड़ने लगता है।

जानवर जन्मसे ही जहरीले पौधों और दूसरी हानिकर चीजोंसे परहेज करने लगता है।

मनुष्य सब प्रकृतिके आदेशका अचूक अनुसरण करता था जब केवल सहज बुद्धि और रुचि अपनी खूराकके पहचाननेमें उसकी पथप्रदर्शिका थी उस आदि युगमें उसने वनस्पतिजगतकी सबसे सुंदर और उत्तम वस्तु—फलको अपने आहारके लिए चुना था। वह घास तो संभवतः चर न सकता था, और छोटे-मोटे जानवरोंको पकड़कर उनका मांस नोचना उसने शायद पसंद न किया हो।

बाइबिल कहती है—'और खुदाने कहा, देखो मैंने हर एक बीजधारी वनस्पतिको जो सारी धरतीपर व्याप्त है और हर एक पेड़को जिसमें बीज उपजानेवाला फल है तुम्हें दिया। यह तुम्हारी खूराक होगी।"

'बीजधारी वनस्पति' और 'बीज उपजानेवाले वृक्ष'का यहां विशेषरूपसे उल्लेख हुआ है। भाव यह है कि फल उपजानेवाले पेड़ मनुष्यके आहार बनाए गए। पृथ्वीपर रहनेवाले पशु-पक्षियोंको उसके कथनानुसार 'हर एक हरे पौधे'का आहार दिया गया।

इस युक्तिसे हम यह अनुमान तो कर ही नहीं सकते कि पेड़ खुद ही इनसानकी खूराक बननेके लिए पैदा किए गए।

दुनियाके जिस-जिस हिस्सेमें इंसान रहा प्रकृति उसके लिए इफरातसे फल-मेवे पैदा करती रही, मनुष्यको उनके उपजानेमें हाथ-पांव नहीं हिलाने पड़ते थे। हां, सब कहीं एक ही तरहके

फल नहीं पैदा होते थे, देश और जलवायुके भेदसे वे भिन्न भिन्न प्रकारके होते थे।

भूमण्डलके इस भाग (यूरोप) में मनुष्यकी पहली खुराक जंगलके बेर, मकोय, करौंदे-जैसे फल थे। पीछे वह पेड़ोंमें लगने वाले फल भी खाने लगा और अखरोट, बादाम-जैसे मींगीवाले फल या मग्ज उसकी खास खुराक हो गए। हर चीज जो कच्ची, शुद्ध, अविकृत दशामें उसे अच्छी लगती थी उसके भोजनकी वस्तु बन गई[1]।

मींगी या गिरीवाले फल सालके बड़े भागमें उपलब्ध हो सकते हैं, प्रकृतिने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि डालियोंसे वह जमीन पर या सूखे पत्तोंमें झड़नेके बाद लंबे अरसेतक अच्छी हालतमें रह सकें।

जबतक जंगलोंकी सफाई नहीं हुई थी और प्रकृति अबाधित रूपसे अपना काम कर सकती थी तबतक मग्जवाले और गूदेदार फल हर जगह इतनी इफरातसे उपजते थे कि मनुष्यको उनसे पूरा भोजन मिल जाय। हमारी परम ममतामयी माता प्रकृतिने अपनी सभी संतानोंके लिए, उनकी सृष्टिके समयसे ही भोजनका प्रबंध कर रखा है, और अपने लाड़ले बेटे मनुष्यके सामने तो उसने शाहाना दस्तरख्वान बिछा दिया है।[2]

---

[1]जो चीजें कच्ची प्राकृतिक दशामें हमारी जीभको रुचती हैं केवल वही हमारा प्राकृतिक भोजन मानी जा सकती हैं क्योंकि बनावटी तौरपर छौंक-बघारकर उत्कटता पैदा करनेवाली सर्वथा अप्राकृतिक चीजें भी जबानको अच्छी लगनेवाली बनाई जा सकती हैं। रसनाको धोखा देना आसान है।

[2]यह सुविदित बात है कि पुराने जमानेमें जर्मन गुफा-युगमें केवल

इस रीतिसे हम आसानीसे और पक्के तौरपर जान सकते है कि हमारी सही खूराक क्या है। पर हम सही रास्तेसे फिर बहक न जाय इसकी सावधानी हमें रखनी होगी। कारण यह कि ज्योंही हम उस रास्तेपर लगते हैं चारों ओरसे हमपर एतराज उठाए जाने लगते हैं। ऐसे आदमी तो सदा रहते ही हैं जो यह समझते हैं कि प्रकृति और उसकी वाणीकी बनिस्वत वह हमारी ज्यादा अच्छी रहनुमाई कर सकते हैं।

लोग जब पहली बार सुनते हैं कि मनुष्यकी सही खूराक क्या है तब आम तौरसे बहुत सशंक हो उठते हैं और सोचते हैं कि हम आजसे ही यह आहार आरंभ कर देना चाहिए। लोगोंके आजके खान-पानपर शंका उठाकर हम उनके हृदयके अति कोमल और दर्दभरे स्थानको स्पर्श करते हैं। अतः आहारके विषयमें अपने विचार, मैं बहुत ही संयत भाषामें प्रकट करूंगा और कोई ऐसी बात न कहूंगा जिसे सुनकर कोई आदमी हिम्मत हार दे।

हर आदमीको सबसे पहले तो पानी, हवा, सूरजकी रोशनी और मिट्टीकी ओर इस पुस्तकमें बताए हुए रास्तेसे, लौटना चाहिए। जो कोई तुरत इस क्रमके साथ पूरा प्राकृतिक आहार न चला सके वह कम-से-कम इतना तो कर सकता है कि अपने भोजनको जितना सादा बना सकता हो बना ले और खासकर हानिकर और नफासतकी चीजोंसे परहेज करे।

इन सबसे ज्यादा जरूरी है मांसभक्षणके विषयमें अपनी जीभको काबूमें रखना। समय लगाकर या धुएमें सुखाकर

जंगली फल खाकर रहते थे। शिकार करना उन्होंने बहुत पीछे सीखा। पर उसके बाद भी फल-मेवे अरसेतक उनका मुख्य भोजन बने रहे।

रखा हुआ मांस अति हानिकर है। सअरका मांस और कीमा भरकर बनाई हुई चीजें तो सबसे खराब होती है।

मांसके बदलेमें हम दूधको अधिक मात्रामें ले सकते हैं। दूधको कच्चा, बिना उबाले ही पीना या दही, मटठे, पनीर आदिके रूपमें खाना चाहिए।

अंडा या अंडेके योगसे बनी हुई चीजें खानेकी सलाह मैं किसीको नहीं दे सकता।

आलू, फलीदार तरकारियां (सेम, कौंच इत्यादि) दाल और रोटी मनुष्यकी प्राकृतिक खूराक नहीं है, यह बात तो बार-बार कही जा चुकी है। अतः इन चीजोंको थोड़ा ही खाना चाहिए।

आलू और फलीदार तरकारियोंके बदले हमें हरी तरकारियां और सलाद पसंद करने चाहिए। ताजा सब्जियोंमेंसे कुछको—हरी मटर, गाजर, शलजम, पालक आदिको—कच्चा ही खाना चाहिए।

रोटी-दाल, फलीदार तरकारियां और आलू देहसे मशक्कत करनेवाले मजदूरके लिए कम हानिकर हैं पर जो लोग शारीरिक श्रम नहीं करते, कलम और दिमागसे रोटी कमाते हैं उन्हें चाहिए तो इन चीजोंसे पूरा परहेज रखना, पर यह न हो सके तो इन्हें थोड़ी मात्रामें ही खाना चाहिए। बीमारीके दिनोंमें तो यह परहेज खास तौरसे जरूरी है।

ताजा फल और मग्जवाले मेवे सदा हमारे दस्तरख्वान-पर होने चाहिए।

केक, मिठाइयां, चाकलेट, कहवा, हलवा, खोया और उससे बने हुए मिष्टान्न आदि हमेशा हाजमेको खराब करते हैं और इस कारण स्वास्थ्यको बिगाड़नेवाले हैं।

फल वह भोजन है जो भगवान हमें देता है, जिसे उसका सूर्य पकाता है। काश अब भी मनुष्य इस दिव्य देनको समझता और उसके अनादरके पापसे बचता! इस न्यामतको अस्वीकार करके उसने प्रकृति और परमेश्वरके प्रति भारी अपराध किया है और इसका दंड अनिवार्य है—रोग और सैकड़ों प्रकारके दुःख-दर्द।

किसी फलदार दरख्तको सुंदर फलोंसे लदा देखकर क्या आपका दिल खुशीसे खिल नहीं उठता? इस दिव्य दृश्यमें क्या आपको प्रकृतिकी आवाज सुनाई नहीं देती?

पकाये हुए आलू, रोटी, दाल, जानवरोंके मुर्दे इत्यादि मन और आंखोंको मोह लेनेवाले ताजा फलोंके सामने क्या चीज हैं? ये पकाये हुए खाद्य मुर्दा और स्वादरहित होते हैं। बिना नमक-मसाला मिलाये जीभको वे रुचते ही नहीं। फलोंमें स्वाद है, दिव्य गंध है, ताजगी और जीवन है।

अप्राकृतिक, पकाये हुए खाद्य हमारी आंतोंके लिए कष्ट-प्रद बोझ होते हैं, हमारे तन-मनको शिथिल, बेदम और जीवनको भारभूत बना देते हैं। पर फल हमारी दुर्बल रोगजर्जर देहमें फिरसे शुद्ध रक्तका संचार करते हैं, उसे प्राण और बल देते हैं।

मनुष्य रोगनाशक दवाओंकी तलाशमें क्यों हैरान होता है? फलमें उसे रोगमुक्त कर देनेका गुण है। प्रकृति यह बनी बनायी दवा उसे दे रही है। फल मीठे स्वादिष्ट होते हैं और उसके दुःख-दर्दकी अचूक ओषधि हैं। फल देवताओंका भाग हैं उसमें अमृत बसता है। मनुष्य क्या प्रकृतिके दिये हुए इस संजीवन रस इस अति मधुर महौषधिको ठुकराता और जहर-से कड़वे काढ़े अर्क पकाता-उतारता और अपने आपको उन्हें

घूटनेके लिए मजबूर करता है, जिसका फल उसे केवल अवर्णनीय दुख-ददके रूपमें मिलता है।

गोलिया, अर्क और काढ़े रोगको दूर नहीं करते।

"तू व्यर्थ ही बहुत-सी दवाएं इस्तेमाल करेगा, क्योंकि तू रोगमुक्त न होगा।"

इंसान इस बातको नहीं जानता कि गोलिया, अर्क और मरहम उसकी तंदुरुस्तीको नाश कर रहे हैं और यह बड़े दुखकी बात है। दुर्भाग्यवश जहरका असर अकसर हमें धोखा देने वाला होता है।

प्रकृति फलको अपने आप उत्पन्न करती है, या यों कहिए कि उसे उपजानेमें इंसानका ज्यादा एहसान नहीं लेती। और अप्राकृतिक आहारको पैदा करनेके लिए मनुष्यको खेतों और बागोंमें लगातार कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। अपना वर्तमान आहार गेहूं, चावल, दाल, आलू आदि उपजानेके लिए हमें सख्त मेहनत और परेशानी उठानी पड़ती है, प्रकृतिको इन्हें पैदा करनेके लिए मजबूर करना पड़ता है।

ऐसी दशामें हमारे लिए यह समझना और बताना कठिन है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक भोजन फलका अनादर क्यों करता है उसकी यह मूर्खता हमारे लिए बहुत बड़ी पहेली है जिसे बूझनेमें हमारी बुद्धि असमर्थ है।

फलको भी हमें उसी दशामें खाना चाहिए जिसमें प्रकृति उसे पैदा करती है। उसे सुखाने, पकाने या बिगड़नेसे बचानेके लिए नमक-मसाला लगानेसे स्वभावत उसका गुण घट जाता है। फलोंका रस निकालना भी प्रकृतिका अनुसरण नहीं है, क्योंकि कृत्रिम विधिसे निकाला हुआ रस उतना स्वास्थ्यकर,

उतना पोषक नहीं होता जितना वह फलकी स्वाभाविक दशामें उसके साथ सेवन करनेसे होता है।

अतः मनुष्यकी खूराकमें गिरीवाले फल सबसे ज्यादा जरूरी चीज माने जाने चाहिए। इस यगमें फल ही मनुष्यको गरमी और शक्ति देते हैं।

जिसके दाँत इस लायक न हों कि बादाम, पिस्ते, अखरोट आदिको अच्छी तरह चबाकर खा सके उसे उन्हें घिस या पीसकर खाना चाहिए। उन्हें घिसनेकी कलें आजकल बिसातवालेकी हर अच्छी दुकानमें मिल सकती हैं।

मैं आम तौरपर 'हेजेलनट'[1] को ज्यादा पसंद करता हूं, क्योंकि यह कुदरती तौरपर पैदा हो सकता है। पर अखरोट और दूसरे मगज भी बहुत अच्छे रहेंगे। छुहारे, खजूर और अखरोट, बादाम आदिको साथ खाना बहुत मजेदार होता है।

कच्चा, बिना उबाला हुआ दूध भी हमारी भोज्य वस्तुओंकी सूचीमें शामिल किया जा सकता है। मक्खन और नरम पनीर या दही भी लिया जा सकता है। हो सके तो दोनोंको बिना नमक मिलाये ही खायें। शुद्ध फलाहार एकबारगी चलाना सबके लिए कठिन है, विरले ही इस व्रतको निभा सकते हैं। इसलिए हमें साधारण आहार और फलाहारके बीचकी मंजिल दूध, मक्खन और रोटीके सहारे बिता लेनेकी सलाह देनी होगी, इनके साथ थोड़ी हरी तरकारी लेना भी जरूरी हो सकता है। स्तन्यपायी पशु (गाय, घोड़ा इत्यादि) का बच्चा भी अब शिशुके आहारसे वयस्क प्राणीके आहारपर आने लगता है तो

---

[1] एक तरहका अखरोट।

कुछ दिन उसके साथ-साथ माके दूध भी पीता रहता है। जान पड़ता है सभ्य स्त्री-पुरुषके बिगड़े हुए पेटको भी इसी तरह धीरे-धीरे फिर शुद्ध प्राकृतिक आहारपर ले जाना होगा। इस संक्रमणके लिए दूध मुझे सबसे अच्छा मालूम होता है।

थोड़ी-सी रोटी भी, त्याज्य पर कुछ कालके लिए अनिवार्य मानकर खायी जा सकती है। रोटी चोकरसमेत गेहूंके आटेकी हो तो ज्यादा अच्छी होगी। हमारी मामूली डबल रोटी बहुत ही दुष्पाच्य होती है, इसलिए मैं उसे खानेकी सलाह नहीं दे सकता। मक्खन, रोटी और अंजीर बहुत ही अच्छा भोजन है।

उबले फल, मुरब्बे आदिके रूपमें सुरक्षित फल और रसभरी आदि ताजा फल भी दहीके साथ खाना बहुत अच्छा भोजन है। ऐसी चीजें फलाहार आरंभ करनेवालोंके लिए खास तौरसे अच्छी है। इससे उनका भोजन एकबारगी बहुत सादा न हो जायगा।

जो लोग पकाये हुए भोजनको एकबारगी न छोड़ सकें वे एक वक्त घी, मक्खन या नारियलके तेलमें पकायी हुई तरकारियां और दो चार आलू भी ले सकते हैं।

इस भोजन-व्यवस्थामें सब तरहके गिरीदार और गूदेदार फल, दूध, मक्खन, रोटी और उबाली हुई सब्जियोंके लेनेकी छूटके साथ फलाहार आसानीसे चलाया जा सकता है। इस व्यवस्थामें आपके घरवालोंको स्वाद और स्वास्थ्य दोनोंका सुख मिलेगा। इस प्रकारके भोजन-सुधारकी आज सख्त जरूरत है। ऊंची श्रेणीवालोंको इस सुधारमें अगुआ होना चाहिए। इस

तरहकी खुराकको उन्हें रोगीके पथ्यरूपमें नहीं बल्कि नित्यके सामान्य भोजनके रूपमें अपनाना चाहिए।

गरीब श्रेणीके लोग पैसेवालोंको गोश्त, शराब, मिठाइ मलाइ, सिगरेट, चाय आदि खाते-पीते देखते हैं तो इसे पसेका सुख समझते ह और उनके अदर भी उसके भोगकी लालसा भड़क उठती है। पर इस सुखकी स्पर्धा करके वे धनिक वर्गके विशेष रोगों और दुर्दशामें भी हिस्सा बटानेकी कोशिश कर रहे हैं। अत ऊपरके दरजेवालोंको चाहिए कि वे इन अप्राकृतिक पदार्थोंके भाजन और सारी घातक विलासिताओंके सुखका त्याग कर नीची श्रेणीवालोंके सामने एक अच्छी मिसाल पेश करें।

पर सच्चे अर्थमें प्रकृतिकी ओर लौटना गरीब-अमीर छोटे-बड़े सभीके लिए सही रास्ता ह, अगर वे चाहते हों कि उन्हें फिर स्वास्थ्य और सुखमय जीवन मिले। प्रकृति वर्ग या दरजेका भेद करना नहीं जानती। पर आजकी स्थितिमें प्रकृतिकी ओर सामान्य रूपसे लौटनेमें क्रम, अतिशय अप्राकृतिक रहन-सहनके बाद प्रकृतिके पुन अनुसरणकी यथोक्त प्रतिक्रियाका प्रारभ ऊची श्रेणीमें ही होना चाहिए।

यगवानमें[1] मने देखा कि समुचित सहायता और परिवर्तन कालके लिए बताये हुए खाने मिलनेपर लाग ऊपर बताये हुए फलाहारको कितनी जल्दी और कितने उत्साहसे साथ अपनाने को तयार हो जाते हैं। यही नहीं, म ऐसे वृद्धोंको जानता

[1] मूल पुस्तकके लेखक एडोल्फ जस्टद्वारा जर्मनीके हार्ट्ज स्थानमें स्थापित आरोग्याश्रम।

है जिन्होंने अपने घरमें इस तरहके भोजनकी व्यवस्था की है और इस सुधारसे सुखी हैं। इन परिवारोंके स्त्री-पुरुष अपने नये भोजन, उसके गुण और स्वादकी जब कभी इसकी चर्चा चलाइए, दिल खोलकर सराहना करते हैं।

अवश्य ही हम चाहें तो अपने दस्तरख्वानको और भी सादा बना सकते हैं। गिरीदार फल और अपने देशमें होनेवाले ऋतुफल बस यही हमारी सबसे अच्छी खूराक और हमारे पोषणके लिए यथेष्ट भी हैं। कुछ रोगोंमें अधिक सादा आहार आवश्यक भी होता है।

बहुतेरे पैसेकी कमीके कारण भी अधिक सादी रहन-सहन रखनेको मजबूर होंगे। पर मैंने जान-बूझकर इस विषयमें जितनी छूट दी जा सकती थी दे दी है।

इस निरामिष भोजनको जिसमें फल मुख्य वस्तु होता है, हम 'नव्य निरामिषवाद' कह सकते हैं।

प्रकृतिने जैसे मांसको मनुष्यका भोजन नहीं बनाया वैसे ही गेहूं, जौ, चावल, दाल, साग, तरकारियां, आलू आदिको भी उसका आहार बननेके लिए नहीं पैदा किया है। कारण यह कि इन चीजोंको हम कच्चा बिना नमक-मसाला मिलाये खायें तो ये हमें अच्छी नहीं लगतीं।

मनुष्य मांस, मद्य, सिगरेट, तबाकू आदि त्याग दे तो उसके दिलपरसे एक भारी बोझ उतर जाता है, उसे भान पड़ता है जैसे वह प्रकृतिके प्रति कोई भारी अपराध कर रहा था, जिससे अब छुटकारा पा गया हो। पर आप फल, रोटी दाल, हरी और फलीदार तरकारियां खाय, और दूध-दही और गिरीवाले फल न खाय तो इस भोजनमें चिकनाईका अभाव होगा जो

और पाचनके अनुकूल है। लोमड़ी मांस और बैल घास खाकर पुष्टिबल प्राप्त करता है। उन्हें गिरीदार फलोंकी गिजा दी जाय तो दोनोंका स्वास्थ्य-बल गिर जायगा। गुबरैलेका आहार गोबर है, पर दुनियामें और भी कोई प्राणी है जो इस आहारपर जी सके ?

इसलिए अगर बैल घास खाकर बलवान और ताकतवर बना रहता है तो इससे यह साबित नहीं होता कि मनुष्य हरी और फलीदार तरकारियों या फल और रोटी खाकर स्वस्थ और सुखी रह सकता है। दूसरी ओर जब गिरीदार फल उसकी खास खुराक होते हैं तब उसका तन-मन अधिक सबल-सशक्त होता है। कारण यह कि यह चीज कच्ची हालतमें उसकी जीभको अच्छी लगती और यह इस बातका सबूत है कि प्रकृतिने यही आहार उसको दिया है। वह वर्षके बड़े भागमें यह भोजन उसके लिए प्रस्तुत भी रखती है।

यह बात बार-बार पुराने और हालके जमानेमें भी कही गई है कि प्रकृतिने मांस नहीं बल्कि वनस्पतिको मनुष्यका आहार बनाया है, पर इस बातपर शायद ही किसीने जोर दिया हो कि प्रकृतिकी योजना यह नहीं है कि आदमी साग-सब्जी, सेम-आलू और दाल-रोटी खाकर रहे, बल्कि यह है कि वह कच्चे और अपने आप पके हुए फल खाय। इस बातकी तो अबतक खास तौरसे उपेक्षा की गई है कि प्रकृतिने फलोंकी गिरियोंको ही उसकी खास खुराक बनाया है।

एक अंग्रेज डाक्टर स्व० डेंसमोरने सबसे पहले प्रकाश्य रूपसे हमारे वर्तमान बिना चिकनाईके निरामिष भोजनमें हमारे स्वास्थ्यके लिए जो खतरा है उसकी ओर हमारा ध्यान

सींचा और बताया कि गिरीदार फल अखरोट, बादाम, चिलगोजा आदि ही मनुष्यका मुख्य भोजन हैं। हमें इसके लिए उसका उपकार मानना चाहिए।

पर डेंसमोरपर भी विज्ञानका जादू बुरी तरह सवार था। इस कारण उसकी पद्धतिमें अनेक दोष रह गये। उसने वैज्ञानिक प्रमाणों, खासकर आंतोंकी बनावटसे इस बातको साबित कर दिया कि मनुष्यकी सही खूराक गिरीवाले फल ही हैं। पर वैज्ञानिक प्रमाणोंका कोई मूल्य नहीं। हमारी चिकित्सा-प्रणालीकी सारी बेतुकी बातें वैज्ञानिक प्रमाणोंसे सही साबित कर दी गई हैं। विज्ञानकी विधिसे हम हर चीजको सही या गलत साबित कर सकते हैं। जिस विज्ञानका आधार प्रकृति नहीं है और फलतः जो आधाररहित है उसका उपयोग इस रीतिसे किया जा सकता है। अतः डेंसमोरके सिद्धांतोंका गलत होना वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध किया जा चुका है। ध्यान देनेकी बात यह है कि डेंसमोरके वैज्ञानिक प्रमाण साधारण जनोंको गूदे और गिरीदार फलोंके मनुष्यका प्राकृतिक आहार होनेका विश्वास न दिला सके और न उन्हें इस खूराककी ओर खींच सके। इसका कारण शायद यह ही कि डेंसमोर भी पहले विज्ञानके नहीं बल्कि दूसरे रास्तोंसे ही इस नतीजेपर पहुंचा।

प्रकृति और उसके नियम अटल, अपरिवर्तनीय हैं, ये सृष्टिके आदिसे प्रलयपर्यन्त ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः मानव-जातिने अपने आप पके हुए फलों और खासकर गिरीवाले फलोंको फिर अपना मुख्य भोजन न बनाया तो वह कभी सच्चे अर्थमें स्वस्थ, सबल और सुखी नहीं होनेकी।

इसके उत्तरमें निश्चय ही यह बात कही जायगी कि बिना फलाहारी बनाये लोगोंके रोग अच्छे किये गये हैं और वे स्वस्थ, सबल भी रहे हैं। पर बात यह है कि जो लोग प्रकृतिके सभी नियमोंका फिर पूरा-पूरा पालन करेंगे उन्हें वह जिस स्वास्थ्य, बल और सुखका दान करेगी और रोगोंको भगानेमें इससे जो चमत्कारिक सफलता प्राप्त होगी आजकी स्थितिमें हम उसकी तनिक भी कल्पना नहीं कर सकते।

प्रस्तुत पुस्तकके आरम्भमें ही मैंने इसे दिखानेकी कोशिश की है कि हवा और रोशनीके बारेमें लोग प्रकृतिसे जो शंका रखते हैं वह कितनी खतरनाक और समझमें न आनेवाली बात है। वैसे ही प्रकृति उन्हें जो आहार देती है उसकी उपयुक्तताका विश्वास न करना भी वैसी ही हानिकर और हमारी अकलमें आनेवाली बात है। क्या यह प्रकट सत्य नहीं है कि हर एक जानदार जब वह प्रकृतिकी दी हुई खुराकपर रहता है तब स्वस्थ, सुंदर, सबल और सुखी होता है। हिरन घास चरकर और शेर मांस खाकर स्वस्थ-सबल रहता है।

यह भी मशहूर बात है कि 'ओरंग-उटान'[1] जिसकी आँखें और पाचनका काम करनेवाले अंग मनुष्यसे इतने मिलते हैं कि पहचाननेमें धोखा हो सकता है, केवल कच्चे फल खाकर रहता है, फिर भी इतना बलवान होता है कि 'गरम देशोंके जंगलोंका दैत्य' कहा जाता है। बहुतोंका विश्वास है कि केवल फलके आहारसे मनुष्यको पूरा बल नहीं मिलेगा। पर आज

---

[1] बोर्नियो, सुमात्राके जंगलोंमें पाया जानेवाला, लंबे हाथोंवाला, बनमानुस बिना पूंछका बंदर।

तो मांस, तरकारी, फलियां, रोटी-दाल और शराब उसका आहार है, और यह बनावटी खराब खाकर भी वह ओरग-ऊटानसे कहीं कमजोर है। उसका आहार विहार-भोजन और रहन-सहन सचमुच प्राकृतिक हो तो वह ओरग-ऊटानसे भी अधिक बलवान हो सकता है। वह सृष्टिका सिरमौर है, सपूर्ण प्राणियोंपर राज करनेके लिए पदा किया गया है। उसकी इद्रियां, देह-मनकी शक्तिया सबसे अधिक विकसित हैं, अत उसे शरीरबलमें भी सभी प्राणियोंसे बहुत आगे होना चाहिए।

दत्यों, असुरोंकी पौराणिक कहानिया भी इस बातका सकेत करती हैं कि आदि युगमें मनुष्य अति बलशाली था।

जानवर पके हुए फलोंकी अपेक्षा कच्चे और अधपके फलों, पौधोंको खाना ज्यादा पसद करते हैं। हर एक अनुभव उनकी इस प्रवृत्तिकी पुष्टि करता है। बच्चे भी जिनकी सहज बुद्धि आज भी बड़ी उम्रवालोंसे बढ़ी है, आमतौरसे कच्चे और अधपके फलोंको ही पसद करते हैं।

प्रकृति-विज्ञानका हर एक पडित इस तथ्यकी ओर ध्यान देता हुआ दिखाइ देता है कि जानवर अपक्व फल-पौधोंको पकेसे ज्यादा पसद करते हैं। मार्टिनके नव प्रकाशित विशाल प्राकृतिक इतिहासमें हम इस बातका उल्लेख पाते हैं कि ओरग-ऊटान अनपके फल खानेका खासतौरसे शौकीन है।

चिड़ियोंके बारेमें यह बात सुविदित है कि वे शाहदाने या विलायती मकोयको, पूरा पकनेके पहले जब वह लाल होने लगते हैं, खाना सबसे ज्यादा पसद करती हैं।

घास चरनेवाले जानवर भी नरम-कच्ची घास और दानेका

ही ज्यादा पसद करते हैं। सूखी घास और पुवाल आदि भी, अगर वह पकनेसे कुछ पहले ही काट लिया गया हो तो उन्हें अधिक रुचता है। अनपका चारा उनके लिए अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर भी होता ह।

जो सेब जाड़के दिनोंमें इस्तेमाल करनेके लिए तोड़कर रख लिए जाते हैं वे अब आम तौरसे अधपके ही तोड़े जाते ह। पूरी तरह पकनेके लिए उन्हें इससे कहीं अधिक दिन डालसे लगा रहना होगा।

ये पके फल खानेसे बच्चोंको दस्त आने लगना और खाज आदिकी शिकायत हो जाना भी इस बातका सबूत ह कि अनपका फल पकेकी वनिस्वत देहको अधिक शक्ति और गति देता ह क्योंकि अतिसार और खालके रोग शोधक उभार हैं। ये सचित विषको शरीरसे बाहर कर देनेकी प्रक्रिया हैं।

अत अनपके और अधपके फलोंसे डरना अब हमें छोड़ देना चाहिए और उन्हें चावसे खाना चाहिए। हमारी बिगड़ी हुइ जीभ भी उन्हें ज्यादा पसद करेगी। हरी तरकारियां, हरी सेम-मटर आदि भी पकी हुइ फलियों और अन्नोंसे, जिनसे हमारी रोटी बनाई जाती ह, अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर होती हैं।

जानवरोको जब फलियां, चना-मटर और पका अन्न अधिक मात्रामें दिये जाते हैं, और खासकर जब उन्हें कडी मेहनत नहीं करनी पड़ती, तब उनकी देहके जोड कडे पड़ जाते हैं और कभी-कभी वे मर भी जाते हैं। इसके विपरीत, घोड़ेको जब कच्चा चारा दिया जाता है—भले ही वह सूखा हो तब उसके जोड लचीले होते ह। इससे साबित होता है कि फलियां और वह गेहू-जो जा पक जानेपर खेतसे काटा गया हो, प्रकृतिकी पसदका आहार नहीं ह, इसलिए इनको खानकी सलाह मैं नहीं दे सकता। इस दृष्टिस

आजके अन्नाहारी हमें पके दाने और मोटे छिलकेवाले गेहूंके बिना छने आटेको अपना मुख्य आहार बनानेकी सलाह देकर भारी गल्ती कर रहे हैं। इस गलतीकी हमें अकसर कडी सजा मिली है।

बहुतोंका खयाल है कि खजूर और अजीर हमारे दांतोंको नुकसान पहुंचाते हैं। जो खजूर और अजीर हम खाते है वे सुखाये हुए होते हैं, अतः अपने प्राकृतिक रूपमें नहीं होते। हो सकता है कि गरम देशोंके सुखाये हुए फलोंमें शक्करका अत्यधिक होना हमारे दांतोंके लिए थोडा अहितकर हो, पर यह बात अधिक हानि करनेवाली है इसमें मुझे शक है। फिर गरम देशोंके फल हमारे लिए अनिवार्य नहीं हैं, उनकी सिफारिश तो मैंने महज इसलिए की है कि इससे हमारे दस्तरख्वानपर खासकर जाडेके दिनोंमें इस तरहकी और चीजें रखी जा सकती है, और यह हमारी जीभको ही नहीं, मन और आंखोंको भी बहुत भाता है। गरम देशोंके ताजा फलों-संतरे मौसबी आदिके खिलाफ तो यह एतराज उठाया ही नहीं जा सकता।

निश्चय ही हमारे फल आज धरतीकी अयाचित देन नहीं हैं हम उन्हें बनावटी विधियोंसे पैदा करते है। फिर भी ये प्रकृतिकी ऐसी देन हैं जो अपनी स्वाभाविक दशामें, बिना पकाये और नमक-मसाला मिलाये, रुचती हैं और इस कारण वनके फलोंकी तरह मजेसे खाए जा सकते हैं।

गरम देशोंके फल (खजूर, अजीर, संतरे, बादाम आदि) हमारी जल-वायुसे भिन्न जल-वायुमें उपजते हैं, और खासकर दक्षिणके देशोंके लिए पैदा किये गये हैं, पर ये हमें कच्ची हालतमें रुचते हैं, इसलिए अप्राकृतिक आहार नहीं माने जा सकते। फलियां, आलू, दाल आदि खाकर हम प्रकृतिकी व्यवस्थासे जितनी दूर चले

जानेका अपराध करते हैं गरम देशोंके फलोंको खाना उसकी तुलनामें प्रकृतिके विधानका बहुत ही हल्का उल्लघन है।

दूध सदा कच्चा ही पीना चाहिए। उबालनेसे वह दुष्पाच्य हो जाता है। दही और मट्ठा भी इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

जगली और बगीचोंमें उपजनेवाले फल जहाँतक हो सके कच्चे, बिना पकाये ही, खाने चाहिए। जब ताजा फल अलभ्य हों तब सुखाए या पकाये हुए फल भी खाये जा सकते हैं।

फलोंको आगपर पकाने या उनका अचार-मुरब्बा बनानेमें शक्करका उपयोग बहुत ही कम करना चाहिए। कृत्रिम विधिसे बनाइ हुइ शक्कर (फलोंके रसमें भरी प्राकृतिक शक्कर नहीं) पेटके लिए बहुत ही हानिकर है। कच्ची या लाल शक्कर अवश्य सफेद शक्कर और मिश्रीसे अच्छी होती है।

खजूरको हम दूध आदिको मीठा करनेके काममें ला सकते है। शहद रोटीके साथ खाया जा सकता है।

खाना धीरे-धीरे और खूब चबाकर खाना चाहिए। जिस भोजनमें लार अच्छी तरह मिली हो उसे आमाशय ज्यादा अच्छी तरह पचा सकता है।

आगपर पकाये हुए खाद्योंकी अपेक्षा फल स्वभावतः धीरे-धीरे खाये जाते है। हम सदा सब बातोंमें प्रकृतिका अनुसरण करते रहें तो हमारा हर काम अपने आप ठीक तौरपर होगा।

मांसाहारसे प्रचलित निरामिषाहार (हरी तरकारियाँ, फलियाँ, रोटी और कोइ फल) पर आना बहुत ही कठिन है, क्योंकि कुछ ही दिनमें अखरोट-बादाम आदिमें रहनेवाली चिकनाइकी इच्छा जोरोंसे होने लगेगी। कुछ दिनोंमें और तरहके कष्ट, बेचैनीकी अनुभूति भी होगी। यद्यपि मांस-मद्यके आहारसे उत्पन्न

विकृतिसूचक लक्षण विदा हो जाएंगे। यही कारण है कि बहुतेरे निरामिषाहारको अधिक दिन चला नहीं सकते, और कुछ दिनोंमें फिर पुराने खान-पानपर आ जाते हैं। पर आगपर न पकाये हुए फल, खासकर मग्जोंके साथ मिलाकर खाये जायें तो पाचनका काम करनेवाले अंगोंका काम तुरत बहुत हलका हो जाता है, और पाचनशक्ति बहुत बढ़ जाती है। इस आहारसे दिमाग भी साफ हो जाता है और सारा जीवन बंधनमुक्त हलका-फुलका और प्रसन्नता से भरा हुआ मालूम होने लगता है। अंतरमें सुख-स्वास्थ्य और आनंदकी ऐसी अनुभूति होने लगती है जो उसके पहले सर्वथा अज्ञात होती है। चूंकि अब शरीरको वे चीजें मिलती होती हैं जो उसके पोषण और बाढ़के लिए आवश्यक हैं इसलिए तन-मनमें शीघ्र ही एक सुखद स्फूर्तिकी अनुभूति होने लगती है, और वह ओजकी नई अनुभूतिके साथ-साथ जीवनमें एक नए, अननुभूत आनंदकी लहरें उठने लगती हैं।

रही हमारी सिर चढ़ाई हुई जीभकी बात। सो वह तो अभ्याससे कुछ दिनमें नितांत स्वादरहित, बल्कि शराब और तंबाकू-जैसी अति अरुचिकर चीजोंमें स्वाद पाना सीख जाती है।

सच तो यह है कि प्रकृति फलको, जिसे ईश्वरीय तेजके प्रतीक स्वयं सूर्यने उगाया-पकाया, जो स्वाद प्रदान करती है, ऊंचे-से-ऊंचे दरजेकी पाकविद्या भी रोटी चावल, साग भाजीमें वह स्वाद पैदा नहीं कर सकती।

कोई आदमी थोड़े दिन भी अप्राकृतिक आहारकी इच्छाको दबा ले तो वह प्राकृतिक भोजनमें जो राजसी पकवानोंसे भी बढ़कर और सच्चा स्वाद है उसका मजा लेना सीख जायगा। वह चाहे तो सदा केवल कच्चे या स्वयं पक्के फल खाकर रह सकता

है, उसकी जीभ उससे कोई दूसरी चीज न मांगगी, और फलोंके दिव्य स्वादकी दिन दिन अधिकाधिक रसिया होती जायगी यहांतक कि पुरानी रहन-सहनको फिर अपनाना उस आदमीके लिए अति कठिन हो जायगा। यही कारण है कि जो लोग पुराने ढंगके निरामिषाहारपर बड़ी कठिनाईसे टिकाये जा सकते हैं वे रसदार और गिरीदार फलोंका आहार एक बार आरंभ करके फिर बड़े चावसे उसका व्रत लिए रहते हैं।

पर इस आहारकी सलाह देते हुए मुझे यह बात एक बार फिर कह देनी होगी कि हमारे आहारमें यह परिवर्तन प्रकृतिके आदेशके जितना ही अधिक अनुकूल होगा उतना ही उन शोधक उभारोंकी अधिक संभावना होगी जो रोगसे छुटकारे और स्वास्थ्यकी प्राप्तिके बीचकी मंजिल माने जाते हैं। ये अनेक रूपोंमें प्रकट हो सकते हैं—हाथ-पांव या जोड़ोंमें दर्द, क्षणिक अवसादकी या और किसी शकलमें। पर ये उपद्रव सदा शुभलक्षण होते हैं। ये इस बातका प्रमाण हैं कि शरीरके शोधनकी रोगके कारणरूप विषके बाहर करनेकी क्रिया पूरे वेगसे चल रही है। इन शोधक उभारोंके बाद रोगीको आरामकी पक्की अनुभूति होती है और रोगी प्रकृतिकी कार्यविधिको थोड़ा भी समझता होगा तो इन उभारोंसे घबरायेगा नहीं।

कभी-कभी यह भी होता है कि यह सोलहों आने प्राकृतिक आहारक्रम चलानेपर कुछ ही दिनोंमें बड़े जोरकी भूख लगने लगती है, और उसे बुझानेके लिए बार-बार भोज्यपदार्थोंकी बड़ी मात्रा पेटमें पहुंचानी पड़ती है। यह भी एक सुलक्षण है, क्योंकि इससे यह साबित है कि शरीर अपने आपको बनानेका काम मुस्तैदीसे शुरू कर रहा है।

प्राकृतिक आहार आरंभ करते ही भूखका भड़क उठना ऐसी बात नहीं है जिससे कोई डरे, कुछ दिनोंमें वह फिर चली जायगी। और अंतमें अप्राकृतिक आहार-कालमें जितना खाना पड़ता था उससे बहुत कममें तृप्ति होने लगेगी और यह अल्प मात्रा बड़ी रुचि और स्वादके साथ खाई जायगी।

माँके दूधको छोड़कर और जो भोजन प्रकृति मनुष्यको देती है सब ठोस शकलमें होता है। जानवरोंमें भी जो कच्चे रसदार घास-पौधे या फल खाकर रहते हैं, बहुत ही कम पानी पीते हैं, एक जातिके हिरन (रो) तो पीते ही नहीं। मुमकिन है, मनुष्य भी आरंभमें अपायी, जल न पीनेवाला प्राणी रहा हो; क्योंकि किसी कृत्रिम साधन मात्रके बिना कुछ पीना उसके लिए अति कठिन है। पर आज वह शोरबे आदिके रूपमें कितना तरल खाद्य खाता और चाय, कहवा, शराब आदिके रूपमें कितना पेय पीता है, इसको हम सोचें तो आसानीसे समझ सकते हैं कि इस विषयमें भी वह प्रकृतिके प्रति कितना बड़ा अपराध कर रहा है।

प्राकृतिक चिकित्साके एक आचार्य रूकायकी चिकित्सा पद्धतिमें केवल कुछ दिनोंतक जल और अन्य पेय पदार्थोंका त्याग करके ही रोग दूर किये जाते हैं।

केवल फल खाकर रहनेवालेको तो जल्दी ही यह अनुभव होने लगता है कि अब उसे प्यास नहीं लगती और पानी या और कुछ पीनेकी जरूरत नहीं है।

और दूसरोंको प्रकृति तो माँके दूधके सिवा केवल पानी ही पीनेके लिए देती है। फलोंके रस भी पिये जा सकते हैं।

हम आपको एक स्वादिष्ट शर्बत बनानेकी विधि बताते हैं—किसी पहाड़ी सोतेका एक बोतल जल लीजिए जिसमें लोहे

या किसी दूसरे उपयोगी खनिज द्रव्यका मिश्रण हो। उसमें एक नीबू और रसभरीका उतना रस निचोडिये जितना उसे स्वाद बनानेके लिए आवश्यक हो। यजमानमें त्यौहारोंपर यह पेय चिकित्सार्थियोंको दिया गया और उन्हें बहुत पसंद आया है। उसे इकट्ठे बैठकर पीना हमारे लिए सदा एक बढ़िया, आनंदजनक गोष्ठी होती है।

अतः अगर त्यौहारों, उत्सवोंपर पानगोष्ठीका आयोजन आवश्यक ही हो तो यह जरूरी नहीं है कि उस मौकेपर हम शराब ही पियें। सेव, संतरे, अंगूरके रससे भी किसीके आयुरारोग्यकी कामना या सम्मानकी रस्म अदा की जा सकती है। उत्साह और प्रसन्नता कुछ नशेका इजारा नहीं है।

फलोंका रस और शरबत सदा शुद्ध और सरल विधिसे बनाया हुआ होना चाहिए, जैसा कि स्त्रियां आम तौरसे घरोंमें बनाया करती हैं।

फलोंके जो शरबत बाजारोंमें बिकते हैं और जिनका बड़े-बड़े नाम देकर विज्ञापन किया जाता है उनमें मिलावटका शक करने-की गुंजाइश जरूर होती है, गो उनमेंसे कुछ अक्सर नेकनीयतीसे तैयार किये जाते हैं।

मांस, नमक और मसालेके आहारसे हमें आज जो अप्राकृ-तिक प्यास लगती है उसे बुझानेके लिए हमें तीक्ष्ण, उत्तेजक पेयों-की आवश्यकता होती है। हमारा ढीला-ढाला मेदस नाड़ी-संस्थान भी कभी-कभी उत्तेजना मांगता है पर उत्तेजित किये जानेके कुछ देर बाद वह अपने आपको अधिक अशक्त पाता है। इसी तरह मनुष्य शराब-खोरी, चाय, महुयेका आदी बना। मैं समझता हूं, इस बातको साबित करनेकी जरूरत नहीं है कि शराब प्रकृतिके

किस तरह विरुद्ध है और इस पिशाचीने मानव जातिपर हर शक्लमें कैसी आफतें ढाई हैं।

शराब ज्यादा पीनेसे जितनी हानि करती है थोड़ी मात्रामें लेनेसे अवश्य ही उसकी तुलनामें कम नुकसान करती है। जो डाक्टर यह मान लेते हैं कि जौ या अंगूरकी शराब थोड़ी मात्रामें दी जाय तो कोई हानि नहीं करती, बल्कि शक्तिवर्धक होती है, और यह मानकर अपने रोगियोंके लिए उसकी तजवीज करते हैं, वह अति शोचनीय भूल करते हैं। शराबसे पैदा होनेवाली थोड़ी-सी बनावटी उत्तेजना भी जो कुछ देर बाद उससे कहीं अधिक सुस्ती—शिथिलता पैदा कर देती है, तन्दुरुस्त आदमीके लिए भी अति हानिकर है, रोगीके लिए तो और भी अधिक हानिकर होनी चाहिए।

पुरुष आज शराब और बीड़ी-सिगरेटके अत्यधिक सेवनसे अपने स्वास्थ्यकी जो हानि कर रहे हैं स्त्रियां उसकी वही हानि कहवा पीकर करनेकी कोशिश कर रही हैं। कहवा आज हमारे नारी-समाजमें बहुत अधिक रोग-क्लेशका कारण हो रहा है। जबतक इस व्यसनके पंजेसे अपने आपको छुड़ा न लें तबतक कोई भी स्त्री सच्चे स्वास्थ्यके रास्तेपर नहीं लग सकती। जौ-गेहूंके सत्तसे बनाया हुआ कहवा स्वभावतः असली कहवेके जितना हानिकर नहीं होता। पर इस तरहके कहवेका इस्तेमाल भी धीरे धीरे घटाकर अंतमें बिल्कुल बंद कर देना इष्ट है, क्योंकि तरल खाद्यकी अधिक मात्रा सदा हानिकर होती है।

ताजा, रसदार फल जितना ही अधिक खाया जायगा पानी और पतली चीजोंकी इच्छा उतनी ही घटती जायगी। शराबके व्यसनका तो एकमात्र इलाज प्राकृतिक आहार है।

प्राकृतिक जीवनके विरोधियोंके पास तरह-तरहकी शंकाएं और आपत्तियां हैं। एक साहब पूछते हैं, अगर दुनियाके सारे लोग फिर प्राकृतिक ढंगसे जीवन बिताने लगें तो इतने सेब-संतरे, बादाम-अखरोट आयेंगे कहांसे ? दूसरे महाशयको यह चिंता सता रही है कि ये इतने बूचड़, मोची, नानबाइ, पंसारी आदि क्या करेंगे जो उस दशामें बेरोजगार हो जाएंगे।

हर आदमी जो आज प्राकृतिक आहारपर रहना चाहता हो उन चीजोंको आसानीसे पा सकता है जो उसके पोषणके लिए जरूरी है।

फिर भी फलोंकी मांग बढ़ जाय तो उनकी उपज आसानीसे बढ़ाइ जा सकती है। जो जमीन आज चरागाह और उन चीजोंके उपजानेमें, जो मनुष्यके लिए बेकार ही नहीं हानिकर भी हैं (तंबाकू, शलजम, आलू, अनाज आदि), आज फंसी हुइ है वह फल उपजानेके काममें लाइ जायगी।

आज तो राजमार्गोंके आसपासकी और बंजर, बेकार जमीन ही फलोंके पेड़, बाग लगानेके काममें लाइ जाती है। जंगली फलों बेर-करौंदे, रसभरी आदिकी झाड़ियां घास पात समझी जाती है और खोद-उखाड़कर फेंक दी जा रही हैं।

सच पूछिये तो मनुष्य अपने जीवन क्रम अपनी रहन-सहनमें प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे जितना ही दूर हटा है, और सभ्यता तथा विज्ञान जितना ही आगे बढ़े हैं, उसकी दशा उतनी ही बिगड़ गइ है और वह फिर प्रकृतिकी ओर जितना बढ़ेगा, उसी अंशमें उसकी दशा सुधरती जायगी। मानव-जीवनके आदि युगमें तरह-तरहके धंधे-पेशे नहीं थे और मनुष्य सुखी थे। आज यह स्थिति हो जाय कि वे हमारे लिए फिर बेकार हो जाएं तो सभी मनुष्य फिर दुनिया-

के सुख भोगने लगें गो यह बात बहुतोंको अनहोनी-सी लगेगी।

मैं हरएक फलाहारीसे प्रार्थना करूंगा कि वह अब भी फलोंका उत्पादन बढानेके लिए जो कुछ उसके किये हो सकता हो वह करे।

मनुष्यका पाचन-यन्त्र अपनी बनावट और पुरजोंकी तरतीबके विचारसे केवल फलाहारके उपयुक्त है, अत केवल फल ही उसे आसानीसे और पूरी तरह पच सकता है।

जो आदमी केवल फल खाकर रहता है उसके शरीरमें विजातीय द्रव्य अथवा मलकी वृद्धि तुरत रुक जाती है, और पाचनका काम करनेवाले अवयव संचित विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेका काम ज्यादा मुस्तैदीसे करने लगते हैं, फल इस शुद्धि-की क्रियाको उत्तेजन देता है।

कच्चा या अपने आप पका हुआ फल कितनी आसानीसे पच जाता है—और उसमें आरोग्य तथा जीवनदानकी कैसी अद्भुत शक्ति है इसका विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रोगोंको दूर करनेमें फलाहारसे कितनी मदद मिलेगी।

फलाहारसे मिली हुई सफलता निस्सदेह आश्चर्यजनक है। उसकी बदौलत अकसर ऐसे रोगियोंको भी स्वास्थ्यकी पुनःप्राप्ति हुई है जिनकी सारी जीवनशक्ति समाप्त दिखाई देती है और नैराश्यके सिवा और कुछ शेष नहीं जान पडता।

तब भी क्यों हम फलकी उपेक्षा कर सब तरहके अस्वाभाविक खाद्यों और दवाओंका सहारा लेते है?

हर एक जानवर बीमार होते ही खाना छोड देता है।

रोगकी अवस्थामें मनुष्यको चाहिए कि अपना

भोजन जितना घटा सकता हो घटा दे। कम-से-कम उसे इतना तो करना ही चाहिए कि जब पेट माँगे, यानी जब जोरकी भूख लगे तभी खाय।

बीच-बीचमें एक-दो वक्त कुछ भी न खाना स्वास्थ्यके लिए अति हितकर है।

उपवासकी बड़ाई, हजरत ईसाने भी की है। उन्होंने कहा है—"फिर भी यह चीज प्रार्थना और उपवासके बिना नहीं जाती।"

बहुतोंका खयाल है कि जब वह बीमार हों और भूख न लगी हो तब भी उन्हें पेटमें कुछ खाना ठूँस ही लेना चाहिए, जिससे शरीर ज्यादा कमजोर न हो जाय। पर यह धारणा एक घातक भ्रम है।

जब पेट खाना नहीं माँगता तब वह उसे पचानेके काबिल नहीं होता। ऐसी दशामें बिना भूखके जो भोजन उसमें डाला जाता है वह उसके लिए भाररूप हो जाता है। यह बात बुरी तो हर वक्त है, पर बीमारीकी हालतमें खास तौरसे हानिकर होती है। कभी-कभी तो खतरनाक भी हो जाती है। खानेका अधिक आग्रह तदुरुस्त आदमीसे भी नहीं किया जाना चाहिए। बीमारसे तो हर्गिज नहीं करना चाहिए। अपने बच्चोंको हृष्ट, पुष्ट देखनेके लिए बेचैन माताएं इस विषयमें उसका अहित करनेका अधिक पाप न करें तो बहुत अच्छा हो।

बनावटी भोजनको जरूरतसे ज्यादा खा लेनेका खतरा सदा रहता है। पर प्राकृतिक आहार (कच्चा और पेड़पर पका हुआ फल) में प्रकृतिने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि उसे जरूरतसे ज्यादा

खा लेना आसान नहीं है। अतः बीमारीकी दशामें केवल फल खाया जाय तो उसके अधिक खा लेनेका उतना डर न होगा।

प्राकृतिक जीवन क्रमका वर्णन करनेमें अबतक मेरा उद्देश्य यह बताना रहा है कि मनुष्यके भौतिक जीवन, उसके शरीरको इससे क्या-क्या लाभ हो सकते हैं। मैंने यह बतानेकी कोशिश की है कि जिन अवस्थाओंको हम रोग कहते हैं प्रकृतिकी ओर लौटनेकी साधना—उसके बताये हुए रास्तेपर फिरसे चलनेसे वे किस तरह बचाई और दूर की जा सकती हैं।

पर प्रकृतिमें हर चीजका एक दूसरेसे पूरा मेल, लगाव है, और मनुष्यमें भी देह, मन और आत्मा एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते। देह मन और आत्माका धारण-पोषण करती है, और वैसे ही मन और आत्मा भी देहपर सदा अपना असर डालते हैं।

परमात्माने मनुष्यको सर्वथा स्वस्थ और सुंदर ही नहीं, नितांत नेक और भला भी पैदा किया था। वह संपूर्ण सृष्टिका शिरोमुकुट है। स्वयं ज्ञानरूप और सद्रूप परमात्माकी सर्वश्रेष्ठ कृति शरीर, मन और आत्माकी खोटखामियोंसे भरी हुई नहीं हो सकती।

मनुष्यका मन आज सब प्रकारकी पापमय वासनाओंका आगार हो रहा है। वह अपनी सारी शक्ति और साधनोंसे उनसे लड़ता है, पर बार-बार उनसे हारकर पापके गढ़ेमें गिरता है। इन कुप्रवृत्तियोंपर विजय पानेके लिए वह अध्यवसाय और प्रयत्न भी अपनी सारी शक्ति लगाकर बारबार करता है, पर हर बार हार खाता और उनके अधीन होता है। अतः अगर परमेश्वरने इनके साथ ही उसे सिरजा है—ये पापकी ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियां और वासनाएं उसका स्वभाव हैं—तो वह खुद भला और नेक

होगा, वह खुदा न होकर शैतान होगा जिसे पुण्यसे नहीं बल्कि पापसे प्रसन्नता होती है। पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। मनुष्यका पापमय होना उसके अपने प्रकृति-विरोधी जीवनक्रमका फल है। एक मना की हुई चीजको खा लेना—प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे च्युत होना—ही तो स्वर्गसे उसके पतनका कारण है ?

मिसालके तौरपर, मुक्त, अबाध प्रकृतिमें पशु-पक्षियोंका नियम केवल सतानोत्पादनके लिए ही मैथुन करना है। गर्भ धारणके बाद वे खुद तो यह क्रिया बंद कर ही देते हैं, कोई उन्हें किसी भी उपायसे इसके लिए मजबूर भी नहीं कर सकता। ठीक यही हाल मनुष्यका है। प्रकृतिके आदेशानुसार जीवन बिताकर वह ज्यों-ज्यों तन-मनसे स्वस्थ होता जाता है त्यों-त्यों व्यभिचार और दूसरे पापोंसे बचना उसके लिए आसान होता जाता है। यही नहीं, कुछ दिनोंमें उससे उनका होना सर्वथा अशक्य हो जाता है। जब वह यह स्थिति प्राप्त कर लेता है तभी सच्चे अर्थमें सुधरा हुआ कहा जा सकता है।

आदि युगमें मनुष्यको मन और आत्माका पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त था। उस स्थितिसे वह जितना भी हटा, गिरा है, सब शरीरकी विकृतियोंके कारण हुआ है। विजातीय द्रव्य सारी इंद्रियों, अगोंको नुकसान पहुचाते हैं—उन अगोंको भी जो मन और आत्माको देह से मिलाते हैं। पर आज किसीके दिमागमें यह बात नहीं घुसती कि प्रकृतिके नियमोंके अनुसार शरीरको सम्हाल रखकर हम बौड़मपन, पागलपन, अन्यमनस्कता, उदासीनता, बदमिजाजी, विषाद रोग, चिंताधिक्य, विषय-लोलुपता, जवानीकी कुचालों बुरी आदतों, पाप-अपराधकी प्रवृत्ति, काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, दूसरोंका बुरा चाहना आदि मानस दोषोंको दूर भगा सकते हैं।

जो हो अगर साथ-साथ शरीरकी भी, प्राकृतिक विधिसे वैसी ही सम्हाल न रखी जाय तो नीति, शिक्षा और मन आत्माके सस्कारके लिए किया हुआ सारा श्रम व्यय जायगा, बल्कि हो सकता है उससे हमारी दशा और बुरी हो जाय।

यूनानके पुराण हमें 'डानेइदीज'की कथा सुनाते हैं। ये डैनेअस नामक राजाकी बेटियाँ थीं। बापके आदेशसे इन्होंने अपने पतियोंको सुहागरातमें ही कतल कर दिया। इस अपराधका दड उन्हें यह दिया गया कि मृत्युके बाद प्रेतलोकमें छलनीमें सदा पानी भरती रहें।

जो लोग आज मनुष्यको प्रकृतिकी ओर वापस जानेके रास्ते-पर लगाए बिना ही उन्हें अधिक भला और सुखी बनानेकी कोशिश कर रहे ह वे भी डानेइदीजका ही काम कर रहे हैं। वे भी छलनीको हमेशा पानीमें डुबो रहे हैं जो कभी भरने-की नहीं।

बेशक वे सारे विधानकार और लोकोपकारव्रती, जो प्राकृ-तिक जीवन क्रमके महत्त्वके विषयमें बिल्कुल कोरे हैं, अकसर केवल बुराइको बढानेका ही पुण्य कमाते ह। मिसालके तौरपर हम वेश्यावृत्तिके विरुद्ध, जो एक खुली बुराइ ह, लडते हैं और इसस गुप्त पापकी वृद्धिमात्र करनेका फल पाते हैं जो प्रकट वेश्यावृत्तिसे ज्यादा खराब और खतरनाक ह।

दुनियाकी सारी बुराइ, सारा पाप, जो आज मानव-जातिके लिए भयानक दैत्यरूप हो रहा है, नष्ट किया जा सकता है, पर केवल एक ही चीज हमें इसका बल-सामर्थ्य दे सकती है—प्रकृति-की ओर लौटना।

बाइबिल कहती है—"इस प्रकार इश्वरने मनुष्यको अपने

स्वरूपमें उत्पन्न किया। उसने ईश्वरकेस्वरूपमें उसे उत्पन्न किया।"

परमेश्वर प्रेमरूप है और मनुष्य इस विषयमें उसकी समता करता है—उसका प्रतिरूप है। भगवान और अपने भाइयोंको प्यार करना ही आरभमें मनुष्यका स्वभाव था।

मनुष्य जब प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे च्युत हुआ तो उसके फल-रूपमें उसे जो शारीरिक दुःख-दर्द मिले उनके साथ-साथ उसकी आत्मापर भी मलके छींटे पड गये। विषय-सुखकी वासना बहुविध बीभत्स रूपोंमें प्रकट हुई—कामुकता उनमें सबसे बडी बुराई थी। मनुष्यका प्रेम मलिन, दूषित हो गया। उसके मानसमें द्वेषका अकुर उगा और द्वेषसे ईर्ष्या, दूसरोंका बुरा चाहनेकी वृत्ति और परमेश्वर तथा अपने बधु मानव-सतानोंके प्रति किए जानेवाले सारे पापोंका वृक्ष बढा। परमेश्वरकी प्रतिमा उसमें अधिकाधिक लुप्त होती गई।

प्रकृतिके राज्यमें हम देखते हैं कि सभी मांसभक्षी प्राणी क्रूर हिंस्र स्वभावके होते हैं, और घास-पात खानेवाले पशु सीधे और शांतिप्रिय होते ह। बिना पूछके बदर (एप) और कुत्तेको ज्यों ही मासकी खूराक मिलने लगती है ये कटहे और खतरनाक हो जाते हैं। पुच्छहीन बदर तो कुछ दिन इस खूराकपर रहते ही हद दरजेका लपट हो जाता ह।

अत प्रकृतिकी बताई विधिसे जीवन बिताना केवल पेटका प्रश्न नहीं है। उसके जरिए हम केवल अपनी देहका दुःख-दर्द ही दूर करना नहीं चाहते, बल्कि इससे उच्चतर लक्ष्याको—उस वस्तुको भी प्राप्त करना चाहते हैं जो सदाचार और धर्मका चरम लक्ष्य ह। इस पथके अनुसरणसे मनुष्यको परमेश्वरकी प्रतिरूपता पुन अधिकाधिक प्राप्त होती जायगी।

मास और शराब

प्रकृतिने मनुष्यको मास खानेवाला शिकारी जानवर नहीं बनाया है।

मनुष्यको कच्चा मास अच्छा नहीं लगता, उसे उसके बनाने, पकाने, बघारने, छौंकने और उसमें मसाला मिलानेकी जरूरत होती ही है। उसे मांसके साथ और कुछ न सही नमक तो चाहिए ही।

जब हिंसक पशु अपना शिकार मार लेता है तब वह उल्लाससे भर जाता है और ताजा खून पीकर मतवाला-सा हो जाता है।

पर मनुष्य, जो पूर्णतया पशु नहीं हो गया है, हत्या करनेसे घबराता है। जब वह पशुको, जिसे मनुष्यका सजातीय ही कहना चाहिए, मारनेके लिए खूखार अस्त्र उठाता है तो उसका विवेक उसे हमेशा ऐसा करनेसे रोकता है। मरते हुए पशुका छटपटाना देखकर कठोर-से-कठोर हृदय पिघल जाता है। मांस खानेवालोंको यदि जानवरको स्वय अपने हाथो मारकर खाना पडे तो अधिकांश न खाना ही पसद करेंगे। कच्चा, बिना पका मांस अथवा कसाइकी दूकानमें रखी पशुकी लाश देखकर सभीका मन घृणासे भर जाता है। अत अनेक स्थानोमें मांसको खुला ले जानेके विरुद्ध कानून बन गये हैं।

मनुष्य इस सबधमें भी प्रकृति, अपने विवेक, रसना, घ्राण-शक्ति, आंख और नैसर्गिक बुद्धिकी बात क्यो नहीं सुनता? क्या ऐसा कर सकना बहुत सरल नहीं है?

मनुष्य इस प्रकारके वैज्ञानिक अनुसधानमें कि वह पशुकी मांस भक्षी जातिका है या सब-भक्षी सूअर, भालू आदि जातिका है, क्यों अपनी शक्ति व्यर्थ खच करता है? पशुकी ये दोनों ही

जातियां तो मनुष्यको सदासे क्रूर और निर्दयी प्रतीत होती हैं और इस नाते वह इनसे सदा घृणा करता रहा है।

मांस मनुष्यके लिए उचित भोजन है या नहीं इस प्रश्नकी छान-बीन मनुष्य उन सरल साधनोंसे नहीं करता जो प्रकृतिने उसे दिये है। वह दांत और आंतका अध्ययन करता है, मांसके अवयवोंको जाननेकी कोशिश करता है—यह मनुष्यकी अस्वस्थ ज्ञान पिपासाका दूसरा प्रमाण है।

अनेक विद्वानोंने, जिन्हें मांस खाना निश्चय ही बहुत प्रिय रहा है, कहा है कि मनुष्यके दांतोंको देखकर कहा जा सकता है कि मनुष्य अंशत: मांसाहारी है और आज भी ऐसे बहुतसे लोग हैं जो उनके इस रागको बिना समझे-बूझे अलाप रहे हैं।

जो कुछ भी हो अपने शिकारको पकड़ने और फाड़नेके जैसे नाखून और दांत शिकारी जानवरोंके होते हैं वैसे मनुष्यके नहीं हैं। इसी तरह मांस भक्षी पशुकी पाचन प्रणाली भी मनुष्यकी पाचन-प्रणालीसे सर्वथा भिन्न होती है।

शिकारी जानवर, मसलन कुत्ता मांसके साथ-साथ हड्डी भी खा सकता है, पर मनुष्य तो ऐसा नहीं कर सकता। इससे यह साबित होता है कि मनुष्यका आमाशय इन पशुओंसे सर्वथा भिन्न प्रकारका है।

मनुष्यके दांत और आंतकी, फल और शाक खाकर रहनेवालोंकी और मांस भक्षी तथा सर्व भक्षी पशुओंके दांतों और आंतोंसे तुलना करनेपर प्रतीत होता है कि मनुष्य शिकारी पशुओं की जातिका न होकर फल और शाक खानेवाली जातिका ही है। हाथी और चूहोंके दांतोंमें जो साम्य है उससे अधिक साम्य मनुष्य और मांस भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओंके दाढ़ और आंतोंमें नहीं

है। मनुष्यकी आंतोंकी लंबाई भी बताती है कि मांस उनके अनुकूल नहीं है।

यदि प्रकृतिने मनुष्यके लिए मांस नहीं बनाया है तो उसका उपयोग मनुष्यके लिए अवश्य ही क्षतिकारक है। मनुष्य मांस खाकर स्वस्थ और मजबूत नहीं बनता वरन् बीमार पड़ता है और कमजोर होता है।

कहा जाता है कि मनुष्यको मांस खाना चाहिए, क्योंकि उसमें चर्बी होती है जो आदमीको सर्दीसे बचाती है। अगर यही बात है तो शरीरमें आवश्यक गर्मी स्नेहप्रधान मेवे खाकर क्यों नहीं उपजाई जाती? इन मेवोंमें मनुष्यके लिए प्राकृतिक चिकनाई पाई जाती है और उनमें वे सब चीजें नहीं होतीं जो मनुष्यके लिए हानिकारक और जहरीली हैं।

ग्रीनलैंडमें न शाक होते हैं न मेवे, जिनसे वहांके निवासी, जिन्हें एसकिमो कहते हैं, पोषण पा सकें। अतः वे लोग उत्तरी ध्रुवकी वह कड़ाकेकी सर्दी मांस और पशुकी चर्बी खाकर बर्दाश्त करते हैं। यह हो सकता है कि चर्बीके आहारके कारण एसकिमो उत्तरकी सर्दीमें रह पाता है, पर उसके इस अप्राकृतिक भोजनके कारण उसका शरीर कुरूप और भद्दा हो गया है और उसका मस्तिष्क बिलकुल जड़।

लोग अक्सर अपने अप्राकृतिक जीवन मांस और शराबकी आदतको खराब मौसमके बहानेके पीछे छिपाते हैं। मौसमकी आड़ लेकर वे प्राकृतिक जीवनके विरुद्ध बड़े-बड़े पाप करते हैं, मौसम उनका विवेक दबा देता है। फलाहार अप्राकृतिक खाद्योंकी अपेक्षा मनुष्यको सर्दी और गरमी सहनेकी अधिक शक्ति देता है।

ऐसा माननेकी तो गुंजाइश नहीं है कि मनुष्यको, जो पृथ्वी का सर्वाधिक विकसित प्राणी है, पृथ्वीके एक अंशपर ही रहनेके लिए बनाया गया था। बाइबिल कहती है "पृथ्वीको परिपूर्ण कर।"

पर सारी पृथ्वीको भरनेके लिए, पृथ्वीके प्रत्येक भागमें रहनेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने प्राकृतिक भोजनको छोड़े।

उष्ण कटिबंधके उष्णतम भाग और उत्तरके शीततम भाग मनुष्यके रहने योग्य नहीं हैं। पर यदि यह समझा जाय कि प्रकृतिने मनुष्यको गरम जगहमें रहनेके लिए बनाया है तो भी उसे अपना अप्राकृतिक जीवन छोड़कर प्राकृतिक जीवन ही व्यतीत करना आरंभ करना चाहिए। इससे उसकी नैसर्गिक बुद्धि अधिकाधिक जागृत होगी और वे गरम जगहमें रहना पसंद करेंगे। पर वास्तवमें शीतोष्ण कटिबंध ही मनुष्यके रहनेके अधिक उपयुक्त हैं। अपने इस कथनपर मैं अधिक प्रकाश आगे डालूंगा।

मनुष्य ईश्वरकी प्रतिमूर्ति है। उसे इस पृथ्वीकी बादशाहत मलमसाहत और दयालुताके भरोसे करनी चाहिए। जब वह अपने भोजनके लिए पशुकी हत्या करता है या उसकी हत्याका कारण होता है तो, वह अपने हृदयके अंतर्नादके विरुद्ध चलता है। आज तो मनुष्य अपने इन बांधवोंके खूनसे अपने हाथ लाल कर रहा है। भोजन प्राप्त करनेके लिए किये गये इस पापके फलस्वरूप उसे बहुत कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी।

इस दृष्टिसे मांस खाना अप्राकृतिक रिवाज है, प्रकृतिकी

अवशा है जिसका परिणाम बहुत बुरा और खतरनाक होना चाहिए। अप्राकृतिक मांस और अन्य अप्राकृतिक खाद्योंको खानपर उनका ठीक पाचन नहीं हो पाता। इस तरह खाया हुआ मांस न पचनेपर पेटमें पड़ा सड़ता रहता है, सड़नसे उठा हुआ खमीर शरीर और उसके रक्तमें फैलता रहता है जिसकी वजहसे अनेक प्रकारकी सूजन उत्पन्न करनेवाली और बुरी-बुरी बीमारियां पैदा होती हैं।

ग्रीसकी पौराणिक कथाओंमें ओरेस्टेसकी कथा आती है, जिसमें उसने कोई भयानक हत्या की थी और इसका बोझ उसकी आत्मापर बराबर पड़ा रहता था, उस हत्याका बदला लनेके लिए इरिनिस नामक देवता उसपर बराबर सवार रहता था। आज मनुष्य-जातिका विवेक अपनी की गई हत्याओंके बोझसे दवा पड़ा है और उसे पृथ्वीपर कहीं सुख और शांति नहीं मिल रही है।

मांसकी गरमी और उसे स्वादिष्ट बनानेके लिए उसमें डाले गये मसाले और नमक हमेशा नशीले पेय और शराब पीनकी इच्छा पदा करते हैं। इस प्रकार मांस खाना, छिपे हुए शतान, शराबके घरका दरवाजा खोल देता है। शराब मांसका भाई है, जो निहायत ही पाजी और शरारती है और हमेशा अपने भाइके साथ रहता है। शराब तनिक-सी पी जाय या बहुत-सी, पर क्या किसीसे भी इसका हानिप्रद और खतरनाक रूप छिप सकता है?

शराब स्नायुओंको उत्तेजित करता है और इसको पीनेवाला सुंदर सपनोंकी मायामें पहुंच जाता है। पर जब नशा उतरता है तो उसकी प्रतिक्रियास्वरूप यह दुनिया उसे नीरस

और शून्य लगती है, उसकी यथार्थता उसे कष्ट और पीड़ा पहुचाती है। शराब पीनेवाले समझते हं कि शराबसे उन्हें शक्ति मिलती ह पर वास्तवमें वे धोखमें रहते ह। बनावटी तरीकेसे पदा की गइ उत्तेजना स्वास्थ्यके लिए अत्यत हानिकर है। यदि शराबके क्षणिक प्रभावके भुलावेमें न पड़ा जाय तो यह तुरत समझमें आ जाता है कि शराब शरीरको बहुत कमजोर कर रही है और स्नायु खास तौरसे छिन्न-भिन्न होते जा रह हं। शराबसे आत्मा पतित और मस्तिष्क कमजोर होता ह। फलत मनुष्य पाप और दोषकी ओर अग्रसर होता ह।

जो मांस नहीं खाता उसकी मानसिक वृत्ति सदा ऐसी रहती ह कि उसे शराबका सुदर किंतु क्षणिक साथ ही मायावी स्वप्न-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं होती।

पर यदि मांस शरीर और आत्माके लिए इतना हानिकारक ह तो सवाल यह उठता ह कि क्या बाइबिल और इसाने मांसका विरोध नहीं किया है? क्या ही अच्छा होता यदि हम फिर अपने जीवनके प्रत्येक कायके लिए इसा और बाइबिलसे अधिक-से-अधिक पथप्रदशन ग्रहण करते!

तौरेतके पुराने अनुवादोंमें अनेक भूलें हैं और कुछ तो इतनी भद्दी भूलें हैं कि उनसे मांसके सबधमें उपदेश उल्टे अधिक अस्पष्ट हो गये हैं।

खुदाका बनाया पहला कानून यह ह

"देख, धरतीपर जितने दानेवाले पौधे हैं वह सब मने तेरे लिए उपजाये ह, ये तेरे लिए मांस (भोजन) का काम करेंगे।"

इस प्रकार इस उपदेशमें हम देखते हैं कि इस कानूनसे मनुष्यको मांस खानेका हुक्म नहीं है।

यह कानून हर आदमीकी आत्मापर अंकित कर दिया गया था, और कोई दूसरा हुक्म अलावा इसके मनुष्यको नहीं दिया गया था। सर्वशक्तिमान् ईश्वरको मनुष्यपर शासन करनेके लिए एकसे अधिक कानूनकी क्या जरूरत हो सकती थी ?

अगर मनुष्यने ईश्वर[1] का बनाया यह पहला कानून माना होता तो दूसरे अन्य कानून और मनुष्यके बनाये आजतकके हजारों कानूनोंकी जरूरत ही न होती।

ईश्वरका बनाया यह पहला नियम बाइबिलमें आगे चलकर फिर दुहराया गया है, उसमें एक रोक लगानेवाला वाक्य जोड़ दिया गया है और दण्ड देनेकी धमकी भी दी गई है

"बागके हर पेड़के फल तू खुशीसे खा सकता है, पर ज्ञान, भले और बुरेकी समझवाले पेड़से पैदा हुएको न खाना। अगर तूने उसे खाया तो तुझे मौतकी सजा मिलेगी।"

भला ज्ञानका पेड़ क्या हो सकता है ? कहीं पेड़में भी भलाई और बुराईको समझनेकी ताकत होती है ?

शुरूमें जिस भाषामें और जिस समय बाइबिल लिखी गई थी उसमें शब्दोंका बड़ा दारिद्रय था, उसमें उन वृक्षों (पेड़)के लिए जो पृथ्वीमें अच्छी तरह गड़े थे और उन वृक्षों (पशु) के लिए जो विकासोन्मुख होकर पृथ्वीसे अलग हो गए थे एक ही

---

[1]यदि मनुष्य प्रकृति-पथसे न हटा होता वह गलत रास्ता न पकड़ता तो न उसे हत्या करनेकी इच्छा होती न झूठ बोलनेकी जरूरत न वह चोरी करता और न अन्य कोई भी अनैतिक काय। ऐसी दशामें उसे अपने अंतरकी उस आवाजको जगानेकी जरूरत नहीं होती जो उसे ईश्वर और अपने भाइयोंके विरुद्ध इन पापोंको करनेसे रोकती है।

शब्द ह 'मूस'। पशु और वृक्षसे भेद करनेके लिए "ज्ञान", भलाइ और बुराइकी पहचान आदि विशेषण लगाये गये हैं। वनस्पति-वर्ग और पशु-वर्गमें बहुत निकटका संबंध है। विज्ञान आजकी पौधों और पशु (अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा देखे जाने योग्य कृमि, मूगा बनानेवाले कीड़े) के बीचकी सीमा निर्धारित नहीं कर पा रहा है। पर आज पशु और पौधोंमें खास फर्क यह समझा जाता ह कि पशुमें अनुभव करने और समझनेकी शक्ति होती है।

इसलिए बाइबिलमें वृक्षोंसे पशुओंको अलग करनेके लिए "बुराइ और भलाइको समझनेवाला" यह वाक्यांश जोड़ा ह। बाइबिलमें पशुको एक जगह 'सजीव वृक्ष' कहा है, अर्थात् वृक्ष (प्राणी) जिसमें जीवन हो। अतः बाइबिलमें यदि 'भलाइ और बुराइ समझनेवाला प्राणी" लिखा होता तो ज्यादा सही होता और इस प्राणीसे जो यह समझ सकता ह कि क्या बुरा है और क्या भला ह, क्या हानिकर और क्या लाभदायक ह, और जिसे मनुष्यकी तरह अनुभवकी शक्ति है कोइ अन्य नहीं, पशु ही है। मनुष्यमें पतनका आरंभ यहींसे हुआ, उसने पहला पाप यहींसे किया कि उसने पशु' का निषिद्ध मांस खाया।

इस विचारके विरुद्ध यहां प्रमाण इकट्ठे किये जाय तो यह एक लंबा लेख हो जायगा और यह करना मैं उचित नहीं

'तौरेतमें अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्यका पहला पाप यही था कि उसने मांस खाया था। आरंभमें लोग अपने इस पापको पहचानते थे और इससे बचनेकी कोशिश करते थे पर धीरे-धीरे वे फिसलते गये। अंतमें वे अपने इस पापका समर्थन करने लगे और यहां तक समझने लगे कि मनुष्य ईश्वरकी ओरसे मांस खानेके लिए स्वतंत्र है।

समझता । हिंदू-धर्मके ग्रंथोंमें, जिनका अनुवाद जर्मन भाषामें भी सही-सही मिलता है, पशुका मांस खाना निषिद्ध ठहराया गया है ।

प्रकृतिके प्रांगणकी ओर दृष्टिपात करनेपर ज्ञात होता है कि केवल मांस खानेवाले प्राणी ही हत्या करते हैं । प्रकृति मांसाहारीमें हत्याकी इच्छा प्रतिष्ठित करती है । मनुष्यने अपने पतनके बाद पहला या यों कहिए कि एक ही बुरा काम किया था, वह थी हत्या—भ्रातृ-हत्या । इसका अर्थ यही है कि मनुष्यके पतनका कारण मांसाहार है अन्यथा हत्याका यहां कोई अर्थ नहीं है ।

मनुष्यके पतनके बादके प्रसंगोंमें चमड़ेका नाम आता है ।

"आदम और उसकी पत्नीने चमड़ेके कोट बनाये और पहने ।"

अगर मनुष्यने पशुओंको न मारा होता तो चमड़ा कहांसे मिलता ? बाइबिल यह दिखाती है कि सुसभ्य आदमी किस प्रकार बहका । शुरूमें मनुष्य स्वर्गीय वायु-मंडलमें रहता था, वह केवल वही फल खाता था जो प्रकृति स्वतः उपजाती थी । मनुष्यके प्रकृतिपथसे पतनका आरंभ तभी हुआ जब उसने आखेट शुरू किया और आखेटके कारण ही उसका पतन हुआ । आखेटके परिणामस्वरूप मनुष्यने मांस खाया और चमड़ा पहना ।

अब आदमी बीमार पड़ा और उस घोड़ेकी तरह अशांत रहने लगा जिसे उसका प्राकृतिक खाद्य घास न देकर साफ की हुई और बनाई हुई जई खिलाई जाती है और जिस अशांतिको दूर करनेके लिए उससे कठिन श्रमसाध्य काम लेना पड़ता है ।

अब आदमीको काम करना पड़ा, उसने जंगल साफ किये और कृषियुगका आरंभ हुआ।

इस प्रकार आदमी जो खेती कर रहा है वह अपने कियेकी सजा भुगत रहा है।

"तू जमीनपर कहर लाया है, तू जिंदगीभर रोयेगा और इसका पैदा हुआ खायगा।"

"यह तेरे लिए कांटे और झाड़ियां भी पैदा करेगी, तू पसीने पसीने हो जायगा तब कहीं जाकर तुझे तेरी रोटी मिलेगी।"

यह इश्वरीय प्रकोप सारी दुनियापर छा गया। मनुष्यकी ओरसे बिना किसी प्रयासके, पृथ्वी पहले फल उपजाती थी। उसे किसी प्रकारकी मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी पर आजका खेतिहर अपनी सारी मिहनतके बावजूद, खराब फसल, घास फूसका रोना रोता है चिंता और उत्सुकता उसके भाग्यमें लिख गइ है।

फलोंके बदले अब मनुष्यको खेतकी जड़ी-बूटी (लेटूस, पातगोभी, हरी मटर आदि) खानी पड़ती है। यही उसकी सजा है।

"तू खेतमें पदा की गइ जड़ी-बूटी खायगा।"

जितनी भी चीजें आदमी मिहनतसे खेती-बारी करके उपजाता है उसके स्वास्थ्यके लिए हानिकर हैं व उसकी ऐहिक प्रसन्नताकी घातिका है।

अन्नकी काश्तके बाद लोग अंगूरकी काश्त करने लगे और हानिकारक शराबका चलन चला।

"नोय नामक व्यक्तिने खेती करनी शुरू की और उसने एक अंगूरोंका बाग लगाया।"

"उसने शराब पी और शराब पीकर मतवाला हो गया और अपने खेमेमें नंगा पड़ा पाया गया।"

'उसके एक लड़केने उसे नंगा पड़ा देखा और अपने दो भाइयोंको बताया।" आदि

इसके बाद व्यापार और कलाका रिवाज चला।

"और जिल्ला भी नंगी मिली और टयूबलकेन, जो तांबे और लोहेके कामका कारीगर था।"

गृहनिर्माणकला भी प्रचलित हुई। बबीलोनियामें मीनार बनने लगी। और अनेक भाषाएं भी चल पड़ीं जिसके फल-स्वरूप भाषा विज्ञान पैदा हुआ।

पर कष्ट धीरे-धीरे बढ़ा, मनुष्य अधिकाधिक गलतियां करने लगा, वह ईश्वर और प्रकृति-पथसे दूर होता गया। रोग, दुःख, अभाव, असंतोष और निराशा बढ़ती गई। इसीको लक्ष्य करके कविने गाया है

हम लोगोंकी उम्र साढ़े तीन बीसी है, यह बुद्धि और श्रम-बलसे चार बीसी भी बनाई जा सकती है पर उस मेहनतका फल व्यय आयास और दुःखसे अधिक क्या है?"

पर कभी-कभी ऐसे फरिश्ते और साधु-संत भी आते रहे हैं जिन्होंने मनुष्यके प्रकृति पथसे हटने और मांस खानेके विरुद्ध अपनी वाणीका प्रयोग किया और साथ ही उन्होंने ईसाके अवतार होनेकी ओर संकेतमय भविष्यवाणी की।

तब इस दुनियाकी काली अंधेरी रातका अंत आया और

सुदर प्रातका आविर्भाव हुआ, दुनियाके बचावनहारका जन्म हुआ।

ईसा आदमके पतनके लिए प्रायश्चित्त करना चाहते थे, वह हमें प्रकृति और ईश्वरकी ओर पुन लौटा ले जाना चाहते थे, वह मनुष्यके किये गए पहले पाप मास भक्षणको भी धो डालना चाहते थे। जबतक मनुष्य उससे मुक्त नहीं हो जाता वह ईश्वरकी भेजी हुई सुधीका स्वागत करने योग्य कैसे हो सकता है?

ऐसी स्थितिमें ईसा मांस कैसे खा सकते थे? ईसा सबसे अधिक मृदुता और दयाकी शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होंने अपनी आत्मा और ईश्वरकी आवाजके विरुद्ध, मनुष्यको राक्षस बनानेवाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जबह करनेमें दयाको एक बारगी तिलांजलि दे देनी पड़ती है? यह न्याय ईसाकी दयाका विरोधी होता, वह हत्याके पापसे मुक्त नहीं हो सकते थे। भला ईसा शरीर और आत्माको रुग्ण बनानेवाला पाप और दोषमें फँसानेवाला मांसका भोजन स्वीकार कर सकते थे?

तौरेतके अनुवादमें भी गई गल्तीके समान ही बाइबिलके अनुवादमें भी गल्ती मिलती है। प्राचीन समयमें लोग मांस खानेके पापके प्रायश्चित्तस्वरूप देवताओंको शान्त करनेके लिए पशुकी बलि दिया करते थे। इतिहासकारोंका कहना है कि एसन जातिके लोग, जिनसे ईसा सम्बन्धित थे, पशु-बलि नहीं देते थे। इससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि वे मांस भी नहीं खाते थे। धर्मशास्त्रियोंकी भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि वे लोग पशुकी बलि नहीं चढ़ाते थे, मांस नहीं खाते थे। ईसा और उनके शिष्योंने कभी

कोई बलि नहीं दी। उन्होंने तो पशु-बलिका निषेध भी किया है।

"मुझे दया चाहिए, बलि नहीं।"

जिस किसीने बाइबिलकी भावनाको समझा है और खास तौरसे तौरेतकी, जानता है कि ईसाने मांस खाना साफ-साफ मना किया है और इसमें शक और शुबहेकी जगह ही नहीं है कि ईसा मांस नहीं खाते थे।

तर्कके बच्चे साँपसे पैदा हुआ विज्ञान मनुष्यको आज भी उसी प्रकार पथ-भ्रष्ट कर रहा है कि जिस प्रकार इसके पिता सपने आदमको स्वर्गमें किया था। यह आज भी पढ़ा रहा है कि प्रकृति-पथका त्याग करनेसे मनुष्यकी आत्मा और शरीरको अनेक लाभ मिलेंगे।

अभी एक विद्वानने कहा है कि मनुष्यने परिष्कृत एवं वैज्ञानिक जीवन अपनाकर बड़ी उन्नति की है, और अंतमें वह देवताओंकी तरह अमर हो जायगा।

पर विज्ञान धोखा देने और भुलावेमें रखनेके सिवा अधिक क्या कर रहा है?

प्रत्येक स्थिरबुद्धि और निष्पक्ष व्यक्ति यह कहेगा कि मनुष्य अप्राकृतिक जीवनको अपनाकर देवता नहीं बन सकता, इसके विपरीत वह रोगी, दुःखी, पापी पाजी, मूर्ख और सच्चे अर्थमें दानव ही तो बनेगा।

जब ईश्वरके बनाये कानूनकी अवहेलना करनेवाले विज्ञान-द्वारा कूट तर्कपूर्ण वैज्ञानिक आधारोंपर मांस भक्षणका प्रतिपादन किया जाय तो हमें बहुत सजग रहना चाहिए।

ऐसी खतरेकी घड़ीके वास्ते हमें प्रकृतिकी आवाज सुननी चाहिए जो इस संबंधमें निश्चित चेतावनी देती है।

पर शराबके सबधमें ईसाका क्या रुख था ? इस प्रश्नका उत्तर भी हमें पाना है।

तौरेतमें लिखा है

"शोकातुर कौन है ? दुःखी कौन है ? चिंतित कौन है ? घबराहटसे भरा जीवन किसका है ? अकारण चोट किसे लगती है ? आंखें लाल किसकी रहती हैं ?"

"वे जो देरतक शराब पीते रहते हैं, वे जो नशीली शराबकी खोजमें रहते हैं।"

"उसका अभिमान करना उचित है जो शराबके चक्करमें नहीं पड़ता।"

"तू शराबको रौंद, पर उसे पी मत।"

"शराब पीकर मतवाला मत हो।"

'अंतिम भोज'के समय ईसाने कहा था

"आज मैं तुम लोगोंसे कहता हूं कि अबके बाद मैं शराब नहीं पीऊंगा, और अब मैं अपने पिताके राज्यमें चलकर तुम लोगोंके साथ नई शराब ही पीऊंगा।"

नईका अर्थ है ताजी, जिसमें खमीर न उठा हो। नई शराबका अर्थ है अंगूरका ताजा रस। इस अवतरणसे प्रतीत होता है कि ईसाने इसलिए कि वे अति कठोर प्रतीत न हों और कहीं उससे जो काम[1] वे कर रहे थे उसमें व्याघात न पड़े, उन्होंने एक बारके लिए शराब पीनेका असाधारण काम कर दिया होगा। (ईसाका स्वभाव बड़ा मृदु था, वे लोगोंका आग्रह टाल न पाते थे) पर वे हमेशा अंगूरके रसकी प्रशंसा करते थे और शराबकी बुराई।

---

[1]इस घटनासे ईसाकी बुद्धिमत्ता और प्रेम-भावनाकी गहराई समझी जा सकती है।

कहा जाता है कि इसाने सानाके विवाहमें बरातियोंके लिए शराब तैयार की थी। पर बहुत संभावना इसी बातकी है कि वह शराब मादक नहीं थी। यही कारण है कि शादीमें गये लोगोंने उसे बहुत पसंद किया था। आज भी फलोंके ऐसे अनेक रस बनाये जाते हैं जिनका स्वाद शराबसे हजार गुना अच्छा होता है।

अग्नि

मालूम नहीं किस कुसमयमें अग्निका आविष्कार करके मनुष्य प्राकृतिक जीवनसे इतनी दूर हट गया।

आगकी मददसे ही मनुष्य अनेक तरहके अप्राकृतिक भोजन शराब और दवाएं आदि बना सका। सुसभ्य जीवनके सारे साधनोंका, जो आरंभसे रोगोंको लिए आ रहे हैं और हमारे आजके जीवनके सभी कष्टोंका, कारण अग्नि ही है।

इसलिए अग्नि ही मनुष्यके सारे कष्टोंका असली कारण है। पर आदमी आज अपने शत्रुको पहचान नहीं रहा है। वह समझता है कि अग्नि उसकी परित्राणकर्ती है, उसकी वजहसे उसे सुख-संपदाएं मिली हैं। पर इस संबंधमें सत्य भावना भी जातिके प्राणोंमें सन्निहित और जाग्रत है। अनेक प्राचीन कथाओंमें अग्निका शत्रु एवं राक्षसोंकी भांति वर्णन है। शैतानकी तस्वीरमें शैतान आग उगलता दिखाया गया है। ग्रीसकी प्रोमोथिस-संबंधी पौराणिक कथामें बड़े चित्ताकर्षक एवं सुंदर रीतिसे बयान किया गया है कि मनुष्यका अग्निका आविष्कार देवताओंको कितना बुरा लगा और उन्होंने मनुष्यको इसके लिए कितना

कठोर दंड दिया और फिर किस प्रकार ससारकी सारी बदमाशियाँ एक-एक करके अग्निसे पदा हुई।

प्रोमोथिस (अर्थात अग्रवुद्धि)ने स्वर्गसे अग्निको इसलिए चुराया कि उसकी सहायतासे मनुष्यको मांस जायकेदार लगने लगे। प्रोमोथिसके इस कार्यसे जेस नामक देवताको बहुत क्रोध हुआ और उसने प्रामाथिसको काकेसस नामक पर्वतपर ले जाकर जंजीरासे बांध दिया। गीधोंने उसका कलेजा निकालकर खा लिया। पर उसको मिले वरदानके अनुसार कलेजा फिर निकल आया। गीध फिर झपटे और फिर कलेजा खा गए। इस प्रकार नया-नया कलेजा निकलता रहा और गीध उसे बराबर सताते रहते।

इस कथाके अनुसार आज भी अग्नि मनुष्यका कम अनिष्ट नहीं कर रही है। यदि मनुष्यके पास भूनने एवं रांधनेको अग्नि न होती तो उसके लिए मांस खाना अशक्य हो जाता। फिर पशुओं को पकड़ने और मारनेके औजार हथियार भी बेकार हो जाते।

मैं पहले ही बता चुका हूं कि शराब और दवाएं अग्निकी ही सहायतासे बनती हैं। मैंने निश्चित रूपसे यह भी साबित कर दिया है कि सभी बुरी बीमारियां मांस, शराब और दवाओंसे ही पैदा होती हैं। मांसकी ही भांति अन्य खाद्योंको भी रांधनेसे रोग पैदा होते हैं।

गंदी हवा-सरीखे अन्य किसी कारणसे पशु बीमार न पड़ जाय तो हरा चारा और वनस्पतियां मिलते रहनेपर वह खूब स्वस्थ रहता है और उसकी सुंदरता बनी रहती है। यदि उसका चारा और आलू, गाजर, शलजम आदि तरकारियां उसे उबालकर दी जाएं तो वह पका हुआ भोजन लारसे बिना अच्छी तरह

मिल ही जल्दी-जल्दी उसके गलेके नीचे सरकता जाता है और वह आवश्यकतासे अधिक खा जाता ह। ऐसा भोजन वह कस-कसकर खाता है, जिससे वह मोटा, कुरूप, सुस्त और ढीला अर्थात बीमार हो जाता है। इस रीतिसे पशुका वजन छ महीनेतक तो बढ़ता जाता ह, फिर उसके अधिक खाते रहनेपर भी वजन नहीं बढ़ता वरन् घटने लगता है। और उसे कइ तरहके रोग घरने लगते हैं। उसकी पाचन शक्ति खराब हो जाती ह और पहले जहां थोड़े भोजनसे उसकी शक्ति बनी रहती थी वहा अब ज्यादा-ज्यादा खानेपर भी उसका पूरा नही पड़ता।

मनुष्य जो कुछ आज खाता ह वह प्रकृतिने उसके लिए नहीं बनाया ह इतना ही नहीं वरन् वह उसे पका राधकर अपने लिए अधिक प्रतिकूल—दुष्पाच्य और शक्तिहीन बना लेता है। सोचिए तो सही आगकी सहायतासे हम अपना भोजन कितना हानिकारक एव अनर्थकारी बना लेते ह।

इस भोजनसे हमारा पाचन-सस्थान अशक्त हो जाता है और विजातीय द्रव्य (अथवा भोजन) शरीरमें इकट्ठा होने लगता ह। फिर वह फोड़े फुसी, दाद-खाज, ज्वर आदि अनेक रूपोंमें बाहर निकलता है। रोगके इन लक्षणोंको दबानेके लिए डाक्टर चीर-फाड एव मरहम-पट्टी करते हैं और रोगीको दवा पिलाते हैं। पर विजातीय द्रव्यके इकट्ठा होनेका काम तो बद नहीं होता। और उसे निकालनेके लिए शरीरको फिर फिर प्रयास करना पड़ता ह। रोगोंके कारणकी जानकारी न होनेके कारण आज मनुष्य प्रोमोथिसकी भांति बधा पड़ा है और उसे अपने कष्टको सहना ह।

यदि हम अपना भोजन बनानेके लिए आगका उपयोग न

करें तो हमें पुन प्राकृतिक भोजनको अपनाना होगा तब डाक्टरों-को चीरने-फाडनेका मौका ही नहीं मिलेगा।

जिस प्रकार गरम पानीका स्नान त्वचा और स्नायुओंको शिथिल कर देता ह ठीक उसी प्रकार गरम भोजन आमाशयको। इसलिए अच्छा हो कि जो भी भोजन किया जाय वह ठडा हो। अधिक-से-अधिक वह सिरगरम हो सकता है। गरम तो वह किसी हालतमें होना ही नहीं चाहिए। गरम भोजन बहुत हानि करता है*।

यदि मनुष्य केवल फल खाता ह तो गरम भोजनद्वारा होन-वाली हानिसे बच जाता ह। उसे भूखसे अधिक खा जानेका भी खतरा नहीं है। अप्राकृतिक भोजनमें मनुष्य भूखके अनुसार भोजन करते रहनेकी कोशिश करते रहनेपर भी अधिक खा ही जाता ह।

इसलिए मनुष्य जब पका भोजन नहीं करता तो उसे इतने लाभ मिलते हैं—स्त्रियोंको चूल्हेके सामने बैठकर जहरीले धुएसे अपना स्वास्थ्य खराब करने और रोग लगानेकी जरूरत नहीं होती। उन्हें अच्छे कामोंके लिए समय मिलता ह। वे अपने बच्चोंकी देख-भाल अच्छी तरह कर पाती ह। वे ईश्वरके बनाये सुदर प्राकृतिक स्थानोंमें अपना अधिक समय बिताती हैं। उन्हें अब अपने और अपने कुटुबियोंके लिए उन खाद्योंके पकानेकी जरूरत नहीं होती जो समस्त रोगों एव ससारकी सारी विपत्तिके कारण हैं। जल्दी ही सारे कुटुबका स्वास्थ्य परिष्कृत हो जाता ह जिससे उन्हें अपूर्व शक्ति और प्रसन्नताकी प्राप्ति होती ह।

फलों—विशेषत मेवोंका भोजन शरीरको सब प्रकारकी शक्तियोंसे परिपूर्ण करता है। उनकी मानसिक वृत्तियां उन्नत होती हैं और उसे देवताओंकी-सी क्षमता प्राप्त होती ह।

वर्षों पहलेकी बात है, एक बार इंग्लैंडके कायलेकी खानोंके मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। उन खानोंमें कामके लिए कुछ घोड़े भी रख गये थे। ये घोड़े वहीं दस-पद्रह वर्षोंसे थे। जब उन्हें बाहर प्रकाशमें लाया गया तो वे पागल-से हो गए और वापस सीली, अधेरी खानोंमें चले गए। भोजन पकाना बद कर देनेपर स्त्रियो एव उनके परिवारवालोंको क्या-क्या लाभ होंगे, स्त्रियोंको जब यह बताया जाता ह तब उनकी भी हालत मुझे उन खानके घोड़ों की-सी होती दिखाइ देती है। वे भी चुपचाप अधेरे रसोईघरमें चली जाती हैं जहां उनके पसीनेसे भरे मुखको धूआं काला करता ह, उनकी सूरत ही बदल जाती है। स्त्रिया इश्वरकी सर्वोत्तम रचना हैं। इश्वरने उनका निर्माण भाड झोकनेके लिए नहीं किया है।

शराबी यह जानते हुए भी कि शराब पीनेका नतीजा बहुत बुरा होगा, शराब पीना छोड नहीं पाता। विद्वान्‌का पढ़ते-पढ़ते शरीर टूट जाता ह, चेहरा पीला पड़ जाता है और सिर चंदुला हा जाता है, वह जानता है कि ससारके सभी सुख उससे दूर हटते जा रहे हैं पर वह अपनी पढ़ाइ छोड नहीं पाता। इसी प्रकार स्त्रियां यह जानते हुए भी कि भोजन पकाना बद करनेसे उन्हें एव उनके बच्चोंको पृथ्वीका सच्चा आनद मिलेगा, वे चूल्हा झोकने-सरीखे अप्राकृतिक कार्यका मोह नहीं छोड पातीं।

जब आरभमें प्रकृतिने मनुष्यको पैदा किया था तो यह सर्वांग-सुदर था। ग्रीसनिवासियोंने वीनसकी मूर्तिमें स्त्री-सबधी अपनी पूर्ण भावनाको अभिषिक्त किया है। आजकी स्त्रिया इस सौंदर्यसे अनेक अशोंमें बहुत दूर हो गइ हैं। इस सौंदर्यकी पुन प्राप्तिका एक ही साधन ह—प्राकृतिक जीवन।

प्राकृतिक जीवन स्वास्थ्यका प्रदाता है और स्वास्थ्य ही सौंदय है। क्या हमारी स्त्रियोंका यह खयाल है कि जिस सौंदयकी अभिलाषा स्त्रियां करती हैं वह उन्हें चूल्हा दगा?

प्रकृतिके प्रांगणमें रहनेवाले बूढ़े और जवान पशुओंमें हमें वह अतर दिखाइ नहीं देता जो हमें मनुष्यमें देखनेको मिलता है। बड़ी उम्रके पशु ही पशुओंमें सुदर और मजबूत होते हैं और मादाके पास होनेपर प्रसन्न। प्यार पुष्पसे भी अधिक सुकुमार है, हमारे प्राकृतिक जीवनके कारण वह मढ़ नहीं पाता। सभ्यताके झोंकेसे यह मुर्झा जाता है, कभी-कभी यह बच्चोंमें उस प्रकाशकी तरह दिखाइ दे जाता है जिसका अस्त शीघ्र ही होनेवाला है। आत्माके सुदरतम आवेगोंका हनन करनेवाली धूएसे रसोइघरसे पुरअसर, दूसरी अन्य वस्तु नहीं है। एक स्वस्थ स्त्री जो अपने स्वास्थ्यके प्रतापसे हमेशा सुन्दर एव युवा बनी रहती है, एक सुकोमल रज्जुके सहारे पुरुषका ही नहीं सारे ससारका नेतृत्व कर सकती है। क्या ही अच्छा होता कि स्त्रियां अपनेको रसोइघरकी काली कोठरीसे मुक्त कर लेतीं और प्रेमके अनवरत आनदकी अधिकारिणी बनतीं।

आरभमें पुरुषको जब वह प्रकृतिसे दूर नहीं हुआ था उसका पतन नहीं हुआ था, भोजन प्राप्तिके लिए उसे पसीना नहीं बहाना पड़ता था और न उसे अपनी आत्मिक अशांति और खाली-पनको दूर करनेके लिए जिस तिस कामको ही करना पडता था। निषिद्ध भोजनद्वारा ही मनुष्यपर यह गाज गिरी।

"एड़ी चोटीका जोर लगानेपर ही तुझे तेरा भोजन मिलेगा।"

यदि स्त्रियां प्राकृतिक जल-स्नान करने लगें, वायु और प्रकाशका सहारा लें तो उनमें एक नवचेतना जागृत होगी और

वे अंधेरे काले रसोईघरमें काम करनेके बजाय अन्य उपयोगी कार्योंमें लगेंगी।

सारे अन्वेषण और आविष्कार जिनपर आजकी सभ्यताको नाज है और उसके हवाई जहाज, बारूद, रेल, बाइसिकिल, तार, फोन सभी साधनोंके खतरे और उनके द्वारा की गई हानिको समझनेके लिए हमें अपने दिमागसे सारे पूर्व संस्कारों और पक्षपातको निकाल बाहर करना होगा। आजके लोग उन्हें देखकर चौंधिया गये हैं। उन्होंने ऐसे चश्मे लगा रखे है जिनसे अनिष्ट उन्हें वरदान प्रतीत होता है। इन सिद्धियोंद्वारा प्रदत्त रोग, हड़बड़ी, अशांति, निराशा और स्नायुदौर्बल्य हमें दिखाई नहीं देता। जो सुख ये सिद्धियां लाई हैं वह केवल मृग-मरीचिका है।

इसमें संदेह नहीं कि आज हम यकायक न अग्निका सर्वथा परित्याग कर सकते हैं और न तुरत सारे अप्राकृतिक कार्योंका अंत ही कर सकते हैं। हम प्रकृतिकी ओर धीरे-धीरे ही लौट सकते हैं।

भोजनका उपयुक्त समय

प्रकृति हर एक बातके लिए अपना ठीक नुस्खा हमें दिया करती है—वह हमें यह भी बतलाती है कि हमें भोजन कब करना चाहिए।

प्रकृतिमें सर्वत्र यही देख पड़ता है कि जानवर शामको ही अपना मुख्य आहार ग्रहण करते हैं। जंगलमें रहनेवाले जानते हैं

कि शिकारी जानवर दिनके समय शायद ही कुछ खाते हैं
सूर्यास्त हो जानेपर खूब खाने लगते हैं। जाड़ेके दिनोंमें भ
जब जमीन बर्फसे बिल्कुल ढकी रहती है, शिकारी जानव
खाद्य प्रस्तुत किए गए स्थानपर शामको ही आते हैं हालां
दिनमें भी वे आना चाहते तो उनके मार्गमें कोई बाधा न पड़ती
अजायबघरमें भी उन्हें शामको ही खिलाया जाता है।

प्रायः लोग खुमारी उतारनेके लिए प्रातःकाल भी कु
मद्यपान कर लेते हैं, पर इसका असर सायंकालीन मद्यपान
बहुत बुरा होता है। मद्यपानकी गोष्ठियां भी शामको ही
जमा करती हैं, प्रातःकाल नहीं जम सकतीं। प्रातःकाल भोज
करनेपर क्लांति जान पड़ती है पर ब्यालूके बाद ऐसी को
शिथिलता नहीं जान पड़ती। प्रातःकाल शरीर खाद्य पदार्थ
उतना नहीं पचा सकता, शामको या रात्रिकालमें ही उदर विशेष
रूपसे सक्रिय रहता है।

ईसाई साधु प्रकृतिके इस अभिप्रायके अनुसार दिनके
समय बहुत कम खाते थे। जो लोग इस नियमका कड़ाईके
साथ पालन करते थे वे तो सूर्यास्तके पहले कुछ भी नहीं खाते
थे। सब लोग शामको अपने मुख्य भोजनके लिए एकत्र हो
जाते थे और उस समय ब्यालू भी एक धर्मकृत्य ही माना जाता
था। ईसाने अपने शिष्योंके लिए यही नियम रखा था और
जिस तरह नियमित स्नान आज बपतिस्मा नामक संस्कारके
रूपमें रह गया है उसी तरह यह सायंकालका सहभोज भी 'प्रसाद
पानेके रूपमें बच गया है। प्रकृतिका नियम तो सायंकालीन
भोजनका ही है, पर इसके विरुद्ध बुद्धिका प्रदर्शन करनेके लिए
तरह-तरहकी दलीलें पेश की जाती हैं जिनमें कोई दम नहीं होता।

अगर प्रातःकाल कुछ खाया भी जाय तो सिर्फ नामके लिए। अगर दोपहरतक कुछ भी न खाया जाय तो बहुत अच्छा। दोपहरतक उपवास करना, जो प्रकृतिके अनुकूल है, जरा भी कठिन नहीं है। दोपहरके समय भोजन करते समय भी अधिक न खाकर यथासंभव कम खानेका खयाल रखा जाय। शामको बिना किसी हिचकके भरपेट खाया जा सकता है।

मेरा उपचार करनेवाले रोगियोंने यह स्वीकार किया है कि दोपहरतक कुछ भी न खानेपर उपचारसे अधिक लाभ होता देख पड़ा। इसी विचारसे मैं अपने रोगियोंको दोपहरतक कुछ भी न खानेकी सलाह दिया करता हूं। अगर दिनका भोजन सूक्ष्म रहा है तो सोनेके पहले भरपेट खानेपर किसी तरहकी तकलीफ नहीं होगी।

बच्चोंका पालन-पोषण

कितना मधुर और पवित्रतम आनंद और कितने प्रकारके अनुभव प्रकृति हमें बच्चोंद्वारा प्रदान करती है! बच्चे अनमोल रत्न हैं, इन्हें ईश्वरने हमें धरोहरस्वरूप दिया है। बच्चेवालोंके कर्तव्य गुरु हैं और जिम्मेदारी बहुत बड़ी। हमें अपने बच्चोंके लालन-पालन और शिक्षाका अधिक-से-अधिक ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। इस संबंधमें भी हमें प्रकृतिसे ही सीख लेनी चाहिए और उसीके बताये मार्गपर चलना चाहिए।

प्रकाशमें आनेके बहुत पहले ही शिशुमें प्राण पड जाते हैं।

जिस स्त्रीको बच्चा होनेवाला हो उसका यह समझ लना कत्तव्य हो जाता है कि एक नवीन प्राणीके प्रति उसका एक पवित्र दायित्व पैदा हो गया है और इश्वरने उसे एक गभीर काम सौंपा ह । इस कालमें उसे गप-शप्पी दुष्कामना, इर्षा, घृणा स्पर्धा और सभी प्रकारके उत्तेजक एव अशात करनेवाले कार्योंस किनारा अख्तियार करना चाहिए, उत्तेजना तथा घबराहट पैदा करनेवाले आमोद प्रमोदसे दूर रहना चाहिए। इसके बदले उसे विधाताकी शात और गभीर प्रकृतिका चितन करना चाहिए और आनदपूवक प्रकृतिमें विचरण करना चाहिए। मन अपनी इस पुस्तकमें प्राकृतिक जीवनका यथेष्ट वर्णन किया ह । गर्भिणी स्त्रीको यह जीवन विताना आवश्यक ह। इस समय वेष भूषाके सबधमें भी और दिनोकी भाति अविवेकी न वनना चाहिए । माताओंको इसका ज्ञान नहीं ह कि बच्चा जननेके पहले ही वे उसके प्रति कितना बडा पाप कर सकती हैं।

स्त्रीके गभमें जब बच्चा बढ़ता रहता ह उस समय उसके जीवनके परिवर्तनोका कितना सीधा प्रभाव बच्चेपर पड़ता ह यह हम नहीं जानते यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

ऐसे अनेक जड और पागल जिन्हें दुनियामें न शांति ही ह न किसी प्रकारका आराम, और जो पाप और दोषमें लिपटे ही रहते हैं और पृथ्वीपर भारस्वरूप हो रहे हैं उनमेंसे अधिकांशके कष्टका कारण उनके गभमें रहते समय उनकी मातापर पडा हुआ कोइ अशुभ प्रभाव ही है।

कितना अच्छा होता कि इन अभागोंको दखकर माता-

पिता इसका अदाज कर सकते कि वे अपने बच्चोंके प्रति कितना बड़ा पाप कर सकते हैं।'

जो स्त्री थोड़ा भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करती है उसे प्रसव-समयकी पीड़ासे डरनेकी जरूरत नहीं है। उसे बड़ी आसानीसे बच्चा हो जायगा। यदि पीड़ा हो तो पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे बहुत मदद मिलती है। सौरीमें वायु और प्रकाशकी बड़ी आवश्यकता होती है अत सौरीकी सारी खिड़कियां खुली रखनी चाहिए।

नवजात शिशुको गरम पानीसे न नहलाकर उसे ठडे पानीसे शीघ्रतासे नहलाना और साफ करना चाहिए। इससे बालकको शक्ति प्राप्त होती है और वह सहनशील बनता है। सालकी कोई भी ऋतु क्यों न हो बच्चोंको जब भी नहलाया जाय ठडे पानीसे ही—इसकी आदत आरभसे ही डालनी चाहिए इससे बच्चे जन्मसे ही बीमार एव दुर्बल होनेसे बचेंगे। कड़ाकेकी सर्दीमें इस पानीका ताप अधिक-से-अधिक कमरेकी गरमी जितना कर लिया जा सकता है।

बच्चेको कोट और मोजोंमें कसनेकी जरूरत नहीं है। उसके शरीरपर वायु और प्रकाश लगने और उसमें प्रवेश करनेका पूरा मौका देना चाहिए। अकसर बच्चेको नगा रखना चाहिए इससे उसकी जीवनशक्ति बढ़ती है।

अब नवजात शिशु अपनी ससार-यात्रा आरभ करता है

'यहां मैं डाक्टर रायकी लिखी छोटी पुस्तक "स्त्रियोंके अधिकतर जीर्ण रोगों एवं उनके स्वामी कष्टोंका कारण" की ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। यह पुस्तक विवाहितोंको बताती है कि सयोग

स्वतन्त्रता, वायु और प्रकाशके प्रति उसके मनमें चाह उत्पन्न होती है। पर इसके विपरीत जब वह अपनेको कपड़ोंसे लपटा और बंधा हुआ दूषित वायुसे परिपूर्ण कमरेमें पाता है, तो जीवनके प्रति उसका सारा उत्साह ही समाप्त हो जाता है। यदि बच्चेको कभी हवा खिलाने ले भी जाते हैं तो मोटे-मोटे

सबधी कितनी भयकर भूलें उनसे बन पड़ती हैं। लोगोंकी ऐसी धारणा-सी हो रही है कि विवाहित अनियंत्रित संयोग कर सकते है। ये घातक विचार हैं और इनका परिणाम माता-पिता और उनके बच्चोंको भी सहना ही पड़ता है। यह पाप है। पर खेद है कि अविवाहितोंद्वारा किए गए पापको ही आजका समाज दुराचार कहता है।

संयोग जाति-रक्षाके महान उद्देश्यके लिए ही होना चाहिए। अन्य जीवोंकी तरह आरभमें मनुष्य इस सबधमें भी प्रकृतिकी आवाज सुनता था। यह आवाज होती थी एक खास अंतरपर, पर सुनाई देती थी स्पष्ट। आज इस संबंधमें भी मनुष्य अपनी हीन एवं घृणास्पद इच्छाका शिकार हो रहा है। बच्चा पैदा करनेके लिए आज संयोग नहीं होता लोग तो यह देखकर घबराते हैं कि संयोगसे बच्चे भी पैदा होते हैं। वे प्रकृतिके इस कार्यमें अकसर बाधा डालनेकी भी कोशिश करते हैं। वाह! प्रकृति और मनुष्यकी कैसी प्रतिद्वंद्विता चल रही है ? प्रत्येक पत्रमें गर्भ-निरोधकी दवाका विज्ञापन खुल्लमखुल्ला छपता है। प्रकृतिके विरुद्ध किए जाने वाले ये पाप बताते हैं कि मनुष्यजाति ह्रासकी ओर अग्रसर हो रही है। आज अनाचार और अनैतिकताकी कोई सीमा नहीं रह गई है गो कि इसका फल मनुष्यको पग-पगपर भोगना पड़ रहा है। अब शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि इस सबंधमें मनुष्यजातिने अपनी कितनी हानि की है। पर लोग यदि प्राकृतिक जीवनकी ओर अधिकाधिक अग्रसर होंगे तो ये पाप अपने आप बंद हो जायंगे अन्यथा इनको निश्चित रूपसे कम किया जा सकेगा।

कपड़ोंसे ढककर और जिस गाड़ीमें उसे टहलाने ले जाते हैं उसे भी पूरी तरह ढकी रखते हैं इस डरसे कि बच्चेतक कहीं वायु और धूप पहुंच न जाय।

गांवके लोग अपनी गाय-बकरियोंके बच्चोंको खास तौरसे धूपमें ले जाते हैं और यह देखकर खुश होते हैं कि बच्चे धूप खाकर प्रसन्न होते हैं और शीघ्रतासे बढ़ते हैं। अपने बच्चोंको हम शक्ति प्रदायिनी वायु और जीवनदायी सूर्यसे दूर रखते हैं। यदि इस दशामें बच्चे कमजोर रहें या अकालमें कालकवलित हो जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है?

बच्चोंके दिनभर रोने और रो रोकर अपनको थका डालने तथा माता पिताको हैरान करनेका कारण बच्चेके माता पिता ही हैं। बच्चेको जरा स्वतन्त्र कीजिए उसके बदनपरसे भारी कपड़े हटा दीजिए, उसे वायु और प्रकाशमें रखिए, फिर देखिए वे कितने शांत रहते हैं और कितनी जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। यदि इस सारी गड़बड़ीके कारण बच्चेकी पाचनशक्ति खराब हो जाय तो पेटपर ठंडी पट्टी रखनी चाहिए। ठंडे पानीमें भिगोकर कपड़ेकी पट्टी भी रखी जा सकती है, पर मिट्टीकी पट्टीसे शीघ्र लाभ होता है।

आज जैसी भयंकर भूलें बच्चोंकी चिकित्सामें की जाती हैं उन्हें देखकर तो ताज्जुब ही होता है कि क्यों इतने कम ही बच्चे मरते हैं? इससे प्रमाणित होता है कि मनुष्यको आरंभसे ही पशुसे अधिक जीवनशक्ति मिली होती है। क्योंकि मनुष्यका बच्चा जिन अप्राकृतिक उपचारोंको सहकर जीवित रहता है वह उपचार यदि पशुके बच्चेका किया जाय तो वह कभी भी जीवित नहीं बच सकेगा।

बच्चोंके जीवनके आरम्भिक वर्षोंमें की गई गलतियोंका बुरा असर उसके जीवनपर्यंत चलता रहता है। इसलिए हमें सदा प्रकृतिका अधिक-से-अधिक सहारा लेना चाहिए।

शुरूमें बच्चेको माताका ही दूध मिलना चाहिए। गर्भ वहन करते समय एवं बच्चेको पिलाते समय यदि माता प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे तो निश्चय ही उसे अपने बच्चेके लिए पूरा दूध होगा। यह सोचना मूर्खतासे खाली नहीं है कि माताके मांस खाने और शराब पीनेसे बच्चेको यथेष्ट शक्ति और पोषण मिलेगा। ऐसा करनेसे तो माताको दूध कम होगा और बिल्कुल खराब होगा।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेके कारण यदि माताका दूध सूख जाय तो बच्चेको नीरोग धायका दूध मिलना चाहिए। इसके अभावमें उसे चरनेवाली, स्वस्थ, स्वच्छ गायका कच्चा बिना उबाला हुआ दूध देना चाहिए।

हम लोग कीटाणुओंके डरसे कच्चा दूध बर्तते डरते हैं और समझते हैं कि दूधको गरम करनेसे कीटाणु मर जाते हैं और दूध निरापद हो जाता है। कीटाणु अन्य कृमियोंकी भाँति ही सड़नसे पैदा होते हैं। जिस प्रकार मैली खाटपर चींटियाँ फतिंगे आ जाते हैं उसी प्रकार जब शरीरमें स्थित विजातीय द्रव्य सड़ने लगता है तब कीटाणु पैदा हो जाते हैं। यदि शरीरमें कीटाणु बाहरसे घुस भी जाय तो यदि उन्हें वहाँ उपयुक्त खाद (विजातीय द्रव्य) न मिले तो वे कभी जीवित न रह सकेंगे। यदि हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें अपने शरीरमें विजातीय द्रव्य न पैदा होने दें तो हमें कीटाणुओंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। पर यदि हमारा शरीर गंदा हो तो खाद्योंके उबालने

अथवा कृमि विहीन करनेकी कोइ क्रिया हमें उनसे बचा नही सकती। यदि शरीरमें या दूधमें विजातीय द्रव्य पदा हो गया ह तो वहा कृमियोंका होना आवश्यक ह। वे वहां पहुचकर एक आवश्यक काय करते ह।

यदि रोगी गायका दूध उबालनेसे उसके कीटाणु मर भी जाय तो वह विजातीय द्रव्य तो नष्ट नही हो जाता जो सचमुच भयानक चीज ह और जिसके कारण उस दूधकी ओर कीटाणु आकर्षित होते ह।

यदि बच्चेके शरीरमें विजातीय द्रव्य यथेष्ट मात्रामें हो तो उसे कीटाणुओंसे किसी प्रकार भी नहीं बचाया जा सकता और यदि न हो तो कीटाणु उसे कोइ हानि नही पहुचा सकते। जिस कच्चे दूधमें कीटाणु पदा हो गए होते हैं उसमें उबाले दूधकी बनिस्वत सडन शीघ्र पदा होती ह और वह पचता भी शीघ्रतासे ह। कीटाणु कभी-कभी पाचनमें भी सहायक होते हैं। दूधको उबालकर हम उसे दुष्पाच्य अतएव हानिकर बनाते ह ऐसे दूधके पीनेसे बच्चेके शरीरकी वाढ रुकती ह।

भाप या अन्य किसी प्रकारसे गरम किया हुआ दूध भी उबाले दूधके समान ही हानिकारक ह।

इसलिए बच्चेको, जबतक वह मेवे खाने लायक न हो जाय, माता या गायका दूध ही पिलाना चाहिए।

फाइके दलिए आदिका भी, जो बच्चोंके भोजनके नामसे डिब्बा-बद बाजारमें बिकते हैं पूरा बहिष्कार होना चाहिए। इनके मुकाबलेमें बच्चोंको कुछ उबली तरकारिया और थोड़ी रोटी देना अच्छा ह। बच्चोंको छुटपनसे ही दूध और मेवे अच्छे लगते हैं और वह उनके अनुकूल भी होते ह। फलाहारमें

बच्चेकी जो ऐसी शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है उसे देखकर माता पिताको हार्दिक आनंद प्राप्त होता है।

हमारे आजके बनावटी जीवनके दुःखद वातावरणमें आज भी स्वर्गका एक द्वार खुला हुआ है। वह है बच्चे। बच्चोंको फल खाने दें अन्यथा आप इस द्वारको भी बंद कर देंगे—और उनके बहुतसे आनंद और प्रसन्नतासे उन्हें वंचित कर देंगे। उन्हें कच्चे और अधपके फल भी बिना किसी डरके दिये जा सकते हैं। ये उनके लिए विशेष लाभदायक हैं।

ईसाने कहा है

"बच्चोंको कष्ट न दो, उन्हें मेरे पास आनेसे मत रोको।"

ईसाके अधिकतर अनुयायी गाँवोंमें रहते थे और कारीगरी तथा किसानीका काम करते थे—उनमें जो कट्टर होते थे वे हमेशा खुलेमें पहाड़ अथवा रेगिस्तानमें रहते थे और उनमेंसे बहुतसे केवल वही खाते थे जो पृथ्वी अपने आप बिना किसानी या बागबानीके उपजाती है। इन पूर्णतः प्राकृतिक जीवन बितानेवालोंको कभी-कभी शिक्षणके लिए बच्चे सौंपे जाते थे।

इस प्रकार जब 'जान' निरे बच्चे थे, उनके माता-पिताने उन्हें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए एक रेगिस्तानमें भेज दिया था। उनके बारेमें कहा गया है

"बच्चा बड़ा और मजबूत हो गया और इजराइलियोंका साथ होनेतक रेगिस्तानमें ही रहा।"

हाँ, यदि बच्चे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना आरंभ कर दें तो यह निश्चित है कि उन्हें स्वास्थ्य और आनंद मिलेगा जिसे प्राप्त कर सकना बड़ोंके लिए साधारणतः संभव नहीं है।

इसलिए मैं माता पिताओंसे बहुत जोर देकर कहना चाहता हूं कि वे अपने बच्चोंको प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने दें, उन्हें प्रकृति पथपर लौटा ले चलें। इस कार्यके फलस्वरूप इस संसारमें वे अनिर्वचनीय आनंदके अधिकारी होंगे और जब वे स्वर्गमें पहुंचेंगे तो ईश्वर उन्हें उनके इस उत्तम कार्यके लिए पुरस्कृत करेगा।

जिन बच्चोंकी नैसर्गिक बुद्धि तीव्र रहती है वे अकसर पका भोजन ग्रहण नहीं करना चाहते, उन्हें फल ज्यादा पसंद आते हैं। पर उन्हें जबरदस्ती अप्राकृतिक भोजन कराया जाता है और कभी-कभी तो मार-मारकर। इसके फलस्वरूप वे स्वभावतः बीमार पड़ते हैं। उन्हें दवा दी जाती है वे फिर इसे भी लेनेमें पूरी आनाकानी तथा विरोध करते हैं इस समय भी माता, जिसके हृदयके कोने-कोनेमें रोगी बच्चेके प्रति प्यार भरा रहता है, कठोरतासे काम लेती है यद्यपि उसका हृदय अंदरसे रोता रहता है, बच्चेको जबरदस्ती दवा पिलाई जाती है और कभी-कभी तो कार्यकी सफलताके लिए छड़ीसे भी काम लेना पड़ता है। पर जब अप्राकृतिक चिकित्साका प्याला लबरेज हो जाता है, बच्चा उसके बोझके नीचे टूट जाता है और धरती माताकी शीतल गोदमें शरण पाता है। माता दुःखभरा टूटा दिल लिए बच्चेकी छोटी कब्रके पास खड़ी रहती है बेचारीको इसका पता नहीं होता कि बच्चेकी मृत्युका कारण वह स्वयं है।

साधारणतः माता पिता यही चाहते हैं कि उनके बच्चे सदा मोटे-ताजे बने रहें। जबतक कि उनके बच्चे मोटे किए गये सूअरोंकी भांति या चित्रोंमें अंकित देवताओंके दरबारमें गुरही

बजानेवाले फूले हुए बच्चोंकी तरह नहीं हो जाते, उन्हें सतोष नहीं होता।

बड़े भी मोटे, मांसल होने और अपना वजन बढ़ानेकी फिक्र में रहते हैं। पहले वे यह नहीं चाहते कि उनका पेट स्पष्ट आए, तब भी ये आदमीका मूल्य खिला-पिलाकर खानेके लिए मोटे किए गए पशुके समान ही समझते हैं।

यह भी प्रकृतिके विरुद्ध है अतः सर्वथा गलत है।

प्रकृतिके प्रांगणमें विचरण करनेवाले पशुको देखिए, वह बच्चा हो या बड़ा या बूढ़ा, उसका शरीर बड़ी सुंदर रीतिसे सुगठित एवं संतुलित होता है। न उसका शरीर ही मोटा होता और न कोई अंगविशेष ही फूला रहता है।

मनुष्यको तभी स्वस्थ समझना चाहिए जब कि उसका शरीर सुडौल है, एवं उसके अंग अनुपातयुक्त हैं तथा वह मोटा-भद्दा नहीं हो जाता और उसके शरीरपर जगह जगह चर्बी नहीं चढ़ जाती। अधिकतर फल खाकर रहनेवालेका ही शरीर सुंदर एवं सुगठित रह सकता है और यही भोजन मनुष्यको स्वस्थ रखता है। इसलिए बच्चोंको अधिकतर फल खिलाकर ही रखना चाहिए, ताकि वे भद्दे-मोटे न होकर सुंदर एवं सुरूप हों। स्वस्थ और सुंदर शरीरका गठन कैसा होना चाहिए यदि यह जानना हो तो अपोलो और बेलवेडियरकी मूर्तियां देखी जा सकती हैं।

सबसे अधिक भयानक एवं घातक गलती जो मनुष्यने अब तक अपने अनजानमें प्रकृतिके प्रति की है वह है टीकेका चलन।

यह विज्ञान एवं आंकड़ोंके आधारपर साबित कर दिया गया है कि टीका लगाना अनिवार्य होनेके पहले बच्चोंको चेचक

अधिक होती थी। जो प्रकृतिको समझता है वह आसानीसे अनुमान कर सकता है कि टीका लगाना कितना नुकसानदेह है। छोटे बच्चोंमें काफी जीवन शक्ति होती है जो उनके शरीरमें इकट्ठे पतक विजातीय द्रव्यको, बच्चोंके रोग कहे जानेवाले उभारोंद्वारा, जिनमें चेचक भी एक है निकालनेकी कोशिश करती है। इस शक्तिको टीकेका जहर बेकाम कर देता है। इस प्रकार बच्चेकी बाढ़में अड़चन पड़ती है और उसे प्रकृतिका सहारा पाकर शरीरका शोधन करनेवाले तीव्र रोगके बजाय बुरा जीर्ण एवं साधातिक रोग हो जाता है।

टीका एक बार देनेके बाद जब वह कुछ वर्षों बाद दुहराया जाता है उस समय यह स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि टीकेके फलस्वरूप शरीरमें कई प्रकारके रोग उत्पन्न होनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

पता नहीं मनुष्य-जातिको इस भयंकर भूलसे कब मुक्ति मिलेगी जिसके द्वारा वह अपने बच्चोंपर कानूनन बड़े-से-बड़ा कष्ट और कठोर-से-कठोर यातना लादती है।

मैं यहाँ फिर जोर देकर यह कहना चाहता हूँ कि गण्डमाला, क्षयरोग, मिरगी एवं अन्य अनेक प्रकारके स्नायु-सम्बन्धी रोग जो लोगोंको अक्सर होते रहते हैं अधिकतर टीका लगवानेके फल हैं।

यदि टीका लग ही जाय तो उसपर मिट्टीकी ठंडी पुल्टिस बांधनी चाहिए और उसे दिनमें कई बार और कई दिनोंतक बांधते रहना चाहिए। पुल्टिस जहां टीका लगा हो उसके चारों ओर दूरतक फैला दी जाय। इस वक्त बच्चा सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे। यदि इतना कर लिया जाय तो टीकेसे कोई हानि होनेकी सम्भावना नहीं है।

यदि टीका लगानेपर उस जगह दाने न उभरें तो कानून फिर टीका लगवाना होता है, ऐसी हालतमें यदि दुबारा टीका न्गे तो उसकी चिकित्सा पहले बताइ रीतिसे करनी चाहिए। तीन बार टीका लगानेके बाद चौथी बार टीका लगानेकी इजा-जत कानून नहीं देता।

रोगनाशक टीकोंके विरोधमें यहां कुछ विशेष तौरस कहनेकी आवश्यकता नहीं है। ये भी कम जहरीले नहीं होत। इनके लगानेसे डिप्थीरिया दब सकता ह पर टीकेके फलस्वरूप डिप्थीरियासे भी भयानक रोग कैंसर पागलपन आदि उभर सकते हैं।

अन्य तीव्र रोगोकी तरह डिप्थीरियाका इलाज भी बच्चका सवनाश किए बगर प्राकृतिक रीतिसे आसानीसे एव निश्चया त्मक रूपसे हो सकता ह। मृत्युके इस दूतसे माता पिताको जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं ह। इस रोगसे घबराकर जल्दी-में उन्हें अपने बच्चेको इसके 'प्रतिरोधक' इंजेक्शन नहीं लगवाने चाहिए।

बच्चोंके सारे रोग स्वास्थ्यकारक उभारमात्र हैं उनके सबधमें किसी प्रकारकी चिंताकी जरूरत नहीं ह। कोइ भी रोग (डिप्थीरिया, मोतीझरा, लाल बुखार, मियादी बुखार आदि) होनेपर पहली बात यह करनी चाहिए कि कमरकी खिडकियां खोलकर बच्चेको नगा ही लिटा देना चाहिए और यदि वह चाहे तो वही चलने-फिरने देना चाहिए। यह जितनी ही देरतक किया जा सके उतना ही अच्छा है। यदि सभव हो सके तो इस समय बच्चेका खुली जगहमें टहलना ज्यादा अच्छा है। इस समय प्राकृतिक स्नान भी कराना चाहिए और पेडूपर

मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिए। यदि बच्चेको डिप्थीरिया हो गया हो तो मिट्टीकी पट्टी गदनपर रखनी चाहिए। यह भी आवश्यक ह कि बच्चेको कुछ भी खानेको न दिया जाय, और यदि दिया भी जाय तो बहुत थोडा सो भी फल और मेवे। ज्यों ही सभव हो बच्चेको बाहर खुली जगहमें जाने देना चाहिए (यदि सभव हो तो नगे बदन ही)। इस विधिसे रोग जिस तजीसे जायगे उसे देखकर आपको आश्चय होगा और आप देखेंगे कि रोग जानेके बाद बच्चे अधिक प्रसन्न रहने लगे ह और उनके चेहरेपर आभा आ गइ है। तीव्र रोगके द्वारा बच्चका शरीर बहुतसे विजातीय द्रव्य और कूडे-करकटसे अपनेको मुक्त कर लेता है।

हमारे अनेक अप्राकृतिक ढगों (गलत भोजन वायु एव प्रकाश-विहीन कमरेका वास, मोटे रगीन चुस्त कपडोंका पहिनाव) के कारण बच्चे सुकुमार हो जाते ह। अकसर वे मद्य रूपी राक्षसीके चगुलसे भी दूर नहीं रखे जाते। स्कूलमें पहुचत-पहुचते लडके अपने बडोंके दोषोंकी नकल करने लगते हैं। वे बडे घमडके साथ शराब और सिगरेट-बीडी पीने लगते हैं। सभी बडे, और खास तौरसे अध्यापक, यदि उच्च जीवनका उदाहरण बालकोंके सामने रख सकें तो इस दिशामें बहुत काम हो सकता है।

विलासिता एव अन्य प्रकारकी अप्राकृतिक आदतोंके तथा आजकी मर्यादित एव सवगुणकारी (!) स्कूलकी पढाइकी अविवेकपूण आवश्यकताओं एव श्रमके कारण बच्चोंके स्नायु और आवश्यकतासे अधिक भार पडता है और वे कमजोर हो जाते हैं। इस प्रकार बच्चोंमें असमयमें ही कामुकताकी

प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसे वे वशमें नहीं कर पाते। फलत जवानीके सबसे अधिक घातक शत्रु हस्तमथुनका पदार्पण होता है। बच्चेके आचरणमें आए शर्मीलेपनको देखकर सब माता पिताको तुरत अदाज हो जाता है कि उनका सारा यौवनके सबसे बडे शत्रुके चगुलमें फँस गया है जिससे छुटकारा पानेके लिए बेचारा तडफाया करता है, मन-ही मन बुरी तरह अपनी भर्त्सना करता है और आत्मग्लानिसे मरता रहता है। माता-पिताको चाहिए कि इस रोगके शिकार बच्चेको कोई दड न दें। ऐसे बच्चेका मानसिक एव शारीरिक विकास मार-पीट और जोर-जबरदस्तीके बजाय बिल्कुल भिन्न ही रीतिसे करना चाहिए। दड खास तौरसे शारीरिक दड तो कभी देना ही नहीं चाहिए। कडे दडके भयसे बच्चेको इस रोग से मुक्त करनेकी कोशिश करना बिल्कुल गलत है। इस समय तो बच्चेको प्यारकी खास तौरसे जरूरत होती है। माता पिताको बडे प्यार और कोमलतासे ऐसे बच्चकी चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु, प्राकृतिक भोजन, कसरत आदि प्राकृतिक साधनों द्वारा करनी चाहिए। इस विधिसे उनका बच्चा उस राक्षसके हाथसे शीघ्रतासे मुक्त हो जायगा और फिर स्वाभाविक रूपसे प्रसन्न बदन रहने लगेगा और उसका चेहरा चमकने लगगा।

जब बच्चोंको इस तरह नहीं सभाला जाता तो वे जवान हो जाते हैं पर उनमें न जवानीका उत्साह होता है न आनद जीवन उन्हें भारस्वरूप लगता है। वे कमजोर, चिड़चिडे और थके-से रहते हैं और उनमें किसी प्रकारकी आशा नहीं रह जाती। उनकी आँखोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि वे आत्मग्लानि और दुःखमें डूबे रहते हैं।

अकसर बच्चोंको सोये-सोये बिछावनमें पेशाब कर देनेकी आदत पड़ जाती है। यह आदत भी प्राकृतिक चिकित्साद्वारा छूट जाती है। इस रोगसे पीड़ित बच्चोंको भी किसी प्रकारका दंड देना पाप है।

एक बार फिर मैं नंगे पैर चलने और खास तौरसे बच्चोंके लिए नंगे पैर चलनेकी आवश्यकतापर जोर देना चाहता हूं। बच्चोंके कपड़ोंको भी सादा और प्राकृतिक रखनेपर मैं एक बार फिर जोर देना चाहता हूं। छातीको व्यर्थके कसे कपड़ेसे ढके रहनेकी जरूरत नहीं है। यह नियम बच्चों और बड़ोंको समान रूपसे पालन करना चाहिए। कपड़े ढीले रहें, ताकि हवा छातीतक पहुंच सके। बच्चोंके कपड़े बनाते वक्त इसका खास खयाल रखना चाहिए।

कई बार प्राकृतिक जीवनके अनुकरणसे बच्चोंकी बढ़ी मानसिक शक्ति देखकर मुझे आश्चर्य हुआ है। दर्जेमें हमेशा पिछड़े रहनेवाले लड़कोंको शीघ्र ही पाठ याद होने लगे और वे जल्दी बिना किसी प्रयासके अपने साथियोंसे आगे बढ़ गए।

मैंने देखा कि इनमेंसे कई युवक, जो फौजमें भर्ती हो गए, वहांके कठिन जीवन और परिश्रमको खुशी-खुशी बिना किसी प्रयासके बर्दाश्त कर रहे थे। आगे चलकर तो उन्होंने फौजमें बड़ा नाम कमाया।

मैंने बार-बार कहा है कि प्राकृतिक जीवनका मनुष्यपर एक बड़ा प्रभाव यह भी पड़ता है कि मनुष्यकी आत्मा परिष्कृत होती है और वह भद्र बनता है। यह चीज बच्चोंमें बराबर देखनेको मिल सकती है। निश्चय ही प्राकृतिक जीवन वह नींव है जिसपर आत्माके लिए ईमानदारी और सचाईका भव्य

प्रासाद बन सकता है। इसलिए प्राकृतिक जीवन स्वीकार करते समय हमें आत्माको निर्दोष बनानेका पूरा प्रयास करना चाहिए और बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षामें इसका विशेष यत्न करना चाहिए।

शिक्षा क्या है ?

मनुष्य ईश्वरकी प्रतिकृति है वह प्यारका सार है। इसलिए उसकी शिक्षा प्रकृतिके अनुरूप ही होनी चाहिए। जहांतक बन सके मनुष्यमें ईश्वरीय भावको लौटाना चाहिए।

ईसाने कहा है

'तू अपने सच्चे मालिक ईश्वरको पूरे दिलसे अपनी रूह और अपने दिमागकी सारी ताकतके साथ प्यार कर ।"

"अपने पड़ोसीको तू उसी तरह प्यार कर जिस तरह तू अपनेको प्यार करता है।"

इन शब्दोंमें मनुष्यके लिए सही प्राकृतिक शिक्षा भर दी गई है।

शिक्षणपर आजतक जो बड़े-से-बड़े ग्रंथ लिखे गए हैं इस गंभीर विषयपर जितने अधिक-से-अधिक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए हैं उन सबमें मिलाकर उतना भी सार नहीं है जितना ईसाके केवल इस एक वाक्यमें है। आज लोग युवकोंको वैज्ञानिक ढंगसे शिक्षा देते हैं, पर होता यह है

'ज्ञान बढ़ जाता है, पर हृदय घट जाता है।"

एक लड़का, जो जिस तिस तरह लैटिनकी पहली किताबके

शब्द याद कर लेता है, अपने साथ खेलनेवाले लडकेको जो साधारण स्कूलमें पढ़ने जाता है हेठी निगाहसे देखने लगता है, और जल्द ही उसका साथ छोड देता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों लडका पढ़ाईमें बढ़ता जाता है उसका झूठा घमड और बनावटी ढग बढता जाता है, जो बहुत खतरनाक है। लेकिन हमें आजकी शिक्षाद्वारा पदा हुई कृत्रिमता और खोखलेपन तथा सचाईके अतरको समझना चाहिए। हमारे आजके युवककी चाल सुधारनेके लिए उससे ड्रिल कराई जाती है, उसमें बाहरी चाल-ढालके सब नियम बताए जाते हैं, पर उसके हृदय और स्वभावको सुदर बनानेके लिए कुछ भी नही किया जाता। उसकी आत्मामें दृढता आनेके बदले उसका अधःपतन हो जाता है। अप्राकृतिक जीवन बितानेवाले फूहड अशिक्षित लडकोंका उदाहरण भी अनुकरणीय नहीं है पर उनका अपरिष्कृत व्यवहार ऐसी नम्रता और मत्री भावनासे अच्छा है जिनका हृदयसे कोई सबध नही है। बनावटी नम्रता और सहृदयता धोखा और दगाबाजी नहीं तो और क्या है ? अत बच्चोंको प्राकृतिक जीवन बिताना सिखाना चाहिए, यह उन्हें ईश्वर और मनुष्यको प्यार करना सिखायेगा और प्रेम ही हमारे जीवनको उन्नत बना सकता है। हमें उन्हें अपने साथीको सच्चे हृदयसे प्यार करना सिखाना चाहिए। क्योंकि ईसाके शब्दोंको दूसरी तरह यों भी तो कहा जा सकता है कि जो अपने पडोसीको प्यार करता है वह ईश्वरको भी प्यार करता है। युवकोंको ईश्वरको प्यार करना अवश्य सीखना चाहिए और अपने साथियोंके प्रति अपने हृदयमें प्रेम और मैत्रीकी भावना रखनी चाहिए जिसे उन्हें गरीब-अमीरका [illegible]

किये बगर प्रदर्शित करना चाहिए । जिन माता पिताके हृदयों-मेंसे प्रेमकी दैवी विभूति नष्ट हो गइ है अथवा जिन्होंने फिर उसे जाग्रत कर लिया है उन्हें अपने बच्चोंमें प्यार पदा करनेकी रीति स्वय ज्ञात हो जायगी । केवल इसी विधिसे मुक्ति एव शांतिप्रदायिनी शिक्षा एव सद्गुणोंकी प्राप्ति हो सकती ह। केवल प्राकृतिक जीवन और अपने साथियोंके प्रति सच्चा प्यार ही मनुष्यका इस ससारमें आनद—प्रसन्नता प्रदान कर सकत हैं और इस प्रकार प्राप्त आनद और प्रसन्नता किसी अवस्थामें भी मनुष्योंका साथ नहीं छोडते ।

ऐसे बच्चेके जीवनमें दुख और अभावका कभी प्रवेश नहीं होता ।

कितने ही अभिभावकोंका खयाल है कि कालेजकी शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर ही उनमें बच्चेका जीवन सुखी हो सकेगा। यह शिक्षा दिलानेके लिए ये बहुत चितित रहत हैं और बिना बच्चेमें स्वास्थ्यका खयाल किए उसे कालेजमें भेजते हैं और इस प्रकार ये उसे घोर विपत्तिमें फँसा देते हैं। वे यह भी चाहते हैं कि लडका पढ लिखकर ऊचा ओहदा पाए, लबी तनस्वाह मिले और लोग उसका खूब आदर और सम्मान करें ।

बाहरी सम्मानकी चकाचौंधमें मत आइए । अक्सर लोग इसके अदर-ही-अदर पीडाओंसे भरा भारमय जीवन व्यतीत करते ह। सुखी वही है जो पूर्णतया स्वस्थ है, जिसकी आवश्यकताए कम ह—और जो सादगीसे और प्रकृतिसे निकट रहता है ऐसा आदमी स्वतत्र है । उसके हृदयमें मनुष्यके प्रति प्यार होता है, और ईश्वरकी सहायताके प्रति विश्वास ।

जिस लडकेपर हमेशा मानसिक काय और चिताका बोझ

पड़ा रहता है उसके स्नायु दुर्बल हो जाते है फलत उसकी सारी मेहनतोंके बावजूद रोग और कष्ट ही उसके पल्ले पड़ते हैं। कोशिश करके भी निराशा ही उसके हाथ आती है। ओहदा, सम्मान, नाम, धन, उसे नजदीक आए दिखाइ देते है पर वे उसकी पकड़में नहीं आते। लड़कियोंपर मानसिक काय लादना तो और भी समझमें नही आता। उनके लिए तो वह लड़कोंसे भी अधिक हानिकारक है। स्त्रियां और लड़कियां मानसिक कायकी कठिनाइ सहनेके लिए बनी ही नहीं है। जिन माता पिताओंको इसकी अनुभूति हो गइ है कि सुख बड़े कहलानेवाले समाजमें सीमित न होकर वह व्यक्तिके हृदयमें है और फिर निधन सतोषी लोगोंमें ही परिव्याप्त है, बहुत सोच-समझकर ही अपने बच्चोंके लिए धधा चुनेंगे।

सभ्यता, विज्ञान और धनके छलभरे सुख और आनदके बदले प्रकृतिके साहचयमें प्राप्त सच्ची प्रसन्नताको पसद कर सकना आज अनेकोंके लिए कठिन है। जिन माता पिताओंने विचारपूर्वक अपना दृष्टिकोण बदल लिया है, जो अभिमानवश कोइ काय नहीं करते, न अपनेपर आम विचारोंका असर ही पड़ने देते हैं और जो अपने हिताहितको पूरी तरह समझ सकते हैं वे अपने बच्चोंको स्कूलकी उतनी ही शिक्षा दिलवाएंगे जितनी कि आजके जमानेमें नितांत आवश्यक है। स्कूलकी मदमनी हालतपर जरा गौर कीजिए, तब आप स्वयं कहेंगे कि लड़कोंकी स्कूली पढ़ाइ जितनी कम हो उतना ही अच्छा है। स्कूल कम जानेके कारण लड़केको अच्छा धधा मिलनेमें कोइ कठिनाइ नहीं होगी।

भविष्यमें तो फलकी बागवानी आदि अनेक छोटे

व्यापारोंके चल निकलनेकी आशा है जिनका करनेवाला स्वतंत्र, सुंदर एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकेगा। तब विज्ञान पढ़ानेवाले स्कूलमें मुक्ति खोजनेकी आवश्यकता नहीं है यह मुक्ति तो प्राकृतिक जीवनके स्वाभाविक परिणाम, अतः शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और इश्वर तथा उसके बंदोंको प्यार करनेसे मिलेगी।

यही जीवनका सच्चा दर्शन है। अपने तथा अपने बच्चोंपर इसका उपयोग करनेसे ही इस सदीका हमारा प्रचलित रोग स्नायुदौर्बल्य शीघ्रतासे जायगा और मनुष्य-जातिपर नूतन आनंदकी वर्षा होगी।

अनेक पैतृक दुर्बलताओंके कारण जन्मसे बच्चोंका शरीर, मन तथा आत्मा स्वाभाविकसे कुछ भिन्न होती है। यदि ऐसे बच्चोंको माता-पिता अपने इच्छित आदर्शकी ओर जबरदस्ती ले जानेकी कोशिश करेंगे तो फल अप्रीतिकर एवं घातक होगा।

जैसा बच्चा इश्वर हमें दे उसके लिए हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए और उसका पालन एवं शिक्षण प्राकृतिक ढंगसे, जिसका कि मैंने यहां बयान किया है, करना चाहिए।

इसलिए शिक्षणमें भी हमें प्रकृतिसे ही पथ प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। यह शिक्षणका सबसे आवश्यक सिद्धांत है।

उपचार

आरोग्यलाभसंबंधी विवरणों, धन्यवादके पत्रों आदिका वस्तुतः कोई महत्त्व नहीं है। अप्राकृतिक साधनोंसे दिखावटी लाभ आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष रूपमें तो रोग अच्छा हो जाता है, पर बादमें उससे भी खराब दूसरा रोग पैदा हो जाता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि यह दूसरा रोग तत्काल प्रकट हो जाय, संभव है, यह पहले-जैसा बुरा भी न जान पड़े, पर दरअसल यह ज्यादा खतरनाक होता है। बहुतसे निःशक्त लोगों, विशेषकर नाड़ीदौर्बल्यवालोंको सुधार जान पड़ने लगता है और वे अपनेको नीरोग समझकर आरोग्य-लाभका विवरण भी लिखकर भेजते हैं पर पीछे भ्रम दूर हो जानेपर उन्हें घोर नैराश्य होता है।

इसके अलावा प्रशंसात्मक पत्र प्राप्त करनेके लिए चाल-बाजियां भी खूब की जाती हैं। अगर उनपर विचार करें तो हम आसानीसे समझ जायेंगे कि गुप्त और पेटेंट दवाएं बेचनेवाले धूर्त लोग किस तरह आरोग्यलाभकी बहुत-सी रिपोर्टें पेश करते हैं। इसलिए विचार करनेका विषय यह है कि कौन-सी पद्धति कहांतक प्राकृतिक नियमोंके अनुकूल है। जो पद्धति प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण करनेवाली होगी वही स्वास्थ्यकी दिशामें अग्रसर कर सकेगी।

मुझे आशा है कि मेरी पद्धति लोगोंका विश्वास प्राप्त कर सकेगी, क्योंकि यह हर पहलूसे प्रकृतिके अनुकूल पड़ती है। इसी विचारसे मैं यहां पत्रोंका उद्धरण और उपचारोंका अधिक विवरण न देकर स्पष्टीकरणके लिए सिर्फ थोड़ेसे उदाहरण दे रहा हूं।

कोई चीज खानेमें असमर्थ थे और रातमें उन्हें लगभग चालीस वार कै हुआ करती थी।

वे झंझरीदार झोंपड़ीमें रखे गये और पेड़ूपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगाई गई। पट्टी रहते समय तो कै बंद रहती पर हटा लेनेपर फिर शुरू हो जाती। इससे रोगमें मिट्टीकी प्रभावकारिता स्पष्ट हो गई। कभी-कभी साधारण स्नान कर लेते थे, कुछ समय हो जानेपर वायु प्रकाश-स्नान भी चलाने लगे।

दस दिनोंके बाद मिट्टीकी पट्टी बंद कर देनेपर भी उन्हें कै नहीं आई। उस समयसे उनकी हालतमें सुधार होने लगा। भूख भी अच्छी मालूम होने लगी और बिना किसी हिचकके भरपेट फल खाने लगे। उदर-विकार दूर होनेपर सुषुम्नाका क्षय भी अच्छा होने लगा।

मूत्रावरोध—जलोदरका पूर्वरूप

श्री दो सालसे सख्त बीमार थे और इसके कारण उन्हें अपना काम छोड़ देना पड़ा था। कृत्रिम सहायता लिये बिना कभी पेशाब नहीं उतरता था और पैरका शोथ भी शुरू हो गया था। इस समयतक वे कम-से-कम ७० चिकित्सकोंको अपना रोग दिखला चुके थे जिनमेंसे लगभग २० तो प्रसिद्ध प्राध्यापक थे। उन्होंने कई पेटेंट दवाओंका भी इस्तेमाल किया था और कुछ हदतक भ्रममें डालनेवाले आरोग्यलाभका अनुभव भी किया था, पर इन अप्राकृतिक उपचारोंसे रोग घटनेके बजाय बढ़ता ही गया। मेरे यहां आनेके समय उनकी बीमारी भयंकर रूप धारण कर चुकी थी और वे मौतके डरसे जड़-से

हो गये थे। मूत्र अन्य मार्गोंसे निकलनेका प्रयत्न कर रहा था, यह ऊपरसे ही देखनेसे स्पष्ट हो जाता था। घुटनेके नीचे कई जगह खुले फोड़े हो गये थे जिनसे बदबूदार पछा निकल रहा था। हालत कैसी खतरनाक थी यह समझनेमें देर न लगी। वे झकरीदार झोंपड़ीमें पहुचा दिये गये जिसमें उन्हें शुद्ध हवा मिल सके। पेड़ूपर और वृक्कवाले भागपर मिट्टीकी पट्टी लगाई गई जो थोड़ी देरके बाद बदल दी जाती थी। वायु-प्रकाश-स्नानके लिए उन्हें कभी-कभी झोपड़ीसे बाहर भी आना पड़ता था। धरतीसे शक्ति प्राप्त करनेके अवसरोंका भी उन्होंने लाभ उठाया। पहले केवल फल खानेको दिये जाते थे, पीछे दूध, मक्खन और रोटी भी दी जाने लगी। इस उपचारसे उन्हें दूसरे ही दिन काफी पेशाब उतरा और साथ ही मामूली पाखाना भी हुआ। तीसरे दिन चलने लगे और चौथे दिन तो उनमें दौड़नेकी शक्ति आ गई। दूसरे सप्ताहमें पैरके जख्म सूख गये और वे पहाड़पर तीन-तीन, चार-चार घंटे चक्कर लगाने लगे।

नाड़ी-क्षोभ

श्री के नाड़ीसंस्थानमें इतना क्षोभ था कि वे ६ माससे काम छोड़कर घर बैठे हुए थे। रातको उन्हें जरा भी नींद नहीं आती थी और बेचैनीके मारे छटपटाते रहते थे। वायु प्रकाश-स्नान विशेष रूपसे कराया गया। पांचवें दिन वर्षाके कारण ठंढ अधिक थी। इससे उन्हें बड़ा लाभ हुआ। वे बहुत जल्द नीरोग होकर अपना काम करने लग गये। नाड़ीरोगोंमें ठंढी हवा और प्रकाशका स्नान बहुत प्रभावकारी होता है।

श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया)

श्री ६ सप्ताहसे न्यूमोनियासे पीड़ित थे। उन्हें बड़ी परेशानी थी। औषधोपचार चल रहा था और मेरे यहां आनेके पहलेतक वे एक कमरेमें कैदीकी-सी हालतमें रखे गये थे। घातक ठण्ड लगनेका भय उनके दिमागसे निकाल देनेपर वे घण्टों नंगे बाहर घूमने लगे। पहले ही दिन शामको उनकी तबीयत हलकी जान पड़ने लगी। उनके मतसे ६ सप्ताहके औषधोपचारसे जितना लाभ हुआ था उससे अधिक सिर्फ एक दिनमें सादे तरीकोंसे हुआ। कुछ ही दिनोंके उपचारसे वे बिलकुल नीरोग हो गये।

शोथ—जलोदर

श्री क्षयरोगसे ग्रस्त थे। उनके चिकित्सकोंके मतसे रोग असाध्य था। मेरे यहां वे बड़ी मुस्तदीसे वायु प्रकाश स्नान चलाने लगे। शोथके स्थानों विशेषकर उदर और पर पर मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग किया गया। झोंपड़ीके परदे रातको यथासम्भव खुले रखे जाते थे। आहार भी प्राकृतिक रखा गया। पहले ही सप्ताहमें अच्छा फल दिखने लगा और वे शीघ्र ही नीरोग हो गये।

श्री का जलोदर सिर्फ बारह दिन उपचार करनेपर चला गया। इतनी शीघ्रतासे नीरोग हुआ देख उनका औषधोपचारक अवाक् रह गया।

गलेका रोग

श्री गलेके रोगसे वर्षोंसे पीड़ित थे। औषधोपचारसे

उन्हें अबतक कोई लाभ नहीं हुआ था। उपचारके और साधनोंके साथ गलेपर गीली मिट्टीका प्रयोग करनेपर उन्हें जल्द ही आरोग्यलाभ हो गया।

सिरकी रूसी

कुमारी के सिरमें रूसी पैदा हो गई थी। फलाहार वायु-प्रकाश-स्नान आदिके द्वारा शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेका प्रयत्न किया गया। सिरपर गीली मिट्टीकी पट्टी भी लगाई जाती रही जो उसे बहुत अनुकूल जान पड़ी। चार ही सप्ताहमें वह बिलकुल अच्छी हो गई।

सुषुम्नाका क्षय

श्री सुषुम्नाके क्षयसे ग्रस्त थे। एक प्रसिद्ध चिकित्सालयमें चौदह सप्ताह रहे पर कोई लाभ नहीं हुआ। वायु-प्रकाश-स्नानसे उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई। परोंपर गीली मिट्टीका प्रयोग किया गया। शीघ्र ही सुधार देख पड़ने लगा। दो सप्ताह बाद वे लगातार घंटों टहलने लगे। चलते समय पैरोंका झटका कम पड़ता जाकर बिलकुल दूर हो गया।

दंतपीड़ा

श्री भयकर दंतपीड़ासे हफ्तोंसे बेचैन थे। दंतोपचारकोंने दाँतोंके गड्ढोंको भरकर पीड़ा-नाशक दवाओंका भी इस्तेमाल किया, पर किसीसे कोई लाभ नहीं हुआ। दर्दवाले दाँतके सामने गालपर मिट्टीकी पट्टी देनेपर कुछ दिनोंमें दर्द बिलकुल दूर हो गया। मिट्टी कभी धोखा नहीं देती, दर्दके कारणको ही दूर कर देती है।

अस्थिक्षय

श्री के परकी अस्थि क्षयग्रस्त थी। वे ६ महीने अस्पतालमें रहे, दो बार नश्तर लगा और नीचेकी एक हड्डी भी निकाल दी गई, फिर भी पर अच्छा नहीं हुआ। अगर उन्होंने मेरे उपचारका सहारा न लिया होता तो शायद पर काटकर अलग भी कर दिया गया होता। वायु प्रकाशस्नान, फलाहार आदिके साथ गीली मिट्टीके प्रयोगसे बिलकुल नीरोग हो गये। निकाली हुई हड्डीकी जगह नई हड्डी तो नहीं बढ़ाई जा सकती थी पर पैर बिलकुल नीरोग हो गया और वे लगड़ाते हुए उसका उपयोग भी करने लगे।

आंत्रिक सन्निपातज्वर

एक दस बरसका बच्चा आंत्रिक सन्निपातज्वरसे ग्रस्त हुआ। उसकी मातानें पत्रद्वारा मेरी राय पूछी। मैंने खिड़कियां खुली रखकर नग्न सुलानें, भोजन बंद कर देने या नाममात्रका देने और रोज मामूली स्नान करानेको कहा। इस उपचारसे बच्चा दो-तीन दिनोंमें ही अच्छा हो गया। मातानें औषधोपचारकसे कहे बिना चुपके-चुपके यह उपचार किया। खतरनाक बुखारसे अत्यल्प समयमें ही बच्चेको मुक्त देखकर चिकित्सकको बड़ा अचंभा हुआ। उसने अपने आश्चर्यपर यह कहकर परदा डालनेकी कोशिश की कि निदानमें गलती हुई होगी, यह आंत्रिक सन्निपातज्वर नहीं था, हालां कि वह पहले कह चुका था कि बदनपर नजर आनेवाले दाग आंत्रिक सन्निपातज्वरके ही सूचक हैं। अगर रोगका चिह्न प्रकट

होनेके साथ ही ठीक उपचार हुआ होता तो कुछ ही घंटोंमें वह अच्छा हो गया होता।

साधारण निर्बलता

कुमारी   नाडी-संस्थानकी अस्तव्यस्तताके कारण बहुत कमजोर हो गई थी और उसका सिर बराबर भारी रहा करता था, वह बहुत कम चल पाती थी। भगवानमें उपचार करानेपर दो ही सप्ताहमें वह बिना थकावट महसूस किये ११ घंटे रोज चलने लगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि फलाहार, वायु प्रकाश-स्नान आदिसे शक्ति प्राप्त होती है। साधारणतः यही विश्वास किया जाता है कि मांसाहारसे ताकत बढती है, पर तथाकथित शक्तिवर्द्धक मांसाहार ही उक्त कुमारीकी निर्बलता और अस्वस्थताका कारण हुआ। फलाहारके सहारे वह जल्द ही स्वस्थ और सशक्त हो गई।

मूर्च्छा

श्रीमती   को मूर्छा हो गई थी। गर्दनपर गीली मिट्टी-की पट्टी रखनेपर उन्हें फौरन होश हो गया। इससे स्पष्ट है कि मिट्टीकी पट्टी रोजमर्राके जीवनमें भी लाभदायक होती है।

भगंदर

श्री   को भगंदर हो गया था और मेरे यहां आनेके पहले नश्तर भी लगाया जा चुका था। मुझे उनकी अवस्था चिंताजनक जान पड़ी। वे बैठनेके लिए हमेशा अपने साथ रबरका तकिया लिए चलते थे। मुझे भी उनके नीरोग होनेकी

आशा नहीं थी, क्योंकि मिट्टीकी पट्टी रुग्णभागतक नहीं पहुंच सकती थी और बाहरसे भी उसपर कोई प्रभाव नहीं डाला जा सकता था। फिर भी मिट्टीकी पट्टीका ही प्रयोग किया गया और इसीसे वे अच्छे भी हो गये।

अंधता

श्री की एक आंख कुछ दिनोंसे बिलकुल अंधी हो गई थी। औषधोपचारकोंकी सारी कोशिश बेकार साबित हुई। मेरा उपचार चलानेपर कुछ ही दिन बाद उन्हें कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। कुछ हफ्ते बाद आंख बिलकुल अच्छी हो गई। मिट्टीकी पट्टीने इसमें भी आश्चर्यजनक काम कर दिखलाया। उनके घर पहुंचनेपर उनका चिकित्सक मेरे उपचारकी यह सफलता देखकर अवाक् रह गया।

बालविसूचिका

एक ढाई सालके बच्चेको (बाल) विसूचिका हुई। उसको ज्वर हो आया। माता प्राकृतिक उपचारकी पुरानी पद्धतिसे परिचित थी। उसने दो बार शीतल स्नान कराया जिससे बुखार कम हो गया, पर फिर बढ़ गया। दूसरे दिन उसका पिता, जो मेरे सरल ढंगसे परिचित था, घर आया और बच्चेको खुली खिड़कीके सामने डेढ़ घंटे नग्न अवस्थामें अपनी गोदमें रखा जिससे बुखार बहुत कम हो गया। दूसरे दिन ज्वर फिर कुछ बढ़ा, पर वायु प्रकाश-स्नान करानेपर रोग पूर्ण रूपसे चला गया।

बालविसूचिका होनेपर माताएं बहुत घबड़ा जाती हैं और औषधोपचारद्वारा नन्हे-से शरीरको हानि पहुंचाई जाती

ह। मेरी पद्धतिमें शत्रुका धीरतापूर्वक सामना किया जाता है और भयका नाम भी नहीं रहता, क्योंकि स्वयं प्रकृति हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती है जो हमारा साथ कभी नहीं छोड़ती। पद दफा हवा और प्रकाशका स्नान, जिसके लिए किसी यंत्र कवर आदिकी कोई जरूरत नहीं होती और कुछ खर्च भी नहीं पड़ता, बच्चेको बिलकुल नीरोग कर देता है और बच्चा जोशमें भरकर उछल-कूद मचाने लगता है।

जननेंद्रियके रोग

श्री को वर्षोंसे नाड़ी-दौर्बल्य था। सिर बराबर भारी रहा करता था जिससे वे काम करनेमें असमर्थ हो गये थे और जीवनसे ऊबकर आत्महत्याकी ही बात सोचा करते थे। औषधोपचारकोंके निदान परस्पर विरोधी थे और सबने रोगका दूसरा-ही-दूसरा कारण बतलाया। मेरा उपचार आरंभ करनेपर शीघ्र ही परिवर्तन देख पड़ा। एक पक्षके बाद सूजाक उभर आया। उन्होंने बतलाया कि कुछ वर्ष पहले एक लड़कीसे संबंध होनेपर यह रोग हुआ था और एक लेपका प्रयोग किया गया था। मेरे उपचारसे सूजाक जल्द ही अच्छा हो गया और उसके साथ ही नाड़ीदौर्बल्य भी जाता रहा। शक्ति प्राप्त हो जानेपर फिर जीवनमें दिलचस्पी पैदा हो गई।

यौन-अनतिकता मनुष्यको सबसे अधिक हानि पहुंचाती है। यह भ्रष्टाचार आज बहुतसे रोगोंका कारण हो रहा है। यौनरोग जननेंद्रियोंमें ही उत्पन्न होते हैं और उनका पहला रूप सूजाक है। यह एक प्रकारसे तीव्र यौनरोग कहा जा सकता

है। मूत्रनलिकामें प्रतिश्याय हो जाता है और मवादके रूपमें उससे विष निकलने लगता है।

जीवन संयत न रहनेपर सुजाकसे छुटकारा नहीं मिलता, और औषधोपचारसे तो विष शरीरमें स्थायी रूपसे अड्डा जमा लेता है। इससे अधता, क्षय, घातक अर्बुद आदि भयंकर रोग हो जाते हैं इसलिए मनुष्यको इस प्रकारके दुष्कर्मसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए और यदि भूलसे रोग हो ही जाय तो आरंभ होनेके साथ ही सही प्राकृतिक उपचार कराना चाहिए।

उपदंश और तज्जन्य व्रण सुजाकसे भी खतरनाक होते हैं। उनकी पहचान जननेंद्रियपर हुए फोड़ेसे हो सकती है। अगर इनपर जल्द ध्यान न दिया जाय तो शरीरमें विष तेजीसे बढ़ने लगता है और विभिन्न रूपोंमें प्रकट होता है। सारे शरीरमें यहाँतक कि मुहके अंदर भी फोड़े हो जाते हैं जिससे मनुष्यको समाजका त्याग कर देना पड़ता है। यह विष अपस्मार, उन्माद, सौषुम्निक क्षय आदि रोगोंके रूपमें भी प्रकट हो सकता है।

ये सब बुराइयाँ विशेषकर पारेके प्रयोगसे ही उत्पन्न होती हैं। यह शरीरके विषको निकाल बाहर करनेमें तो असमर्थ बना ही देता है, ऊपरसे और भयंकर विषके रूपमें शरीरमें पहुंच जाता है। इसके उपचारमें पारेका प्रयोग प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध और मानवताके प्रति भयंकर अपराध है।

उपदंश भी प्राकृतिक उपचारसे अच्छा हो जाता है। रोग हालका होगा तो जल्द ही अच्छा हो जायगा, पुराना हो तो धैर्य और अध्यवसाय आवश्यक होगा।

मधुमेह

यह रोग भी बहुत भयंकर होता है। औषध-विज्ञान इसमें खास तौरसे मांसाहारकी राय देता है, पर इस तरीकेसे मधुमेह कभी अच्छा होते नहीं देखा गया। और रोगोंकी तरह यह भी अप्राकृतिक जीवनका ही परिणाम होता है। मांसाहार-संबंधी उक्त गलत धारणाके कारण रोगियोंको फलाहारपर लाना कठिन होता है। इस धारणाका शीघ्र अंत कर लोगोंको यह हृदयंगम कर लेना चाहिए कि रोगोंमें कोई अंतर नहीं होता और सबका उपचार प्रकृतिके नुस्खेके मुताबिक होना चाहिए। जब मनुष्यको उपचारके सही तरीकेका पता चल जायगा तो मधुमेहसे डरनेका कोई कारण नहीं रहेगा।

फोड़े

श्री को दो सालसे सारे शरीरमें फोड़े हो गये थे। अबतक वे पेटेंट लेपोंका प्रयोगकर उनसे पिंड छुड़ा रहे थे। पिंड क्या छुड़ा रहे थे एलोपैथिक लेपोंके सहारे विकृत द्रव्यको बाहर न निकालकर शरीरमें लौटाते जा रहे थे। इस अप्राकृतिक उपचारका परिणाम यह हुआ कि उनका बायां पैर इतना सूज गया कि वे चलने फिरनेसे लाचार हो गये। जांघके ऊपरी हिस्सेपर विजातीय द्रव्यका इतना अधिक असर हुआ था कि वह बिल्कुल काला पड़ गया था। स्थिति चिंताजनक थी। बहुतसे औषधोपचारकोंने तो पैर कटवा देना ही अच्छा समझा होता। विश्व-व्यापक उपचार गीली मिट्टीकी पट्टी ने इसपर भी अपना कर्तव्य पूरे तौरसे निभाया। जांघके ऊपरी हिस्से—सूजनवाली जगह—पर पट्टी लगानेपर

चौथे दिन सारा विजातीय द्रव्य एकत्र हो गया और वहांसे मवाद तथा दूषित रक्त निकलने लगा। वहां एक छेद हो गया और उसी राहसे विजातीय द्रव्य रोज सतहपर आने लगा। लगातार पट्टी लगाते रहनेपर कुछ दिनोंमें जख्म भर गया। पट्टीके साथ-साथ शुद्ध हवा, धूप, वर्षा, फलाहार आदिने भी विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेमें मदद की। मवाद निकलते समय रोगीका पेशाब भी रक्त-जैसा होता था जिससे यह स्पष्ट था कि उस भागसे भी विकार निकल रहा है।

मेरी पद्धतिसे उपचार करनेपर आरम्भमें प्रायः फोड़े निकल आते हैं। कारण बिलकुल साफ है और यह शुभ लक्षण भी है, क्योंकि यह इस बातका सूचक है कि मेरे उपचारसे मल निकालनेवाले अंगोंको उत्तेजन मिला है। जबतक यह चलता रहे तबतक फोड़ेके सबंधमें कुछ न किया जाय, प्रकृतिको स्वयं अपनी फिक्र करनेके लिए छोड़ दिया जाय। अगर दर्द बढ़ जाय तो गीली मिट्टीकी पट्टीसे काम किया जा सकता है। फोड़ोंका उपचार सिर्फ गीली मिट्टीसे होना चाहिए, उन्हें चीरने या खोलनेकी जरूरत नहीं है। पकनेपर वे स्वयं फूट जायंगे और सब उन्हें बहानेमें यह मिट्टी और मदद करेगी।

फोड़ा निकलना शरीरके लिए बहुत लाभदायक है। इसमें कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है जो इस बातका प्रमाण है कि शरीर स्वास्थ्यलाभकी क्रियामें संलग्न है।

मैंने प्रायः देखा है कि लोग गरम पट्टी या गरम पुल्टिस छोड़नेके लिए जल्द राजी नहीं होते। यह प्रकृतिविरुद्ध है क्योंकि गरम सेंकसे फोड़ा प्रायः समयके पहले ही पक जाता है। अप्राकृतिक उपचारसे शरीरको कुछ-न-कुछ हानि होती ही है।

गीली मिट्टीकी पट्टीसे ही शरीरको आराम मिलता है और घाव जल्द भर आता है। अगर पतले सूती कपड़ेपर गीली मिट्टी फैला दी जाय तो वह पलस्तरकी तरह चिपक जायगी, ऊपरसे बांधनेकी जरूरत नहीं रहेगी।

शिरःशूल

श्री वर्षोंसे शिरःशूलसे परेशान थे। रातको गरदनपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगानेसे इस दीर्घकालीन शिरःशूलसे उन्हें हमेशाके लिए छुटकारा मिल गया।

दद्रु आदि चर्मरोग

श्री वर्षोंसे क्षयकारक चर्मरोगसे पीड़ित थे। सारे उपचार निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। गीली मिट्टीकी पट्टी-ने उन्हें रोगसे पूर्णतः मुक्त कर दिया।

सर्पदंश

हालमें ही एक ग्राममें एक लड़कीको घास छीलते समय एक बहुत विषैले सांपने डस लिया। पैर सूजने लगा और उसे बहुत पीड़ा होने लगी। नगर ले आते समयतक हाथ भी सूज गया और वह बेहोश हो गई। चिकित्सकोंके जवाब दे देनेपर उसका पिता मुरदेकी-सी हालतमें उसे वापस लाया। उसने कभी दंतकथाके रूपमें सुना था कि सदियों पहले सर्प-दंशसे इसी अवस्थामें पहुंचा हुआ एक आदमी जमीनमें गाड़नेसे अच्छा हो गया था। उसने भी यही करनेकी ठानी और बागमें गड्ढा खोदकर लड़कीको गलेतक नग्न गाड़ दिया। अधिकारियोंने लड़कीको निकलवानेकी कोशिश की, पर गांववालोंने पिताका

पक्ष लिया और सामूहिक रूपसे अधिकारियोंका विरोध करने लगे। बलवा होनेकी समावना देखकर अधिकारी चुप हो गये। चौबीस घटेके बाद निकालनेपर लड़की बिल्कुल अच्छी पाइ गइ।

इस घटनासे यह स्पष्ट ह कि अतिम अवस्था प्रस्तुत हो जानेपर भी मिटटी विषसे मुक्त कर देती ह। अगर मिट्टी का प्रयोग तत्काल किया जाय और एक-एक घटेपर पट्टी बदली जाती रहे तो सपके विषका सारा असर जाता रहेगा।

पागल कुत्तेके काटनेपर भी सपदशकी ही तरह गीली मिट्टीकी पट्टी फौरन लगाइ जानी चाहिए। प्रोफेसर पास्टरकी युक्ति अविश्वसनीय और अनिश्चित ह, पर प्रकृतिकी युक्ति कभी व्यथ नहीं जाती। अगर पास्टरके तरीकेसे कुत्तस प्राप्त उन्मादसे पिड छूट भी जाय तो उससे मनुष्यका स्वास्थ्य इतना खराब हो जाता ह कि वह कुत्तेके उन्मादसे भी भयकर रोगका शिकार हो जाता ह।

इन बातोंसे स्पष्ट ह कि मिट्टी कैसी प्रभावकारी वस्तु ह। वस्तुत यह बिना मूल्यकी या सस्ती होते हुए भी अनमोल और सवसुलभ उपचारका साधन हैं।

सुषुम्नाका रोग और मोटापा

श्री की नाड़ियां रुग्ण हो गइ थीं और सुषुम्ना तो बिलकुल निष्क्रिय हो गइ थी। उनका वजन २१५ पौंड था। मेरे यहां आनेके समय उनके बचनेकी कोइ आशा नहीं थी, पर चार ही सप्ताहमें वे नीरोग होकर चले गए और अपना कारबार भी शुरू कर दिया। यहां उनका वजन ५५ पौंड घट

गया। वे प्राय कमरतक और कभी-कभी सीनेतक जमीनमें गाड़ दिए जाते थे। यह उपचार बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। और सब उपचार भी यथाविधि चलाए जाते रहे।

शोथयुक्त जीर्ण आमवात

श्री जीर्ण शोथयुक्त आमवातसे वर्षोसे ग्रस्त थे जिससे उनके अग गतिहीन हो गये थे। प्राकृतिक उपचारकी पुरानी पद्धतिसे भी उन्हें कोइ लाभ नही हुआ और हालत दिनोंदिन खराब ही होती गइ। उनका एक पर काटा जानेवाला था ही कि सयोगसे मेरी पुस्तक उनके हाथ पड गइ। स्नान, फलाहार वायु प्रकाश-स्नान आदिसे उनको इतने कम समयमें आरोग्यलाभ हुआ कि उनके मित्र देखकर चकित रह गये। परकी तो रक्षा हो ही गइ।

गठिया, कप, कटिशूल तथा इस श्रेणीके अन्य रोग रक्तके दूषित होनेपर ही होते ह। प्राकृतिक चिकित्साके सही तरीकेसे ये बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

कुत्तेके काटनेका घाव

श्री को एक बडे कुत्तेने काटा था जिससे दो घाव हो गए थे। एक घाव तो इतना बडा था कि देखनेवालेको यह विश्वास ही नहीं होता था कि यह कुत्तेका काटा हुआ ह। वह लगभग पौने दो इच बडा और पौन इच गहरा था। कुत्तेने वहांका मांस नोच लिया था।

कुत्तेका काटना घावसे ज्यादा खतरनाक होता है इस कारण उनके मित्र बहुत चिंतित थे। मैंने घावको ठडे पानी

खूब तरकर गीली मिट्टीकी पट्टी लगा दी और ऊपरसे मीन सूती कपडेसे उसे बांध दिया। पट्टी रोज सुबह बदल दी जाती थी। वे मेरे बताए हुए नियमाके अनुसार प्राकृतिक ढगसे रहते थे और बराबर चलते-फिरते, दौडते और पहाड पर भी चढ़ते रहे पर कभी किसी तरहकी तकलीफ नहीं हुई। छोटा घाव तो दूसरे ही दिन भर गया, बडे घावके कारण भी उनको कोई कष्ट नहीं हुआ और न उसमें सूजन ही हुई। तीन सप्ताहमें बड़ा घाव भी भर गया। पट्टी खोलनपर उसमेंसे बदबूदार पछा निकला करता था। मिट्टी घावके जरिए सारे शरीरके विकृत पदार्थको खींच लेती है, इसी कारण वह सपदश आदिमें लाभदायक होती है। इस प्रकारके जख्मोंमें तबाकू, शराब आदि मादक वस्तुए बहुत हानिकारक होती हैं।

सारे मासाहारी जीव हिंस्र होते हैं पर हिंसाकी यह प्रवृत्ति क्षुधाकी तृप्तिके लिए ही जाग्रत होती है। मांसाहारी पुरुषोंमें यह प्रवृत्ति बड़े घृणित रूपमें व्यक्त होती हैं। मनुष्यके लिए मांसाहार प्राकृतिक नहीं है इसलिए इससे विचारों और भावनाओंका विकृत होना स्वाभाविक ही है। इसके अलावा एक और राक्षस मद्यके रूपमें लोगोंमें घुसा हुआ है जो सहकावर सवनाश किया करता है। मनुष्य केवल आहारके लिए हत्या नहीं करता, वह अपने भाइयोंपर भी हाथ साफ किया करता है।

मनुष्यकी हिंस्र प्रवृत्तिका नियमन करने और इसकी मय करता कम करनेके लिए ही युद्धकला विकसित की गई है। युद्धमें मनुष्यको अपनी रक्तपिपासा शान्त करनेका अवसर मिलता है। रक्तकी नदियां यह चलती हैं और विजयके हृप-

नादमें मरते हुए लोगोंके कराहनेकी आवाज और भग्न हृदय पुत्रों, पिताओं, माताओं और स्त्रियोंके आर्तनाद मिले रहते हैं। अगर मनुष्यकी हिंस्रवृत्तिको खुलकर खेलनेका अवसर मिले, शांतिप्रिय सरकारें उसे रोकनेमें समर्थ न हो सकें तो उस हालतमें मैं लोगोंका ध्यान मिट्टीकी ओर आकृष्ट करूंगा। घायल सैनिकके लिए मिट्टी सुलभ है। वह अपनी लारसे इसे भिगो सकता है। अगर गोली नहीं निकलती तो उसे पड़ी रहने दीजिए, उसे निकालनेके लिए चीर फाड़ करना हानिकारक ही नहीं, खतरनाक भी होता है। जख्मपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगा देनेपर तकलीफ दूर हो जायगी और वह अच्छा होने लगेगा। अगर गीली मिट्टीका प्रयोग किया जाने लगे तो युद्धक्षेत्रके अस्पतालमें अंग-भंग करनेकी उतनी जरूरत नहीं रहेगी और जख्मीके कारण होनेवाली मृत्युसंख्या भी कम हो जायगी।

थी भीषण नाड़ीविकारसे ग्रस्त थे। किसी उपचारसे कोई लाभ न होनेपर उन्होंने तीन मास मेरा उपचार चलाया। बचपनमें उन्हें कोई बालरोग नहीं हुआ था और बादमें भी कोई तीव्र रोग या जुकाम नहीं हुआ था। उन्होंने इसे अच्छे स्वास्थ्यका लक्षण माना था, पर असल बात यह थी कि उनका शरीर तीव्र रोगों या जुकामके जरिए विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेमें समर्थ नहीं था। नाड़ीरोगका यही कारण था। अगर उन्होंने प्राकृतिक उपचारका सहारा न लिया होता तो किसी पागलखानेमें होते या मरघटमें। उपचार आरंभ होनेपर उन्हें बड़े-बड़े फोड़े निकलने लगे। इसके बाद छोटे-छोटे तीव्र रोग शुरू हुए और विसूचिकाके लक्षणोंसे युक्त अतिसार

भी हुआ। इन सबसे उनको कुछ आराम ही मिलता गया। अंतमें भयकर इन्फ्लुएजा प्रकट हुआ। चेहरा विवर्ण हो गया और कमजोरी भी बढ़ गई। वर्षा और अधिक ठंड होनेपर भी वे खुली झोपडीमें रखे गये। कभी-कभी आधे घंटेतक वायु प्रकाश-स्नान भी चलाते रहे। वे शायद ही कुछ खाते थे। साधारण स्नान भी चलता था। उस झोपड़ीमें कुछ ही घंटोंतक रहनेपर उन्हें बडा आराम मालूम हुआ। विजातीय द्रव्य ढीला पड़कर मुंह और नाकसे निकलने लगा और पसीना आना भी शुरू हो गया। इसके अनतर ज्वर उतर गया और उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे स्वास्थ्यकी दिशामें काफी आगे बढ़ गये हों।

क्या यह सीधा-सादा और सस्ता उपचार नहीं है? बहुतसे लोग इन्फ्लुएजामें अप्राकृतिक उपचार कराकर कालके शिकार हो जाते हैं और जो बच जाते हैं उनकी हालत मरे हुए लोगोंसे भी खराब होती है, क्योंकि हलका तीव्र रोग जीर्ण रोगमें परिणत हो जाता है और वे जीवनमें तरह-तरहके कष्टों और रोगोंके शिकार होते रहते हैं।

यह खयाल करना कि केवल सबल व्यक्ति खुली हवामें लाभ उठा सकता है, भ्रम है। हवा कभी किसीको किसी भी हालतमें नुकसान नहीं पहुचाती। कम तापमें वायु प्रकाश स्नानसे निर्बलोंको शक्तिवृद्धिकी अनुभूति होती है यह बात यदि ब्रह्मा भी आकर कहें तो किसीका विश्वास नहीं होगा। जो व्यक्ति इस प्रकारकी झोंपडीमें रहनेका प्रबन्ध नहीं कर सकता उसे रातमें कमरेकी खिड़कियां खोलकर सोना चाहिए और नग्न शरीरमें वायु-प्रकाश लगने देना चाहिए। अगर सबल व्यक्तिके लिए हवा और प्रकाश आवश्यक है तो निर्बल और

अस्वस्थके लिए तो इनकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। रोगमें वायु हानिकर होती है, यह धारणा बडी हानिकारक है। बच्चोंको मसूरिका, रक्तपित्त आदि रोग होनेपर खिडकियाँ बंद कर हवा और प्रकाशका प्रवेश बंद कर दिया जाता है या उन्हें जल्द खुली हवामें नहीं जाने दिया जाता, पर इससे बच्चोंका जीवन दुःखमय हो जाता है, वे अन्धता, बधिरता, मानसिक दौर्बल्य आदिके शिकार होते रहते है या कब्रिस्तानमें कब्रोंकी संख्या बढ़ाते हैं।

एक लडकेको मसूरिका निकलनेपर कमरेकी खिडकियाँ बराबर खुली रखी गयीं, वायु प्रकाशका स्नान कराया गया और तीसरे ही दिन मैदानमें निकाला गया। घर तथा पडोसके सभी लोग माँ-बापके इस कार्यपर बुरा भला कहने लगे और औषधोपचारकने तो यहाँतक कहा कि अगर ६ महीनेतक भी कोई खराबी नहीं देख पडी तो भी इसका नतीजा बुरा ही होगा। मसूरिका निकले कई साल हो गये, पर बच्चा प्राकृतिक ढंगसे रहता हुआ संतोषजनक रीतिसे प्रगति कर रहा है और अपने माँ-बापके आनंदका कारण हो रहा है।

रोग होनेपर लोग मनुष्योंद्वारा आविष्कृत दवाओंके लिए चिकित्सकोंके यहाँ दौडते हैं जो खुद दर्द और रोगमें कराहते रहते हैं। जो लोग ऐसा करते हैं वे चतुर माने जाते हैं और प्रकृतिके उपायोंकी खिल्ली उडायी जाती है और जो लोग इन उपायोंका सहारा लेते हैं उनपर फबतियाँ कसी जाती हैं।

उपर्युक्त सभी रोगोंमें एक ही तरहका उपचार किया गया, केवल स्थानिक उपचारके लिए गीली मिट्टीके प्रयोगमें कुछ अंतर पडा। सबने पेडूपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगाई और

नगे पैर चलनेको सबको प्रोत्साहन दिया गया। योग्य व्यक्तियोंसे मालिश भी कराई गई। मालिश प्राय साधारण स्नानके बाद हुई और यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

आरोग्यलाभका तरीका सादा होना चाहिए और उसमें वही एकसूत्रता होनी चाहिए जो स्वय प्रकृतिमें है। यह सत्य है कि सभी लोगोंमें प्रगति एक-सी नहीं होती, पर इसका कारण पद्धति नहीं, शरीरमें वर्तमान जीवन-शक्तिका अतर है।

तरह-तरहके रोगोंके नामो और लक्षणोंके फेरमें पड़कर समय नष्ट करना ठीक नहीं, जहां कोई रोगसबधी लक्षण देख पड़े प्रकृतिके नियमोंके अनुसार चलकर आरोग्यलाभका प्रयत्न शुरू कर देना चाहिए। आजकल रोगकी परीक्षा करनेकी विचित्र-सी चाल चल पड़ी है और अप्राकृतिक उपचार चलानेकी तैयारीमें ही कई दिन लग जाते है। इस परीक्षा और तैयारीमें जितना समय लगता है उतनेमें तो रोगसे मुक्ति ही मिल जा सकती है।

मैंने अबतक जो कुछ कहा है उससे हर एक आदमीको यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि रुग्णावस्थामें क्या करना चाहिए। रोगोंसे बचा रहकर कैसे जीवन व्यतीत किया जा सकता है, इसपर काफी लिखा जा चुका है, फिर भी अगर रोग हो ही जाय तो शांत रहिए। मैंने प्राकृतिक उपचारके जो साधन बतलाये हैं उनकी सहायतासे रोहिणी, आंत्रिक सन्निपातज्वर, विसूचिका आदि भयकर रोगोंकी सारी भयकरता जाती रहेगी।

हर हालतमें शुद्ध, ताजी हवाकी प्राप्तिपर ध्यान दीजिए, गीली मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग कीजिए वायु प्रकाशका स्नान और शीतल स्नान चलाइए, मालिश कराइए उपवास कीजिए

और रोगमुक्त होनेपर भरसक अपक्वाहार ग्रहण कीजिए, खुली जगहमें रहिए, नगे पाँव चलिए और यथासभव धरतीकी शक्तिका उपयोग कीजिए। जिन लोगोंने मेरी बातोंका समझदारीके साथ अनुसरण किया होगा वे यह समझ गये होंगे कि सभी रोगोंमें एक ही तरीका क्यों बरता जाता है और भिन्न-भिन्न रोगोंके लिए भिन्न भिन्न तरीके क्यों नहीं हैं।

उदाहरणार्थ, अगर कोई व्यक्ति आंत्रिक सन्निपातज्वरसे आक्रांत होता है तो पहले तो उसके कमरेकी सारी खिड़कियाँ—सर्दीके दिनोंमें भी—खोल दीजिए, इसके बाद प्राकृतिक स्नान कराकर वायु प्रकाशका स्नान कराइए, और रोगी चलने लायक हो तो तेजीसे टहलाकर नहीं तो कवल ओढ़ाकर शरीरमें गरमी लानेकी कोशिश कीजिए। वायु प्रकाश-स्नान हर मौसममें कई बार चलाया जा सकता है। यह भरसक मैदानमें ही होना चाहिए, अगर यह सभव न हो तो कमरेमें ही चलाइए। इसका लाभ तुरत देख पड़ता है। समय १५ मिनटसे लेकर कई घटोंतक हो सकता है। समय जितना अधिक होगा उतना ही अधिक लाभ होगा। पेड़परकी गीली पट्टी विशेष लाभदायक होती है। यह नाभिसे गरमी खींचकर वहाँके विजातीय द्रव्यको छिन्न-भिन्न कर देती है। आहारसबधी नियमोंका पालन तो किया ही जाना चाहिए। यथासभव खुली हवामें रहना अच्छा होता है।

विसूचिकाका उपचार भी इसी प्रकार होता है। विसूचिका तथा अन्य सभी तीव्र और जीर्ण रोगोंमें यह लाभदायक होती है, क्योंकि यही स्थान ज्वर तथा अन्य रोगोंका केन्द्र होता है। मसूरिका, वातकफज्वर, श्वसनक सन्निपात आदिमें भी यही उपचार चलाया जाय। अगर रोग जीर्ण (नाड़ीरोग, क्षय,

शोथ या इस प्रकारका कोई दूसरा रोग) है तो प्रकृतिक इन्हीं उपायोंका अवलंबन किया जाय और अवसेतन इन्हें बनाया जाय। क्षय तथा अन्य फुफ्फुसीय रोगोंमें मिट्टीकी पट्टी सीनेपर, शोथ (जलोदर) में सूजे हुए स्थानपर, पेटकी खराबीमें पेड़पर और यौन रोगोंमें पेड़ू और जननेंद्रियपर लगाई जाती है।

फोड़ा आदि चर्मरोगोंमें तो मिट्टीकी पट्टी ही मुख्य उपचार है, पर इनमें भी सारे शरीरके उपचारपर ध्यान देना चाहिए। अस्वस्थताकी तथा अच्छी हालतमें भी दोपहरतक कुछ न खाना लाभदायक होता है। अगर लाचारी हो तो प्रातःकाल अत्यल्प मात्रामें ही कुछ खाया जा सकता है।

रुग्ण होनेपर सब लोग चारों ओरसे तरह-तरहके अप्राकृतिक उपाय और दवाएं बतलाने लगते हैं पर ये सभी निरर्थक ही नहीं होते, अपने साथ कुछ बुराई भी लाते हैं इसलिए चाहे जैसी भी स्थिति हो केवल प्राकृतिक उपचारका सहारा लीजिए।

अगर संयोगवश आशाके अनुरूप बहुत जल्द सुधार न देख पड़े तो भी शांति और धैर्य बनाये रखें, घबड़ाकर अप्राकृतिक उपचारोंका प्रयोग न करने लगें। अप्राकृतिक उपचारोंसे सच्ची सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती, न जाननेके कारण हम इनसे अपना बहुत बड़ा नुकसान कर लेते हैं।

औषधविज्ञान संक्रामक रोगोंका हौवा है और उसने सर्वत्र इतना आतंक फैला रखा है, पर जब हम इन संक्रामक रोगोंसे भी छुटकारा पा जाते हैं तो इनसे डरनेका कोई कारण नहीं रह जाता। जो हमारी प्राकृतिक उपचारपद्धतिका अनुयायी है उसके दिमागसे तो सारे असाध्य और संक्रामक रोगोंका भय

दूर हो ही जाना चाहिए। इस भयस बहुत बडा नुकसान हुआ करता है।

इसी तरह, एकरूप प्राकृतिक विधिसे लोग अपने स्वास्थ्यकी चिंता और औषधोपचारक वर्गसे मुक्ति लाभ कर सकते हैं। इस प्रकार लोगोंको अपने स्वास्थ्यपर, जो सर्वाधिक मूल्यवान् भौतिक संपत्ति है, पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है और अयोग्य, उत्पीडक औषधोपचारकोंकी दासतासे मुक्ति मिल सकती है।

मानवजाति स्वतंत्रतारूपी बहुमूल्य वरदानके लिए बराबर संघर्ष और युद्ध करती रही है। क्या वह अपने शरीर, अपने स्वास्थ्यके संबंधमें स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न नहीं करेगी ?

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

रोज-ब-रोज डाक्टरोंकी तादाद बढ़ रही है और साथ-साथ अनगिनत औषधियोंकी। इनके ईजाद करनेवाले दूकानदार हर दवाके रामबाण होनेका दावा करनेमें कोई कोर-कसर नहीं करते। फिर भी जन-साधारणका स्वास्थ्य उन्नत हुआ नहीं जान पड़ता। आंख उठाकर देखिये तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चंगुलमें फंसा मिलेगा। इससे साबित होता है कि दवाएं आदमीको न तंदुरुस्त रख सकती हैं न कर सकती हैं। उसके लिए तो सीधा और एक ही जरिया है कि हम जिंदगीमें कुदरती तरीका अपनाएं।

प्राकृतिक चिकित्सकोंने तजुरबेसे जाना है कि रसायन और दवाएं रोगको अच्छा करना तो दूर रहा उल्टे रोगको—उसके कुछ लक्षणोंको—कुछ वक्तके लिए दूर करके, बाहर निकलते हुए रोगको शरीरके भीतर दबा देती हैं। जिसे हम रोग समझते हैं वह दरअसल अंदर छिपे हुए रोगके बाहरी लक्षणमात्र हैं। जैसे गांवमें कूड़ा-कचरा इकट्ठा होकर बीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गंदगी निकल न पानेपर अंदर सड़ने लगती है। यही गंदगी सब रोगोंकी जड़ है।

कुदरती इलाज गंदगीको शरीरसे निकाल फेंकनेमें पूरी मदद पहुंचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एवं सतेज बनाता है।

कुदरती इलाजके मददगार हैं

उपवास, फलाहार, संतुलित भोजन पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन कसरत और मालिश वगैरह। जिनसे रोग दबते नहीं बल्कि जड़से नेस्त-नाबूद होते हैं।

'आरोग्य-मंदिर' गोरखपुरमें

उपर्युक्त तरीकोंसे रोगियोंका इलाज होता है। विशेष विवरण जाननेके लिए परिचय-पत्र मंगानेको लिखें। व्यवस्थापक, आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर।

आरोग्य-ग्रंथमाला

प्राकृतिक चिकित्साके प्रसारकी दृष्टिसे आरोग्य-ग्रंथमालाका प्रकाशन शुरू किया जा रहा है। इसमें हिंदुस्तानके अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों की पुस्तकोंके साथ-साथ विदेशके प्राकृतिक चिकित्सकोंकी पुस्तकें भी होंगी। ये सब हम मूल या सारांश रूपमें हिंदी-भाषी जनताको अच्छे रूपमें सुलभ मूल्यमें देना चाहते हैं।

प्राकृतिक जीवनकी ओर—आपके हाथमें है, शेष प्रकाशित पुस्तकोंका परिचय लीजिए —

१ जीनेकी कला—लेखक बिट्ठलदास मोदी। यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढ़ाएगी स्मरण शक्ति तीव्र बनाएगी, चिंताओंसे मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सार रहस्य खोलकर रख देगी जिनके जाननेके कारण वह व्यक्ति जिसे आप बड़ा कहते हैं बड़ा बना है। मूल्य १)

२ उपवाससे लाभ—रोगोंको दूर करनेका उपवास एक बड़ा साधन है। पर इसका उपयोग समझकर ही करना चाहिए। गंगाकी तरह जहां यह लोगोंको तारता है, वहां तैरना न जाननेवालोंको डुबोता भी है। उपवाससे लाभ, उपवासके लाभोंको बताकर, उपवास करनेकी कलामें अबतक जो उन्नति हुई है उससे भी आपको परिचित कराएगी। मूल्य १॥)

३ सर्दी-जुकाम-खांसी—ले० डा० रैस्मस अल्सेकर, एम० डी० इन रोगोंकी चिकित्सा कारण, उनसे बचनेका रास्ता बतानेवाली एक अपूर्व पुस्तक। मूल्य ॥)

४ आदर्श आहार (संशोधित और परिवर्धित दूसरा संस्करण)—ले० डा० एस० सी० दास एम० डी०। भोजनसे स्वास्थ्यका क्या संबंध है और भोजनमें थोड़ा-सा हरफेर करके रोगका निवारण कैसे किया जा सकता है यह विशद रूपसे बतानेवाला एक ज्ञानकोष। मूल्य १)

५ मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार?—ले० लुई कूने। इस प्रश्नका उत्तर इस पुस्तकसे लें और दवाके खर्चसे निकलकर अपना स्वास्थ्य और धन बचाएं। मूल्य ॥)

६ उठो—ले० स्वामी कृष्णानंद। इस पुस्तकको पढ़ें और दुःख, परेशानी और मुसीबतोंसे छुटकारा पाकर जीवनको सरल बनावें। १)

७ रोगोंकी सरल चिकित्सा—श्री विट्ठलदास मोदी। दो हजारसे अधिक रोगियोंको अपने निरीक्षणमें रखकर की गई चिकित्साके प्राप्त अनुभवके आधारपर लिखी गई प्राकृतिक-चिकित्सा साहित्यकी श्रेष्ठ पुस्तक। मूल्य सजिल्द ४) अजिल्द ३)

८ स्वास्थ्य कैसे पाया—इस पुस्तकमें आप स्वास्थ्यको उन्नत बनाने और लोगोंके रोगोंसे मुक्ति पानेकी आत्मकथायें पढ़कर स्वस्थ रहनेका सही रास्ता जानेंगे। बढ़िया छपाई, सुंदर दुरंगा कवर, बत्तीस हाफटोन चित्र पृष्ठ संख्या २१६ दाम सिर्फ १॥)

९ कब्ज कारण और निवारण—श्री महावीर प्रसाद पोद्दार। इस पुस्तकमें कब्जके कारणों और निवारणके उपायोंपर विस्तारसे विचार किया गया है। हिंदीमें ही नहीं, भारतकी किसी दूसरी भाषामें भी कब्जपर एसी पुस्तक अबतक नहीं निकली है। छपाई कागज जिल्द बढ़िया दाम सिर्फ २)

व्यवस्थापक, आरोग्य-ग्रंथमाला, गोरखपुर

—: अगर आप चाहते हों :—

कि

- आपके घरभरका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे,
- दवा-दारूसे पिंड छूटे
- खान-पान व्यायाम आदिके बारमें जरूरी हिदायतें मिलें,
- भोजन-सबंधी खोजोंका नया-से-नया ज्ञान प्राप्त हो
- नामी प्राकृतिक चिकित्सकोंके लेख पढ़नेको मिलें,
- बिना दवा-दरपनके पुराने रोगोंसे छुटकारा पाए हुओंके बयान उन्हींकी जबानी जानें,
- 'आरोग्य-ग्रंथमाला' की पुस्तकें रियायती मूल्यपर मिलती रहें तो

'आरोग्य'

मासिकके ग्राहक बन जाइए। इसका हर अंक स्वतंत्र पुस्तककी भांति होता है। वार्षिक मूल्य ४)। एक अंकका सात आना।

व्यवस्थापक, 'आरोग्य'—गोरखपुर